



चन्द्रगुप्त मौर्य और उसका काल



# चन्द्रगुप्त मौर्य और उसका काल

[ लेखक की पुस्तक Chandragupta Maurya And His Times  
का अनुबाद ]

लेखक

डॉ० राधाकृष्ण मुहूर्ती

एम० ए० पी०एच० डी० डी० लिट्०

कपातरवार

मुनीश सक्सेना



राजवर्मन प्रकाशन

प्रथम संस्करण १९६२

मुख्य भाग छयवे

© १ ६२ हिन्दी अनुवाद  
राजराज्य प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड

प्रकाशक  
राजराज्य प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड  
दिल्ली

मद्रास  
डी० पी० कार्पर  
वीन्ट प्रेस इलाहाबाद

## विषय सूची

### अध्याय १ जन्म तथा प्रारम्भिक जीवन

ब्रह्मपुत्र की मछलियाँ उसकी गतिहासिकता पूर्ववर्ती गंगाई साम्राज्यवादी की राजावली तथा मस्कार कार्यक्रम का महत्त्व महानता के जन्म कारण साबित करता तथा मैटिन सब भारतीय राजाओं अर्थशास्त्र का युग जन्म प्राचीन राजों के उद्धारन मन्थन व राजाओं का नीच बल में जन्म पुत्रता की साक्षी उन्हें बचल बंद के नीच बल में पैदा होने का ज्ञान है जन्मप्राप्ति में भावनी बात का प्रमाण मिलता है और यह मुद्रागमन की साक्षी टीराकार की साक्षी मुद्रागमन की कुछ और बातें काम्यपीठ परम्परा जैन परम्परा स्नातकों की साक्षी साराण प्रारम्भिक जीवन उत्तमिना में बिद्यागर्जन ।

(१७-१८)

### अध्याय २ विजय अभियान तथा कालक्रम

बाणेश तथा ब्रह्मपुत्र की पश्ची भेट दिया का बेट पटनि पुत्र उत्पलननद पननद द्वारा बाणेश का भ्रमण ब्रह्मपुत्र का पहला नाम यूनानी शासन का उद्गमन ब्रह्मपुत्र की मना कला मिर्चन में टकरा करने वाली गणनाधिक शक्ति महाभारत में

प्रथम संस्करण १९६२

मूल्य : आठ रुपये

- १९६२ हिन्दी अनुवाद  
राजकान्त प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड

प्रकाशक  
राजकान्त प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड  
दिल्ली

मुद्रक  
बी. बी. ठाकुर  
लीडर प्रेस इलाहाबाद

## विषय सूची

### अध्याय १ जन्म तथा प्रारम्भिक जीवन

चंद्रगुप्त की महत्त्वपूर्ण उमड़ी पत्रशामिकाएँ पंद्रहवीं सदी में साम्राज्यवादी की दस्तावेजी तथा मस्काफ काव्यक्रम का महत्व प्रशिक्षण के अर्थ कारण साधन यशस्वी तथा वैदिक प्रवृत्ति भारतीय रचनाओं अर्थमात्र का योग जन्म प्राचीन प्रवाह उद्वेगन कदम के साक्षात् की प्रीति रूप में जन्म गुणता की माफी उन्हें केवल एक कीव क्रम में देखा हुआ का ज्ञान है अर्थमात्र का भाई की बात का प्रमाण मिलता है यीव दास मुद्रागलन की माफी हीतासार की माफी मुद्रागलन की वल भोग दान बावर्दी परम्परा जैन वन्दना व्याख्या की माफी सामान्य प्रारम्भिक जीवन लक्षणों में विद्यमान ।

(१७-१८)

### अध्याय २ विजय अभियान तथा कालक्रम

बापस्य तथा चंद्रगुप्त की पंद्रहवीं भेद विद्या का वल सामाजिक पुन उद्वेगन-वद धन-वद द्वारा बापस्य का अभिमान चंद्रगुप्त का बापस्य नाम मुद्रादी सामान्य का उद्भव चंद्रगुप्त की देना वलान्द मित्रद्वय में दृष्टकर लेने बापसी लक्षणविक्रम ज्ञानि चंद्रगुप्त में



उत्क्रिष्ट गणनाधिक आदिवासी पाषाणि द्वारा उत्क्रिष्टिण मण  
 तानिक आदिवासी से मिष्टदर के बिन्दु केने लगे। उन के गैमिक  
 गान्धर्व पुराण के कारण अत्रगुण की गता के अन्य गैमिक  
 यमानी पागण की उद्भाषाक स्थिति यूनानी क्षत्रपियों भारतीय  
 असन्तान क्षत्रप मिश्रान्त की हस्त नय गैमिकों तथा गैमा के यमना-  
 यम म यमी मिश्रान्त की यात्रणा म अन्तर्निष्ठ शेष स्थिति की  
 हस्त गैमिकी यमन के लिए गह्वर आभास ३०३ ई० पू० में सिद्ध-  
 दार । मय के बाद यूनानी यमन पा प्यस पानि का गता पंड  
 यमन गह के बिन्दु युद्ध म युद्ध की स्थिती से सम्बन्धित यपात  
 गह की स्थिति इसकी अन्तर्निष्ठता यद्ध म मर-महारा ३४  
 ई० पू० म मय्युक्त की पुराणय ईरान तट राज्य का बिस्तार  
 क्षितिज बिन्दु यक्ष-यक्षगान्धर्व स सम्बन्धित यपात यपा केन  
 परम्परा तमिष परम्परा पश्चिमी यमन की बिन्दु यत्रयम ।

(२९-३१)

## अध्याय ३ प्रशासन आदरा विभाग

यमन प्रशासी के भारतीय आर्षा यमन-यमन यम गहों  
 परि यमन के रूप में बिन्दु के सात यमन यम बिन्दु यमों  
 के यमन बिन्दु यमन के यमन दृष्ट अर्थात् यम के यमन  
 के रूप म यमन यमन यमन के रूप में यमन यमन  
 विभाग उन यमन यमन के यमन ।

(३४-८९)

## अध्याय ४ राजा

यमन उमादी गिवा बिन्दु उमादी यमन यमन यमन  
 यमन के लिए यमन यमन यमन की यमन यमन यमन

श्री शाही राजत्व स सम्मन्वित कष्ट भय विपर्ययात् विना ही  
 अंगरक्षक सना यूनानी शाही कौटिल्य की शाही भाष्ये लीड  
 पगुभा की कटार राजा की मकारी राज-प्रसार का धैर्य  
 कृताकर्ण हाथियों की शस्त्री यशार्थ राज-प्रसाद राज  
 प्रसाद के भीतर लीकर-काष्ठ राजा की मृगशा का मन्त्रिण  
 व्यवस्था विप स रत्ना के उपाय राज-प्रमाण व प्रति व्यवहार  
 उत्तराधिकार राजधानी पाटलिपुत्र भारतीय शास्त्रिय म पाटलि-  
 पुत्र लीड धय पत्र-प्रसन्न मन्त्रालय राज-शाहा ।

(C-105)

अध्याय ५ मंत्री तथा व नियम

राज्य-भक्त के भग्न राज्य-भक्त भग्न हो मगध-भक्त की  
 बुद्धि में काम देता राजा के हाथ में सुरक्षित पालिका बुद्धि  
 के बिना उपाय राज-कर्मचारियों का पद-भोग्य सामान्य प्रथा  
 सन-भक्त मंत्री मंत्र या नीति के उपाय मंत्रिपरिषद् मंत्रिपरि  
 पद की कार्य-भक्ति योग्य की मंत्रिपरिषद् पण्डित का स्थित  
 युक्तानी कृतज्ञ दिवांगत राजा की पण्डित सही समय में  
 मंत्री भद्रका प्रपात मंत्री का पद सामान्य में  
 पुरोहित प्रथम नीति का मंत्री जन-महा-भारत निवृत्त व नि  
 पुरोहित पण्डिताराज बुद्धि का निवृत्त ग्यापारका व पण्डित  
 दिया का निवृत्त राज्य तथा राज-भक्त निवृत्त भग्न  
 के निवृत्त राजा के भग्नराजों का निवृत्त बुद्धिपरिषद् का  
 मंत्री साधारण कर्मचारी राजभक्त मंत्री तथा निवृत्त  
 मंत्री-विभाग राजा के भग्नराज पालिका प्रपात राजा  
 के निवृत्त राजा तथा मंत्री का निवृत्त पण्डित मंत्री  
 पण्डित की बुद्धि का पद में पण्डित का भग्नराज ।

(1-3-2000)





## अध्याय ६ प्रणामन विभाग तथा उनके पदाधिकारी

विभाग तथा पदाधिकारी मूलानी बुतात जिस के अधिकारी ( एडमोमोई ) नगर के अधिकारी ( एस्टिमोमोई ) पुरा हिठ गुणकर्षा परमर्षाशाता अन्य पदाधिकारी पदाधिकारिया की सूची कीटिस्व की प्रणामन-म्यवस्था जनपद ( प्रान्त ) प्रति रक्षा-म्यवस्था प्रशासन के क्षेत्र प्रान्त का प्रधान ( समाहर्ता ) जिस का कलेक्टर ( ज्यमिक ) राजस्व के स्रोत पूर्ण राष्ट्र सनि संतु हज कमिकपय मयाहर्ता सभिवाता कावमूह म्यावाध्य सभिवालय तथा कारागार अलपनकाध्यस प्रवेष्टो के विभाग म्यस उनका बेतन तथा बर्ष उद्योगों का राष्ट्रीकरण हवि विमाय कृषि मिश्रक ( सीताध्यस ) बीजों का मझार सेत मझूर जेती के बीजार सिचाई के साधन जेती के मौसम फसलों की किसमें खाद्यान्न की फसले ईज विभिन्न प्रकार की जमीनें तथा पसल औपधिनो के पोषे मझूरी कोष्वाचारध्यस साना का अध्यस ( माकराध्यस ) धानुओं का अध्यस ( लाहाध्यस ) टकसाक का अध्यस धानों का दूसरा अध्यस लमगाध्यस सब र्णाध्यस राज-स्वर्णकार धम का संरक्षक पस्-ववसाका का अध्यस मवेधियो का अध्यस चरमाहो का अध्यस वासपोर्ट का अध्यस नौकानयन का अध्यस बहरगाहों का अध्यस वाचिज्य-अध्यस मुन्दाध्यस सङ्क का कर सुराध्यस मल-निवेश की सीमाए मधिराज्य मधिरा की दिक्की पर प्रतिदव मधिराज्या की सत्र सत्रका गुणधरा द्वारा निगरानो औपधीय मधिरा उग्मुक्त मदि रावान मगाज्यमीह पीनवाध्यस गुवाध्यस धमिक स्त्रिया मझूरी उन्पाहित बम्पुए सूचना तथा लुडिया पुलिस का विनाय कर्मचारिया की मरती विभाग की हो धाराए मम्मा धामा सञ्चार धापा बेतन मूलानी उम्मेय अथोक क प्रतिवेदक राज हुत विभाग बेवताध्यस मुख्य पदाधिकारिया की सूची ।

(१२७-१९८)



बैरठा भुगबाई, कार्य-पद्धति बधान किसने वाला जेलर यदि छम्ब-म्याय स्थानीय म्यायालय विधि के उदाहरण बिबाह पुन बिबाह उत्तराधिकार विभिन्न प्रकार के पुन सहकारिता के नियम जून तथा म्याय कृषि जून कालातीतता मबबा जून की तमारी बराहुर बीर्बकाल तक उपभोग के फलस्वरूप सम्पत्ति पर अधिकार, मानद्वानि बमकी मिय्या लांछन विभिन्न अपराध— बौद्ध को भोजन देना फौजदारी का कानून उदाहरण—भिरफ्तारी उच्छाया मिछाबट ध्यापारियों की सुरक्षा यातायात सम्बन्धी नियम थोरो स रक्षा सान्ति तथा सुव्यवस्था यूनानी सेनकों की सारी बख्त-सहिता म्याय की निष्कर्षकता म्यायाधीश के अपराध गवाही में उछटफर करना मनस्मृति तथा अन्य स्मृतियों की तुलना में कौटिल्य के नियमों की प्रधानता बिबाह-विच्छेद पुन बिबाह रबोत्तर बिबाह अनुसोम बिबाह मर्म समाज की कुछ अन्य बिसेपताएँ ।

(२००-२१९)

## अध्याय १० सना

चंद्रयुक्त की सेना स्वामी सेना मेवास्वनीक का बिबरण यज्ञ-कार्यालय सेना के अग महामाया कौटिल्य चिकित्सा तथा बायलों की रणशेख से जमाने की व्यवस्था डो का रिमाछा अन्य पराधिकारी पैरल सेना मेची-बल आटरिक बर्न अधिकारी परिक-सनापति-नायक अर्बसास्व हथियार यूनानी वृत्ता कौटिल्य का वृत्ता मृत्तिकता में सैनिकों का बिबरण दारा में लाने बाल भारतीय सैनिक सैनिक अम्यास पैरल सेना व युव सैनिकों को प्रोत्साहन पुरस्कार बडसवार सेना अरबाध्यक बाड़ों की भारती जोड़ों के रहने का प्रबन्ध प्रशिक्षण पम्प-पिक्टिसक अरब सेना की साव-सज्जा का यूनानी बिबरण बुद्ध के रव रबाध्यत

राजा पुत्र की पगबंदी मूर्तिरूपा में रहा का चित्रण यज्ञ के हावा हाबिया के गुण उपयुक्त समय उपयुक्त स्थान हस्तगन्त हाबिया का प्राप्त करना मागनीध्या हाबिया का मायन बाने हाबिया को पानना—यज्ञ हाबिया के रहन-सहन तथा पान-पान की व्यवस्था सैन्य प्रशिक्षण हाथी पर चढ़ने जाने हाबिया का पानन स्थल—पूर्वी भारत मा-समा विनाय मागध्या नीति ।

(२२०-२४१)

## अध्याय ११ सामाजिक परिस्थितियाँ

समाज-व्यवस्था का सार वरुण हाथी का उद्गार मूर्तानी बुना। में हिन्दू-जयात्र का बचन वर्ष तथा व्यवसाय के बीच मद्रक, मेगाध्यानाई की दृष्टि में हाथी छात्रवृत्ति गृहस्थावस्था व्यवसाय 'मगध' (मगध) उनके व्यवसाय शार्पनिक निवर्त 'प्राप्तना' (प्राप्तनिव) माफिस्ट बीट बीटपूर्व तात्त्विकी प्राप्ताधिक सामान्य विज्ञ रहन-सहन तथा वेग भूरा आहार व्यवसाय पीरोहिय ध्याम भविष्य प्राप्त शार्पनिक मगध विविधता-व्यवसाय सैन्यामिनिता हाथी की शार्पनिक मगध पत्रा में मूर्तानिया हाथ वरुण मगधानी शार्पनिक सैन्य तथा गृह व्यवसाय मृगना होने जाने परामर्शना वरुण तथा व्यवसाय आचार-व्यवहार तथा रीति-रिवाज वेग भूरा पान-पान विज्ञाद शरी अन्तर्पत्ति-विज्ञा दाम-पदा पने ।

(२४२-२५९)

## अध्याय १० आर्थिक परिस्थितियाँ

आर्थिक जीवन राज्य हाथ निबंधन दाव लक्ष्मी दृष्टि



क्षेत्र खेत-मजदूर पशु-धन विचारों नीब में सार्वजनिक निर्माण कार्य घास-सेवा गाँव के मनोरंजन घास-कम्पाण बंदर-मृत्ति बत-क्षेत्र बत-कर्मचारी निजी उद्योग व्यापार-मार्ग मोड़ बंधों में मार्गों का बर्जन अन्तर्वेष्टीय मार्ग समुद्री व्यापार मस्तुत घन अर्जमास्त्र में मार्गों का बर्जन अक-मार्ग उत्तरायण बलिषापण व्यापार-सामग्री मोटी मणियाँ ह्रीरे-अबाहगत मृया मुबन्धित सफ़दी लाले कम्बक रेशम सिमेन कौपेब सूती कपडा नवरों का जीवन सिक्के चरक-सहिता बिदेसी सिक्के नगर-निवेश वास्तु कला तथा कश्चित कसाएँ ।

(१९०-१९६)

## प्रकाशकीय

इतिहास-श्रेणी पाठक डॉ० राधाकुमुद मुक्जर्जी की विद्वत्ता से पूरी तरह परिचित हैं। कुछ समय पहले प्रस्तुत पुस्तक का अंग्रेजी संस्करण हमने प्रकाशित किया था। हमें प्रसन्नता है कि अब हम हिन्दी संस्करण बाजारों को भेंट कर रहे हैं। अब तक हिन्दी में भारत के प्रथम ऐतिहासिक सप्ताह और उसके काम का इतना व्यापक अध्ययन तथा मौलिकता की सम्पत्ति और संस्कृति पर इतना प्रामाणिक चर्चा प्रकाशित नहीं हुआ। यथासम्भव हमारा यह प्रयत्न है कि हिन्दी में अधिकाधिक प्रामाणिक चर्चा प्रकाशित करें ताकि यह सभी दीर्घ हो पूरी हो सके।

हमें ध्याना है कि पाठक इस पुस्तक को अनुरक्त और लाभप्रद पाएँगे।











## अध्याय १

### जन्म तथा प्रारम्भिक जीवन

अश्वमेध की सफलताएँ उसकी ऐतिहासिकता अश्वमेध नीति की गणना भारत के महानतम शासकों में की जाती है। उसकी महानता की सूचक अनेक उपाधियाँ हैं और उसकी महानता कई बातों में अद्वितीय भी है। वह भारत के प्रथम 'ऐतिहासिक' सम्राट के रूप में हमारे सामने आता है। इस अर्थ में कि वह भारतीय इतिहास का पहला सम्राट है जिसकी ऐतिहासिकता प्रमाणित काष्ठमन्त्र के ठोस आधार पर सिद्ध की जा सकती है।

पूराबतों तथा अश्वमेध से पहले भारत में अनेक बड़े-बड़े राजा हुए थे जैसे महापद्म मंथ और अजातशत्रु, अथवा शिवितार, जिसका शासनकाल महात्म बुद्ध के प्रभावशाली व्यक्तित्व के कारण गौरवान्वित हो उठा था। और इनसे भी पहले हमें प्राचीन ग्रंथों में पूर्ववर्ती सम्राटों का उत्सेह मिलता है जिसकी बड़ी रोचक उपाधियाँ भी जो उन्होंने अपनी विजयों द्वारा प्राप्त की थीं और यथोचित धार्मिक समारोहों में उनकी सफलताओं की बौद्धिक करके उन्हें विभिन्न इन उपाधियों से विभूजित किया गया था। वास्तव में इस प्रकार के महान् राजाओं तथा सम्राटों की परम्परा देशों के काल से जारी आती है। अश्वमेध में सुवास का उत्सेह मिश्रित है जिसने बाधराय युद्ध में विजय प्राप्त करके (अश्वमेध ८, ११ २, १ ८१ ८) अश्वमेधकालीन भारत पर अपना प्रभुत्व स्थापित किया था जिसमें उस समय अथवा आधीस अश्वमेधकालीन जातियाँ बास करती थीं।



साम्राज्यवाद की घोषणाओं तथा संस्कार : इस प्राचीन काल में भी सर्वोच्च सत्ता तथा सम्राट की साम्रामीय सत्ता की बाराबा इतन बड़ रूप में स्थापित हो चुकी थी कि उसे ध्वस्त करने के लिए अलग-अलग उपयुक्त ध्वज थे जैसे 'अभि राज' 'राजाधिराज' जलवा 'सम्राट्' जिनका प्रयोग वैदिक साहित्य में बहुत व्यापक रूप से किया गया है। ऐतरेय ब्राह्मण (८, १५) में तो इससे अधिक सारमर्म ध्वज 'एचराट्' का प्रयोग किया गया है। ऐतरेय ब्राह्मण और शतपथ ब्राह्मण में भी (११, ५, ४) भरत-वंश के दो राजाओं की हस्तांति तथा साम्राज्य-राजनीति की विभिन्नियों का बहुत यशमान किया गया है। उनमें कहा गया है कि "भरत के महान् इर्यों तक न तो उनके पहले कोई पहुँचा था और न बाद की में कोई पहुँच सका। वे तो ऐसे हैं जैसे कोई मनुष्य अपने हाथों से आकाश को छू ले।" इन दो संयोगों में इस प्रकार के बारह अन्य महान् राजाओं का उल्लेख मिलता है। राजारव के विभिन्न स्तरों के लिए अलग-अलग संस्कारों का भी वर्णन किया गया है। गोपय ब्राह्मण में राजा के लिए 'राजध्वज' सम्राट् के लिए 'राजरेम' स्वराट् के लिए 'अदधमेव' विराट् के लिए 'पुष्पमेव' सवराट् के लिए 'सर्वमेव' यज्ञ का संस्कार बताया गया है और आपस्तम्ब भीत सूत्र (१, १, १) में 'अदधमेव' यज्ञ का संस्कार केवल शार्ङ्गमीय शासक के लिए विहित है।

कालक्रम का महत्त्व चन्द्रगुप्त के पीछे सम्राटों की यह परम्परा थी। परन्तु उसके उदाहरण में यह परम्परा एक वास्तविकता बन गई और इतिहास की दृष्टि से उसमें प्रामाणिकता आ गई। पुराने राजाओं के केवल नाम ही विहित हैं। उनके बारे में हम निश्चित रूप से नहीं कह सकते कि वे किस समय और किस स्थान पर हुए थे और इसके बिना वे इतिहास के पास नहीं माने जा सकते। जहाँ तक चन्द्रगुप्त का सम्बन्ध है हम प्राचीन भारतीय राजाओं के सम्बन्ध इतिहास में पहली बार ठीक-ठीक बता सकते हैं कि वह किस समय में और कहाँ पर राज्य करता था और कालक्रम के आधार पर उनका इतिहास निर्धारित कर सकते हैं। एक प्रकार से इतिहास कालक्रम द्वारा सीमित है और कालक्रमानुसार इतिहास ही वास्तविक इतिहास है जिसमें विभिन्न घटनाओं को उनके कालक्रम के अनुसार व्यवस्थित कर दिया जाता है। परन्तु विचारों के इतिहास जलवा सांस्कृतिक इतिहास के लिए कालक्रम बनना आवश्यक नहीं है क्योंकि उस इतिहास की रचना अलग-अलग विभिन्न घटनाओं को जोड़कर नहीं की जाती बल्कि उसमें विचारों से सम्बन्धित बड़े-बड़े आंदोलनों का विवरण होता है जो बीच काळाधि में ठँसे होते हैं परन्तु इस प्रकार के सांस्कृतिक इतिहास का आधार भी विचारों के एक क्रम पर होना चाहिए और उसमें विचारों के क्रम को प्रस्तुत किया जाना चाहिए

इसी को मंगलमूर्तर ने 'विचारों का मान्तरिक कालक्रम' कहा है। परन्तु बीदनी विस्तार के लिए कालक्रम निरन्तर आवश्यक है। जब तक निजी व्यक्ति के जीवन तथा उसके कृत्यों के बारे में यह न बताया जा सके कि उनका काल क्या था तब तक वह इतिहास का भाग नहीं बन सकता। चंद्रगुप्त के जीवन तथा मानव काल की विविधता काफ़ी गहरी-गहरी निर्धारित की जा सकती है।

महानता के अल्प कारण जब हम उन दुमरे कारणों पर विचार करेंगे जिनके आधार पर चंद्रगुप्त को महान् समझा जाता है। वह प्रथम मागधीय राजा था जिसने बृहत्तर भारत पर अपना शासन स्थापित किया जिसका विस्तार किर्गिज भारत से भी बढ़ा था। बृहत्तर भारत की सीमाएँ आधुनिक भारत की सीमाओं से बहुत आगे तक ईरान की सीमाओं से मिली हुई थीं। इसने अतिरिक्त चंद्रगुप्त भारत का प्रथम शासक था जिसने अपनी विजया द्वारा सिंधु-बाली तथा पंज नदियों के बीच को गया तथा जमुना की सूखी घाटियाँ के साथ मिलाकर एक ऐसे साम्राज्य की स्थापना की जो एरिया (इराक) से बार्तकिपुर तक फैला हुआ था। नही पहला भारतीय राजा है जिसने उत्तरी भारत को राजनीतिक रूप में एकजुट करने के साथ विध्यापन की सीमा से आगे अपने राज्य का विस्तार किया और इन प्रकार वह उत्तर तथा दक्षिण को एक ही सार्वभौम शासक की सम्मिलिता में के आया। इससे पहल वह पहला भारतीय नेता था जिसे अपने देश पर एक युरोपीय तथा विदेशी आक्रमण के निराशाजनक दुष्परिणामों का सामना करना पड़ा उस समय वेग राष्ट्रीय परामर्श तथा अनिष्टन का गिकार था और फिर उसने मूनानी शासन से अपने देश को पुन स्वतंत्र करने का अग्रतपूर्व ध्य प्राप्त किया। यहाँ पर इस बात का उल्लेख कर दिया जाए कि भारत पर सिकंदर का आक्रमण मई ३२७ ई० पू से मई ३२४ ई० पू० तक रहा और ३२३ ई० पू० तक चंद्रगुप्त ने इस पर मूनानियों के आधिपत्य का नाम-निस्तान तक बिदा दिया था। भारत के बहुत ही बड़े शासकों को इन बात का ज्ञान प्राप्त है कि उन्होंने अपने अपने छोटे-से सामन्तदास में—पुराणों के अनुसार चंद्रगुप्त ने केवल २४ वर्ष तक शासन किया—इतनी अधिक सफलताएँ प्राप्त की हों। इन सब बातों से बढ़कर मौर्य राजवंश के संस्थापक के रूप में चंद्रगुप्त ने पहली बार भारत को एक ऐसा इतिहास प्रदान किया जिसका कम कहीं नहीं टूटा और जो इसके साथ ही एक ही सूत्र में बँधा हुआ इतिहास है वह ऐसा इतिहास है जो भारत की अन्तम-अन्तम जातियों तथा प्रजातियों का अन्तम-अन्तम इतिहास न होकर एक इकाई के रूप में पूरे भारत को अपने में समेट लेता है। चंद्रगुप्त ने इस प्रकार विश्व साम्राज्यिक इतिहास का योगदान किया था वह उसके बाद बहुत समय तक बाकी नहीं रहा। मौर्य सम्राटों के अन्तिम भारत की जो राजनीतिक एकता

स्थापित हुई थी उसे उसके उत्तराधिकारी अधुना न रख सके। उनके बाद भारत के इतिहास की विधा को निर्धारित करनेवाली कोई एक राजनीतिक सत्ता नहीं रही। भारत एक बार फिर अनेक छोटे-छोटे राज्यों में बँट गया जिनमें से प्रत्येक का अलग-अलग अपना इतिहास है।

साधन : यूनानी तथा लैटिन ग्रंथ मौर्यकालीन इतिहास में एक मुनिषा यह है कि उसके साधन पर्याप्त प्रामाणिक तथा विविध प्रकार के हैं। भारतीय इतिहास की एक सबसे बड़ी खोज (जिसके लिए हम सर विलियम जोन्स के बामारी हैं) यह थी कि यूनानी भाषा का सीड्रोकोट्टोस अथवा ऐंड्रोकोट्टोस नाम भारतीय नाम चन्द्रगुप्त ही है (एशियाटिक रिसर्च ४ पृ ११)। इस बात से यह निष्कर्ष निकला कि चन्द्रगुप्त सिकंदर का समकालीन था और स्वयं सिकंदर से भिन्ना भी था। यह बात हमें प्लूटार्क की रचनाओं से साम्य मिली है जिसने लिखा है "ऐंड्रोकोट्टोस जो उस समय नवयुवक ही था स्वयं सिकंदर से भिन्ना था। इस खोज के फलस्वरूप चन्द्रगुप्त मौर्य तथा उसके शासनकाल के बारे में प्रचुर प्रमाण मिल गए हैं जो भारत में सिकंदर के विजय-अभियानों का इतिहास लिखने वालों ने अपनी रचनाओं में दिये हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि विदेशी स्रोतों के कारण भारतीय इतिहास के एक ऐसे अध्याय पर विपुल प्रकाश पड़ता है जो अथवा अपनी महान् उपलब्धियों के कारण इतना घोरबहाली होते हुए भी अथवा मे ही सोया रहता। भारतीय इतिहास उस बीज के लिए भी इन्हीं स्रोतों का बामारी है जिसे 'उसके कालक्रम का मूल आधार' कहा गया है क्योंकि भारतीय कालक्रम चन्द्रगुप्त के सार्वभौम सत्ता चारण करने की विधि से आरम्भ होता है।

सिकंदर के विजय-अभियान में जो लोग उसके साथ आए थे उनमें से तीन भारत के विषय में अपनी रचनाओं के कारण अस्मरणीय हैं (१) निबार्कस जिसे सिकंदर ने सिन्धु नदी तथा पारस की खाड़ी के बीच के समुद्र-तट का पूरी तरह पता लगाने के लिए नियुक्त किया था (२) जोनेसिफिटस या इस नाम में निबार्कस के साथ था और बाद में उसने इस विषय पर तथा भारत के बारे में एक पुस्तक लिखी थी और (३) अरिस्टोबुलस जिसे सिकंदर ने भारत में कुछ काम सौंपे थे।

तीसरी सतावठी ई० पू० में जिन युरोपीय राजदूतों को यूनानी राजाओं ने भारत भेजा था उनमें से कुछ ने सिकंदर के इन साधियों की रचनाओं में पूरक जोड़े हैं। कुर्माण्यस इनमें केवल मेगास्थनीज ही एक ऐसा था जिसने इस समय सर का सहयोग किया। क्लासिकल साहित्य में यही भारत का पूर्वतम विवरण छोड़ गया था परंतु वह विवरण अपने मूल रूप में नहीं भिन्नता। उसका पता

सैन्यवाद के लेखकों की रचनाओं में उसके उद्धरणों से ही समता है जिनमें से निम्नलिखित लेखकों के नाम उल्लेखनीय हैं :—

१ इनाबो इसका जीवनवाक्य लगभग १४ ई० पू० से १९ ई० तक था। इसने भूगोल की एक अत्यन्त महत्वपूर्ण पुस्तक लिखी है। इस पुस्तक के १५वें भाग का प्रथम अध्याय भारत के बारे में है। इसमें सिक्किम के सामियों तथा मेनास्मनीज की रचनाओं से भी गई सामग्री के आधार पर भारत के भूगोल उसके निवासियों के रहन-सहन तथा रीति-रिवाजों का वर्णन किया गया है।

२ डिमोडोरस १९ ई० पू० तक जीवित रहा। इसने मेनास्मनीज की रचनाओं के आधार पर भारत का एक कृतज्ञ लिखा।

३ जिम्नो व्येथ जो मेथुरल हिरट्टी (प्रकृति कृत) नामक विद्वत् ज्ञान कीर्ष का रचयिता है। उसकी यह रचना लगभग ७५ ई० में प्रकाशित हुई थी। इसमें यूनानी रचनाओं तथा व्यापारियों के नवीनतम विवरणों के आधार पर भारत का विवरण दिया गया था।

४ एरिमान इसका जन्म लगभग १३० ई० में हुआ था। यह कम-से-कम १७२ ई० तक जीवित रहा। इसने सिक्किम के अभियांत्रिकों का सबसे अच्छा कृतज्ञ (देनाबसित) और निजार्कस मेगास्मनीज तथा भूगोलवेत्ता एराटोस्मनीज (२७६-१९५ ई० पू०) की रचनाओं के आधार पर भारत उसके भूगोल, जहाँ के रहन-सहन तथा रीति-रिवाजों के बारे में एक छोटी-सी पुस्तक लिखी है।

५ प्लुटार्क (लगभग ४५-१२५ ई०) जिसकी साइक्स (जीवनियाँ) नामक रचना के ५७वें म ९७वें अध्यायों तक सिक्किम की जीवनी दी गई है। उन अध्यायों में भारत का भी विवरण मिलता है।

६ जस्टिन, जो दूसरी सताव्वी ईसवी में हुआ था। इसने एक एस्त्रोन (सारसंग्रह) की रचना की थी जिसके १२वें पत्र में भारत में सिक्किम के विजय अभियानों का विवरण दिया गया है।

भारतीय रचनाएँ सैटिंग तथा यूनानी लोगों के जतिरिक्त बाइबिलों वीदों तथा जीनों के साहित्य में भी ऐसे अल्प मिलते हैं जिनसे आश्चर्य के जीवन तथा उसके समय की परिस्थितियों पर प्रकाश पड़ता है। बाइबिल स्रोतों में बुराण, कौटिल्य का अर्थशास्त्र तथा विजयनगर का मुद्राशास्त्र और कुछ हद तक पामबेक का कपासरित्तामर तथा सेमर की बृहत्कथा अज्जरी-बैसी रचनाएँ शामिल हैं। मुख्य चीज स्रोत दीर्घकाल, महाकाव्य महाकाव्य-टीका तथा जलस्रोतियस हैं। जैन साहित्य में मुख्य प्रामाणिक स्रोत हैं अत्रवाह का कल्पलूक तथा हेमचन्द्र का परिनिष्ठवर्णन। चीन महान के अल्प स्रोतों प्रोफ़ेसर्स गिस्तालेता अथवा मुद्राओं का बल्लेह इस विवरण के बीराम में असाधारण किया जाएगा।

स्थापित हुई थी उसे उसके उत्तराधिकारी अनुष्ण न रख सके। उनके बाद भारत के इतिहास की विधा को निर्धारित करनेवासी कोई एक राजनीतिक शक्ती नहीं रही। भारत एक बार फिर अनेक छोटे-छोटे राज्यों में बँट गया जिनमें से प्रत्येक का अलग-अलग अपना इतिहास है।

सावन युगानी तथा लटिन ग्रंथ : मीरकासीन इतिहास में एक सुविधा यह है कि उसके सावन पर्याप्त प्रामाणिक तथा विविध प्रकार के हैं। भारतीय इतिहास की एक सबसे बड़ी खोज (जिसके लिए हम सर विलियम जोन्स के आभारी हैं) यह थी कि युगानी भाषा का सेंड्रोकोट्टोस अब्बा ऐंड्रोकोट्टोस नाम भारतीय नाम चंद्रपुत्र ही है (एशियाटिक रिसर्च ४ पृ० ११)। इस बात से यह निष्कर्ष निकला कि चंद्रपुत्र सिकंदर का समकालीन वा और स्वयं सिकंदर से मिला भी था। यह बात हमें प्लूटार्क की रचनाओं से मालूम होती है जिसने लिखा है 'ऐंड्रोकोट्टोस जो उस समय नवयुवक ही था स्वयं सिकंदर से मिला था।' इस खोज के फलस्वरूप चंद्रपुत्र मीर तथा उसके शासनकाल के बारे में प्रचुर प्रमाण मिल गए हैं, जो भारत में सिकंदर के विजय-अभियानों का इतिहास लिखने वालों में अपनी रचनाओं में दिये हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि बिदेसी श्रोतों के कारण भारतीय इतिहास के एक ऐसे अध्याय पर विपुल प्रकाश पड़ता है जो अन्यथा अपनी महान् उपलब्धियों के कारण इतना गौरवचाभी होत हुए भी अंधकार में ही सोया रहता। भारतीय इतिहास उस खोज के लिए नौ इन्हीं श्रोतों का आभारी है जिसे 'उसके कालक्रम का मूल साधार' कहा गया है क्योंकि भारतीय कालक्रम चंद्रपुत्र के सार्वभौम शक्ती प्रारंभ करने की तिथि से प्रारंभ होता है।

सिकंदर के विजय-अभियान में जो लोग उसके साथ जाय थे उनमें से तीन भारत के विषय में अपनी रचनाओं के कारण उल्लेखनीय हैं (१) निजार्कस जिस सिकंदर ने सिंधु नदी तथा फारस की खाड़ी के बीच क समुद्र-तट का पूरी तरह पता लगाने के लिए नियुक्त किया था (२) जोनेसिबिटस या इस मात्रा में निजार्कस के साथ था और बाद में उसने इस विषय पर तथा भारत के बारे में एक पुस्तक लिखी थी और (३) अरिस्टीबुलस जिसे सिकंदर ने भारत में कुछ काम सौंपे थे।

गौरी सैफाई ई० पू० में जिन यूरोपीय राजदूतों को युगानी राजाओं ने भारत भेजा था उनमें से कुछ ने सिकंदर के इन साधियों की रचनाओं में पुरक जोड़े हैं। पुर्भाग्यवश इनमें केवल मेगास्थनीज ही एक ऐसा था जिसने इस सुझाव पर का अनुपयोग किया। क्लासिकल साहित्य में वही भारत का पूर्वतम विवरण छोड़ गया था परंतु वह विवरण अपने मूल रूप में नहीं मिलता। उसका पता

केवल बाद के लेखकों की रचनाओं में उसके उद्धरणों से ही समझा है, जिसमें से निम्नलिखित लेखकों के नाम उल्लेखनीय हैं :—

१ **हजाओ** इसका जीवनकाल लगभग १४ ई. पू. से १९ ई. तक था। इसने भूगोल को एक वास्तविक महत्वपूर्ण पुस्तक लिखी है। इस पुस्तक के १५वें भाग का प्रथम अध्याय भारत के बारे में है। इसमें सिक्खों के साधियों तथा मेगास्थनीज की रचनाओं से भी कई सामग्री के आधार पर भारत के भूगोल उसके निवासियों के रहन-सहन तथा रीति-रिवाज का वर्णन किया गया है।

२ **डियोडोरस** ३६ ई. पू. तक जीवित रहा। इसने मेगास्थनीज की रचनाओं के आधार पर भारत का एक वृत्तांक लिखा।

३ **क्विन्टो ग्युष्ठ** जो मेथुरन हिस्ट्री (प्रकृति वृत्त) नामक विषय ग्रन्थ के लेखक हैं। उसकी यह रचना लगभग ७९ ई. में प्रकाशित हुई थी। इसमें यूनानी रचनाओं तथा व्यापारियों के नवीनतम विवरणों के आधार पर भारत का विवरण दिया गया था।

४ **एरियान** : इसका जन्म लगभग १३ ई. में हुआ था। यह कम-कम १७२ ई. तक जीवित रहा। इसने सिक्खों के अभियानों का सबसे अच्छा वृत्तांक (पेनाबसिस) और निमार्कस मेगास्थनीज तथा भूगोलशास्त्रकार मेगास्थनीज (२७६-१९५ ई. पू.) की रचनाओं के आधार पर भारत के नक्शे के रहन-सहन तथा रीति-रिवाजों के बारे में एक छापी-सी पुस्तक लिखी है।

५ **प्लूटार्क** (लगभग ४५-१२५ ई.), जिसकी साक्ष्य (जिन्होंने नामक रचना के ५७वें से ६७वें अध्यायों तक सिक्खों की जीवनी के रूप में उन अध्यायों में भारत का भी विवरण लिखा है।

६ **जस्टिन**, जो दूसरी सताब्दी ई. में हुआ था। — **जस्टिन** (सारासंग्रह) की रचना की भी जिसके ११ वें भाग में भारत के विवरण दिए गए हैं।

अर्थशास्त्र का युग : उपर्युक्त प्रामाणिक स्रोतों में अर्थशास्त्र के विषय में कुछ मतभेद हैं कि यह मीथ इतिहास का प्रामाणिक स्रोत है या नहीं। प्रोफ़ेसर एफ० डब्ल्यू टामस का यह मत है (कम्बिज हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया १ पृ० ४६७) कि इसका रचनाकाल स्पष्टतः मौर्यवाद्य की सीमाओं के भीतर या उससे बहुत निकट है। इससे पहले स्वर्गीय डॉ० जिनसेट ए० स्मिथ ने अपनी अर्थ हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया में और डॉ० एच० जैकबो तथा डॉ० का० ब० जामसबाल ने भी यही मत प्रकट किया था। प्रस्तुत पुस्तक में इसी मत का अनुसरण किया गया है। अर्थशास्त्र की विषय-सूची तथा उसमें बड़ी गई बातों से पता चलता है कि उसके वर्तमान रूप में उसकी रचना किसी समय की क्यों न हुई हो उसमें ऐसी प्राचीनतापूर्ण परिस्थितियों का विचार किया गया है जो मौर्यकालीन भारत पर पूरी तरह चरितार्थ होती हैं। जैसा कि एफ० डब्ल्यू टामस ने आगे चलकर (पूर्वोक्त पृ० ४७४) कहा है 'विस्तृत मौर्य साम्राज्य की रक्षा तथा उसके संरक्षण के बारे में युक्तियाँ व हथौड़े काफ़ी परिमाण में बहुमुख्य जानकारी प्राप्त हुई हैं और यहाँ अर्थशास्त्र की सहायता से हम उसकी पूरी धारणा-व्यवस्था सु-व्यवस्था विधीय पद्धति उसके कानून और उसकी समाज-व्यवस्था का वर्णन कर सकते हैं इसलिए हम इस विषय पर विचार करने के सजबसर से अपने को बाधित न रखेंगे भारतीय इतिहास में इस प्रकार के सजबसर बिरके ही मिलते हैं। बहुत बाद में चाकर भक्तवर्धन के काल में बाइन-ए-अकबरी के रूप में हम इस प्रकार का सुघट उदाहरण मिलता है।'

जन्म अष्टांगतन्त्र के जन्म के बारे में अनेक मतभेद हैं। एक मत के अनुसार उसका जन्म कुलीन ब्राह्मणों में हुआ था यह जन्म कुरु का लज्जित या और राजपूत पाने के संबंध में योग्य था लेकिन दूसरा मत उसे यह कहकर कर्तव्य करता है कि उसका जन्म नीच कुरु में हुआ था यह धृष्ट की सत्ता या और इसलिए राजपूत पाने के योग्य नहीं था। हमें इस विवाद का फैसला करने के लिए दोनों पक्षों की आर से दिए जाने वाले प्रमाणों पर विचार करना होगा।

प्राचीन ग्रंथों के उद्धरण सबसे पहले तो हम विद्वान् प्रामाणिक स्रोतों की छाँटी पर विचार करें। इसमें दो सुविचार्य हैं। पहली यह कि यह सामग्री सबसे पुरानी और अष्टांगतन्त्र के समय से सबसे निकट की है और हमारे यह समकालीन भारतीय लिखतों और कुछ इतिहासकारों द्वारा स्वयं इस विषय पर एकत्र की गई प्रचलित कहानियाँ तथा परम्पराओं पर आधारित हैं।

प्राचीन छाँटी में से हम निम्नलिखित उद्धरण दे रहे हैं, बिना इस प्रसंग पर कुछ प्रकाश पड़ता है

(१) कटिमत में (अथवा अष्टांगी ईगरी) चारण ने (मार्गव राजा जिसे

सिकंदर ने हाइडेस्तीस (मेलम) की सहाई में पराजित किया था और जो उस समय उस प्रदेश का सबसे महान् व्यक्ति था) सिकंदर का बताया 'वर्तमान राजा (मंदरा का राजा जिसे बाद में हटाकर चंद्रमुष्ट मौर्य गद्दी पर बैठा) न बलवान् आदमी है जिसमें मूसल कोई प्रतिष्ठा नहीं थी बल्कि उसकी स्थिति नीचतम थी। उसका पिता वास्तव में मूर्ख था' जो चोरी-छिपे रानी का प्रेमी बन गया और उसने छल से राजा का वध करवा दिया। फिर राजकुमारी के अभिभावक के रूप में काम करने के बहाने उसने सारी सत्ता अपने हाथ में कर ली और मार अत्यवस्य राजकुमारों की हत्या करवा दी उसके बाद उसके एक सत्ताम हुई जो वर्तमान राजा है जिससे उसकी प्रजा बुना करती है या उस क्षुद्र समझती है।"

(२) डियोकारस से पोरस ने सिकंदर को सूचना दी "कि गगारिबाई का राजा (मंदरा का राजा) बिल्कुल बुद्धिमान आदमी है जिसका कोई सम्मान नहीं करता और उसे लोग मर्दान् की संज्ञा समझते हैं।

(३) प्लूटार्क से : "प्लूटार्कटोस (चंद्रगुप्त) जो उस समय नवयुवक ही था स्वयं सिकंदर से मिला था और बाद में यह कहा करता था कि सिकंदर बड़ी आसानी से पुरे देश पर (गगारिबाई तथा प्रामाई) देश पर जिस पर मंदरा का राजा का शासन था) अधिकार कर सकता था क्योंकि वहाँ का राजा स्वभावतः दुष्ट था और उसका जन्म भीषण काल में हुआ था और इसलिए उसकी प्रजा उस बुना तथा विरहकार की दृष्टि से श्रेष्ठ थी।

(४) बस्टिन से (जिसने कहा कि हमें यह पता है ईसा-पूर्व प्रथम शताब्दी की यूनानी रचनाओं के आधार पर, यूनानी शताब्दी ईसवी में अपना पुस्तक लिखी थी) 'सिकंदर की मृत्यु के बाद मानो' भारत की गरदन पर से गुरुामी का जुवा उठर गया और उसने सिकंदर के नियुक्त किये हुए पचाविसागियों को मृत के पाठ उतार दिया। भारत को स्वतंत्र गगनवासा तथा सैन्डाकाटोस (चंद्रगुप्त) था। उसका जन्म एक मामूली ब्राह्मण में हुआ था परन्तु एक क्षत्रिय के कारण वह राजत्व प्राप्त करने के लिए प्रेरित हुआ। अपनी उद्दृष्टा के कारण उसने मौर्य को कुछ कर दिया और उसे मार शासन की आज्ञा दी या बुद्धि की परन्तु वह अपने प्राण लेकर वहाँ से भाग निश्चया।

मंदरा के राजाओं का जीवन काल में जन्म उन उद्गारों से पता चलता

१ "आम तौर पर इस स्थान पर 'अलेक्जेंडर' शब्द मिलता है जिसके बारे में गुडवि ने सिद्ध किया है कि वह गलत है इसलिए उसके स्थान पर 'मौर्य' रख दिया गया है।" (वीकिडिस्त-रचित 'इनडक्शन अंडर इंडिया बाई अलेक्जेंडर' पृ० ३२७)।



है कि अस्टिन के उद्धरण के अतिरिक्त और किसी उद्धरण में चन्द्रगुप्त के बंशक्रम का उल्लेख नहीं मिलता। अस्टिन ने केवल इतना कहा है कि चन्द्रगुप्त का जन्म एक मामूली बराने में हुआ था यह कही नहीं कहा गया है कि उसका जन्म गीब बराने में हुआ था। अस्टिन ने केवल यह कहा है कि वह एक साधारण काम का आदमी था और उसकी गर्मियों में राजाओं का धुन नहीं था परन्तु वह 'राज्य का पद प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील था। जन्म उद्धरणों से पता चलता है कि चन्द्रगुप्त राज्य का पद प्राप्त करने की चेष्टा क्यों कर रहा था? उन उद्धरणों में उन समय साधनात्मक भारतीय राजा के चरित्र के बारे में अनेक अपमानजनक बातें कही गई हैं। उसका जन्म अप्रतिष्ठित था वह एक नार्ड का आरज पुत्र था 'उसकी प्रजा उससे गुना कट्टी भी तथा उस छुद्र समझनी थी। प्लेटार्क के उद्धरण से हमें यह भी पता चलता है कि नंद राजा के 'गीब काम' में पैदा होने की बात स्वयं चन्द्रगुप्त ने सिकन्दर से कही थी। क्या इस कथन से निश्चित रूप से इस बात का संकेत नहीं मिलता कि स्वयं चन्द्रगुप्त का जन्म गीब कुल में नहीं हुआ था? यदि उसका जन्म 'गीब कुल' में हुआ होता तो वह भी गीब कहलाता। इस प्रकार चन्द्रगुप्त ने स्वयं अपने कथन द्वारा अपने-आपका इस कर्मक से मुक्त कर दिया है कि उसका सम्बन्ध किसी अप्रतिष्ठित राजकुल से था या स्वयं उसका जन्म किसी गीब कुल में हुआ था। उपरोक्त उद्धरणों से पता चलता है कि किस प्रकार उस समय की राजनीतिक परिस्थितियाँ चन्द्रगुप्त के लिए राजसूय का पथ प्रदर्शित कर रही थी जिसके लिए वह उद्योग ही 'प्रयत्नशील' था।

इस प्रकार हम देखते हैं कि निवेष्टी मोक्ष की साधनी में जो उस समय के भारतीयों द्वारा दिये गए विवरणों तथा उस समय देश में प्रचलित कहा नियों पर आधारित हैं चन्द्रगुप्त पर इस प्रकार का कोई लाइन नहीं लगाया गया है कि उसका जन्म गीब कुल में हुआ था या उसका सम्बन्ध किसी अप्रतिष्ठित कुल से था। अस्तिक इसके विपरीत इस साधनी में यह वाप 'पूर्वी' भारत के तारामोक्ष साधनात्मक राजा में बताया गया है और इसके फलस्वरूप उसकी स्थिति शायदही होगी या वर्धन किया गया है जिसके कारण वह आवश्यक हो गया था कि उसका तथ्या उलट दिया जाए। अतः चन्द्रगुप्त का यह विचार था कि सिकन्दर आसानी से उसे राजसिंहासन से हटा देगा क्योंकि उस जनता के प्रेम का संस्था प्राप्त नहीं था जो एक राजा के लिए श्रेष्ठतम सुरक्षा हो सकती है। जगता इस बात पर बहुत दृश्य थी कि गीब कुल के एक व्यक्ति ने एक नार्ड की सहाय एकछत्र ने बलपूर्वक सत्ता का अपहरण कर दिया है, और जो इन बातों के अतिरिक्त अंतिम बंश साक्षक का हस्ताक्षर भी था और

भारत दुरभाग्य तथा स्वभावतः 'दुष्ट प्रवृत्ति' का था। जब चंद्रमूक ने देखा कि सिकंदर मार्ग से हट गया है और वह अपने विजय अभियान को और आगे नहीं ले जा सकता और मरने के सम्मोह में पार्स जानेवाली राजनीतिक स्थिति का किसी भी प्रकार काम नहीं उठा सकता तो स्वयं इस काम का बीड़ा उठाने का विचार उमठ मन में उठाया हुआ और ऐसा कि जस्टिस ने कहा है 'राजत्व का पद प्राप्त करने की प्रेरणा ने उसे प्रोत्साहित किया। परन्तु यदि वह स्वयं उस कर्तव्य से मुरझा न जाता जिससे कारण मद से उमड़ी प्रजा इसकी बुद्धा करती या तो वह इस ध्येय को पूरा करने का बीड़ा बिना प्रकार उठा सकता था ? यदि वह देश को बर्बाद करने का अपहरण कर लेनेवाला इस धृष्टि व्यक्ति से मरवा कराने के लिए जयन्ता का समयन प्राप्त करना चाहता था और यदि वह उनके नैतिक समर्थन का सहारा चाहता था जो अग्रतिष्ठित काल में पैदा होने के कारण तथा अपने निम्ननीय कृत्यों के कारण मरने को प्राप्त नहीं हो सका था तो जब तक स्वयं उसकी उत्पत्ति बिल्कुल निष्कर्षक न होती तब तक वह इसकी माया नहीं कर सकता था। एक ऐसा व्यक्ति था इस बात का राजनीतिक काम करने की कोशिश कर रहा था कि उसके प्रतिद्वंद्वी का जन्म नीच कुल में हुआ था वह स्वयं नीच कुल की अवान नहीं हो सकता था। जस्टिस ने चंद्रमूक के वार में यह भी कहा दिया है कि मंदबुद्धि के राजाओं के साथ कोई दूर या भी अपना अर्थ सम्भाल्य होना तो दूर रहा उसमें राजवंश या अभिजात वर्ग के भी रक्त का कोई अंश नहीं था। बाद के कुछ संस्करण प्रती में इस बात का उल्लेख मिलता है कि उसका सम्बन्ध मद राजवंश के साथ था। वह नरवश के राजा का इसलिए नहीं से नहीं हटाना चाहता था कि एक सम्बन्धी के नाते उसे उससे कोई ईर्ष्या थी बल्कि उसे तो केवल इस को मदवश के राजा के भूमिगत प्रभुत्व से मुक्त कराके जनता की इच्छा को पूरा करने का पुनः भी ठीक उसी प्रकार जैसे उसने इस को विजयी घासने से मुक्त कर लिया था।

यदि जीर्णोद्देय भारतीय प्रमाणी पर आधारित विवेची इतिहासों में इस बात का कोई उल्लेख नहीं मिलता कि चंद्रमूक की उत्पत्ति में किसी प्रकार का दोष था तो फिर उसके अग्रतिष्ठित कुल में जन्म लेने की बात कहाँ से निकली ? ममस्त उपसम्भ साक्षात् का व्यापकपूर्वक विस्लेषण करने से पता चलता है कि इस बात का छात्र अर्थ से बहुत दूर का है, और वह सर्वथा प्रामाणिक भी नहीं है।

जब हम इस विषय से सम्बन्धित सभी भारतीय ग्रंथों का दृष्टि तथा जीवन-ग्रंथों पर विचार करेंगे।

पुराणों की सभी ब्राह्मणों के मुख्य ग्रंथ पुराण हैं। पुराणों से पता

बतला है कि उनमें चंद्रगुप्त की अनेकानेक नदबंश के राजाओं का संतुलन की ओर अधिक ध्यान दिया गया है। उनमें सेठ में क्षत्रियों के शासन का अंत हुआ जाने और उसका स्थान पर नदबंश के मूर्खों का शासन स्थापित हुआ जाने पर बहुत चिंता प्रकट की गई है। नदबंश के इन राजाओं की पुराणों में उनके दौर पर अत्यधिक कहा गया है। नंद राजबंश के संस्थापक की पुराणों में 'गुह्यापमोद्भव' (गुह्या से उत्पन्न) और 'महापद्मपति' (विस्मयजनित) का अर्थ 'अत्यन्त लालची' करते हैं) कहा गया है। टीकाकार के मतानुसार 'महापद्म' शब्द का अर्थ अतृष्ण सेना यथवा अपार सम्पदा (महापद्म = १०००० करोड़) हो सकता है। (विस्मय का विष्णु पुराण पृ० १८४)।

पुराणों से हमें पता चलता है कि पूर्ववर्ती विद्युत्मान राजा क्षत्रिय थे (क्षत्र-वंशज)। उनके बाद नदबंश के तीसरे राजा हृष्ट, महापद्मनन्द तथा उसके आठ पुत्र। महापद्म 'अपर परमुराम' 'समस्त क्षत्रियों की भाँति का अंत करने वाला' (सर्वसत्त्वहन्ता) 'समस्त क्षत्रियों को बंद से उखाड़ देने वाला' (सर्वसत्त्वानु-प्लव) 'क्षत्रियों का विनाश करने वाला' (क्षत्रविनाशक) बन गया और उसने अपने आपको 'पूरे राज्य के एकमात्र सार्वभौम शासक' (एक-राट्) के रूप में स्थापित कर लिया और पूरे राज्य को 'एक ही सत्ता की छत्रछाया में' (एक-चक्रम्) के आगे जिससे कोई टक्कर नहीं ले सकता था' (अनुस्तीयित-आसक्त)। इसके बाद पुराणों में कहा गया है कि 'अध्यात्मिक' राजाओं के इन बंध को 'एक दिन' 'कौटिल्य नामक एक ब्राह्मण' 'समूह नष्ट कर देगा' और वही 'कौटिल्य' चंद्रगुप्त को राज्य के सार्वभौम शासक के रूप में सिंहासन पर बिठावगा' (राज्ये-अभिसेव्यति)।

उन्हें केवल नंद के नीचे कल में पैदा होने का ज्ञान है। पुराणों के इन उद्धरणों में किसी प्रकार की रक्षा का स्थान नहीं रहने दिया गया है। इनसे स्पष्ट रूप से निम्नलिखित बातों का संकेत मिलता है (१) नदबंश के राजाओं का जन्म नीचे कुल में हुआ था और उन्होंने गुह्या का अध्यात्मिक तथा अर्थशास्त्र की स्थापना की थी जो शास्त्र का प्रतिफल है (२) सेठ की गुह्या शास्त्रों द्वारा बलान् अग्रहृत की गई सत्ता का शासन से मुक्त कराने और पुनः क्षत्रियों के बीच शासन की स्थापना करने का काम धर्मरक्षक के रूप में कौटिल्य नामक एक ब्राह्मण ने पूरा किया और (३) नदबंश का 'निर्मूल' कर देने अपने जीवन का उत्तर पूरा कर देने के बाद कौटिल्य ने चंद्रगुप्त का सिंहासन का अभिषेक किया और विभिन्न उपायों द्वारा साम्राज्य का अर्थशास्त्र के द्वारा सार्वभौम शासक के रूप में चंद्रगुप्त का विभिन्न साम्राज्य

इन बात का निश्चित प्रमाण है कि उसने जिस व्यक्ति को इन पर क सिए बना या वह अवश्य ही कमीन घराने का रहा होगा वह अवश्य ही राजत्व का पर प्राप्ति करने के योग्य दायित्व रहा होगा ।

अथशास्त्र से भी इसी बात का प्रमाण मिलता है यह बात अवश्य महत्त्वपूर्ण है कि स्वयं काटिस्य के अथशास्त्र से भी पुराणा के इन उद्धरणों का अर्थ बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है । अथशास्त्र के अंत में कहा गया है "अथशास्त्र के सकल एक ऐसे व्यक्ति ने किया है जिसने मातृभूमि को उसकी संस्कृति तथा उसका ज्ञान (शास्त्र) का उसकी धार्मिक धर्म का (शास्त्र) नदबध के राजाओं के अनुकूल से बलपूर्वक (अमर्ष) तथा शीघ्र (आशु) मुक्त कराया ।" इन उद्धरण से पता चलता है कि कौटिल्य इस बात को अपना शास्त्रात्मिक तथा अपरिहाय धार्मिक कर्तव्य समझता था कि वह पूरे राजाओं के अर्थ दामन का महाशीघ्र तथा बलपूर्वक अंत कर दे क्योंकि देश के आध्यात्मिक तथा सांस्कृतिक हित यही तक कि धार्मिक हित भी उनके हाथों में नहीं छोड़े जा सकते थे । कौटिल्य जिस सामाजिक व्यवस्था तथा समाज-व्यवस्था का समर्थन या उस बनायमन कहते हैं जिसमें पूरे को राजत्व के अधिकार नहीं हैं । केवल धर्मियों की ही इसका एकमात्र अधिकारी बताया गया है जिसका काम 'घराना चरण करना' (प्रवर्तनीय) और 'मनुष्यमात्र की रक्षा करना' बताया गया है अर्थात् सना-सम्बन्धी तथा प्रमाण-सम्बन्धी हत्य दायित्व के हैं । धर्मिय राजा का यह काम है कि वह सर्वोच्च सत्ता के रूप में धर्म की नीति के धारण की रक्षा करने तथा उसका परिपालन करने के लिए देश के रूप में अर्थात् कार्याग के रूप में काम करे । इसलिए यह समझना बिल्कुल बतुकी बात है कि कौटिल्य ने जिसने इस धर्म अर्थात् इस व्यवस्था के माने पर से एक धर्म के प्रभुत्व के कर्तव्य को धा देन का बीड़ा उठाया था इस पवित्र धर्म की पूर्ति के लिए एक ऐसे व्यक्ति को अपना निमित्त बनाया होगा जिसमें स्वयं भी वही धर्म रहा हो । वह एक धर्म के स्वाग पर दूसरे धर्म का धार्मिक धारक के रूप में अभिप्रेत नहीं कर सकता था । इनके अतिरिक्त हम उक्त कृष्ण में जन्म लेने वाले (अभिजात) और शीघ्र कृष्ण में जन्म लेने वाले (अभिजात) राजा के बारे में स्वयं कौटिल्य का मत भी जानना है । कौटिल्य उक्त कृष्ण में जन्म लेने वाले राजा को चाहें वह जन्मद्वार और धार्मिकहीन (धर्महीन) ही क्यों न हो शीघ्र कृष्ण में जन्म लेने वाले राजा की गुमना में चाहें वह मिथ्या ही बलवान क्यों न हो बेहतर समझते हैं । उनका तर्क यह है कि जन-शासन उक्त कृष्ण में पैदा हुए राजा का अपन-आप स्वागत करते हैं (प्रकृत्य स्वयम् उपनमन्ति) और वे उसका अनुसरण करने की तैयार रहते हैं (अनुवर्तन्ते) क्योंकि उनके हृदय

में कुल-उत्पत्ति (अर्थात् कुलोत्पत्तम्) तथा चरित्र (ऐश्वर्यप्रकृति) एवम्भी-  
हता) से प्राप्त होने वाली महानता के प्रति एवम् स्थायी सन्मान होता  
है। इसके प्रतिकूल जन-साधारण के हृदय में भीषण कुल में जन्म करने वाले राजा  
के प्रति एक स्थायी नकार जन्म होता है और उसकी तिष्ठता (उपजायम्)  
का समर्थन करने के लिए वे तैयार नहीं होते (विस्मयवन्ति न अनुवर्तन्ते)।  
क्याकि कहावत है कि 'प्रेम सर्वेषां से जायते' (अनुरागे सर्वेषाम्)  
(अर्थशास्त्र ८)। इसे पढ़कर ऐसा लगता है मानो कीटिन्स अपनी सजाई  
दे रहे हों कि उन्होंने अस्तिताकी तथा जनमानस सूत्र राजा नंद की तुलना में  
चन्द्रगुप्त-जैसे साधारण व्यक्ति को, जो एक कुलीन क्षत्रिय का राजपद के लिए  
जबकि उपयुक्त क्यों समझा ?

'मौर्य' राज्य पुराणों के एक टीकाकार ने पुराणों में चन्द्रगुप्त के लिए प्रयुक्त  
'मौर्य' शब्द की एक अनोखी व्याख्या का पता लगाकर चन्द्रगुप्त के बीच कुल  
में वैरा होने का मत पहली बार व्यक्त किया था। इस टीकाकार ने 'मौर्य'  
शब्द का अर्थ 'मुष्ट' का पुत्र बताया था जो राजा नंद की एक पत्नी की (चंद्र-  
गुप्तम् नंदस्वैव कर्मोत्तरस्य मुरासंभवस्य पुत्रम् मौर्यात्मा प्रभवम्)। मगधान्  
बचावे ऐसे टीकाकारों से जो मूलपाठ में अपनी कल्पना के गढ़े हुए तथ्य बाँट  
देते हैं। टीकाकार ने इस प्रसंग में यह आश्चर्यजनक बात कही है कि चन्द्रगुप्त  
नंदवंशीय राजा का पुत्र था जबकि किसी भी पुराण में इस बाध का एक  
शब्द भी नहीं कहा गया है। यह बात पुराणों में चन्द्रगुप्त से सम्बन्धित उन  
उल्लेखों के अन्तर्गत है जो ऊपर बताया जा चुका है सर्वथा प्रतिकूल बैठती  
है। यह बात भी ध्यान में रखने योग्य है कि यदि किसी पूर्ववर्ती तथा परवर्ती  
राजवंश के बीच कोई सम्बन्ध होता है तो पुराणों में इस बात का उल्लेख अवश्य  
किया जाता है। उदाहरण के लिए—विष्णुनाय राजवंश के बारे में जिसके  
बाद नंदवंश के राजा गरी पर बैठे यह बात स्पष्ट रूप से बही गई है कि दम  
विष्णुनाय राजाओं में से नवीन विजयन ना और दमवी राजा उनका पुत्र महा  
नरिन ना और "एक मूल स्त्री से महानरिन का एक पुत्र होता महापुत्र (नंद)  
जो राजा बनेना और समस्त क्षत्रियों का नाश करेगा। इसके बाद जो राजा होंगे  
वे मूर्खों की संतान होंगे। यदि यही बात मौर्यों पर भी चरितार्थ होती और  
मौर्यवंश के मूल राजा का पूर्ववर्ती नंदवंश के राजा के साथ वैसा ही सम्बन्ध  
होना जैसा कि नंदवंश के राजा का अपने पूर्ववर्ती विष्णुनायवंश के राजा के  
साथ था तो पुराणों में इस बात का उल्लेख अवश्य किया गया होता। व्याकरण  
की दृष्टि से 'मुष्ट' से 'मौर्य' की उत्पत्ति निकालना टीकाकार की कोटी कल्पना  
के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। टीकाकार को जहाँ सच्चाई की कोई चिन्ता

ही है। वहाँ उसका व्याकरण का ज्ञान भी बहुत ही साफ़ है। व्याकरण व किसी भी नियम से 'मीर्य' शब्द की व्युत्पत्ति का प्रत्यक्ष स्रोत 'मुरा' शब्द में ढूँढ सकना सम्भव है। मुरा से जो शब्द बनेगा वह 'मीरेय' होगा। 'मीर्य' शब्द केवल पुस्तक्य शब्द 'मुर' से बन सकता है जिसका उल्लेख पाणिनि के सूत्र के एक मन्त्रपाठ में एक नाम के रूप में किया गया है (४ १ १५१)। बड़े भार्गव की बात है कि 'मीम' शब्द की व्युत्पत्ति का स्रोत इस शब्द में नहीं लाया गया है। टीलाकार का व्याकरण की अपेक्षा चंद्रगुप्त की माँ का नाम खोजने में ज्यादा दिलचस्पी थी। टीलाकार में अच्छाई की बात केवल इतनी है कि उस में बचस व्याकरण तथा इतिहास का कोई ज्ञान नहीं है बल्कि उसे चंद्रगुप्त की कुल-उत्पत्ति में किसी कर्मक का भी ज्ञान नहीं है। क्योंकि उसने यह नहीं कहा है कि चंद्रगुप्त की तथा कथित माता एवं भूट स्त्री थी या वह नंदवंशीय राजा की रजक थी। उसने मुरा को राजा की बच पत्नी तो बताया है पर उसकी जाति के बारे में एक शब्द भी नहीं कहा है। इस प्रकार हम पुराण के इस टीलाकार का भी चंद्रगुप्त के कुलहीन हल के मत का प्रवर्तक नहीं ठहरा सकते।

प्रश्न यह है कि बागिर इन साक्ष्य का अन्वयता कौन है ?

मुद्राराक्षस की छापी 'बृपल' तथा 'कुलहीन' शब्दों का प्रयोग आम तौर पर यह माना जाता है कि इस कहानी का असली स्रोत मुद्राराक्षस है जिसके इस प्रसंग के उद्धरणों पर हम आलोचनात्मक दृष्टि डालेंगे। एमा प्रतीत होता है कि यह सारी कहानी 'बृपल' तथा 'कुलहीन' शब्दों के अर्थ पर आधारित है जिसका प्रयोग इस नाटक में चंद्रगुप्त के लिए किया गया है। इन शब्दों को उनके प्रसंग से अलग करके उनकी व्याख्या स्वतंत्र रूप से नहीं की जानी चाहिए। इस नाटक में 'बृपल' शब्द का प्रयोग चंद्रगुप्त के लिए कई जगह किया गया है और उसका बही अर्थ लगाया गया है जो साधारणतया इस शब्द का होता है—'भूट की छतान। परन्तु यह बात ध्यान देने योग्य है कि इस शब्द का एक और अर्थ भी हो सकता है, जो कर्मक का सूचक न होकर प्रसंगात् बचस का बोधक है। स्वयं इस नाटक में एक जगह (३ १८) 'बृपल' शब्द का प्रयोग सम्मानसूचक अर्थ में किया गया है—'ओ राजाओं में बृप के समान हो अर्थात् सबघोष्ठ राजा। अन्य कई स्थानों पर भी बाचनम अपन प्रिय सिध्द को इसी नाम से संबोधित करता है और एक प्रकार से यह उसका प्यार का नाम बन गया है। नाटक में केवल चंद्रगुप्त के शत्रुओं को ही उसका अपमान करने के लिए इस शब्द का प्रयोग करते हुए दिखाया गया है (५, ६) और सो भी उसके प्यार के नाम के स्नेह का काम उठाते हुए। इस प्रकार नाटक से यह बात कहीं भी सिद्ध नहीं होती कि 'बृपल' शब्द का प्रयोग अपमानसूचक अर्थ में किया गया है। इसी प्रकार

चन्द्रगुप्त के लिए प्रयुक्त दूसरे शब्द 'कृत्स्नीन' (२, १७) का भी ऐसा ही अर्थ लगाने का प्रयत्न किया गया है, और यह बताने की कोशिश की गई है कि इस शब्द में निश्चयेष्ट उसकी 'निम्न कुल-उत्पत्ति' का संकेत मिलता है। परन्तु जिस प्रसंग में इस शब्द का प्रयोग किया गया है उससे कमल यह पता चलता है कि इसका अर्थ 'निम्न' (साधारण) कुल है—'नीच' कुल नहीं। इस शब्द से उसकी उत्पत्ति पर कोई कलंक नहीं लगता। इसका अर्थ समझ में नहीं है या अस्तित्व ने कहा है कि 'इसका जन्म एक मामूली घराने में हुआ था। वास्तव में इसका अर्थ यह है कि चन्द्रगुप्त का जन्म एक हीन कुल में जबकि एक मामूली घराने में हुआ था इसके विपरीत मगधवंशीय राजाओं को 'प्रविष्ट-कुलज' अर्थात् 'प्रतिष्ठावान कुल का' या 'उच्च कुल का' [उच्चैरधिक्रानम् (१, ६)] कहा गया है। इस नाटक में चन्द्रगुप्त के सम्बन्ध में उल्लेखित जिस बात पर जोर देते हैं वह यह है कि वह एक 'मया' (अप-स्टार्ट) राजा है जिससे वह की कभी कोई क्वालि अथवा कीर्ति नहीं रही (अप्रविष्ट-कुल) जिसमें अभिजात-जन या राजाओं के रक्त का जल भी नहीं है और इसलिए वह उस सिंहासन पर बैठने के सर्वथा अयोग्य है जिसे मगध के कुलीन राजाओं ने सुगोपित किया था। वह तो पुराणों के अर्थ का अर्थ करना है। जबकि पुराणों में मगध के राजाओं का दूख बताया गया है और उनकी कुल-उत्पत्ति पर घृणा प्रकट की गई है, मुद्रा-राजस में पाँचा ब्रह्मकुल उल्लेख किया गया है उसमें मगधवंशीय राजाओं की गौरव वाली कुल का बताया गया है। एक साधारण शब्द में जन्म लेने वाले व्यक्ति के सारे सम्पूर्ण चन्द्रगुप्त के हितों में आए हैं और उसे एक अज्ञात तथा अप्रतिष्ठित परिवार का 'मया' बनी दिखाया गया है। परन्तु नाटक के पक्षपात अथवा पूर्वाग्रह की इतिहास नहीं माना जा सकता और न ही एक ऐसे नाटक को जो चन्द्रगुप्त के समय के आठ सौ वर्ष बाद लिखा गया हो इतिहास के सत्य के रूप में पुराणों से अधिक प्रामाणिक माना जा सकता है।

टीकाकार की छाती : यद्यपि चन्द्रगुप्त पर कोई कलंक लगाने के लिए मुद्राराक्षस का उल्लेख नहीं किया जा सकता परन्तु चन्द्रगुप्त को इस नाटक के टीकाकार के अनुसार वे सुझावा मुश्किल हैं जो निश्चित रूप से यह कलंक उस पर लगाता है। मुद्राराक्षस के अठारहवीं शताब्दी के बुधिराज नामक एक टीकाकार ने इतिहास में कुछ नयी बातों का समावेश किया है। अपनी टीका 'उद्घोषाव' में इसने सर्वप्रसिद्ध नामक एक व्यक्ति का उल्लेख किया है जिसकी दो पत्नियाँ थी—सुनंदा और मुरा। सुनंदा के भी पुत्र हुए जो नंद कह गये और छापी रानी मुरा के भी एक नामक एक पुत्र हुआ। चन्द्रगुप्त के बारे में जो माना प्रकार की कथाएँ प्रचलित हैं, उनके सम्ये इतिहास में यह बात की

सोज करने का काम घुड़राज के लिए ही छाड़ दिया गया था कि मरा 'बृष-  
सारथि' भी अर्थात् वह 'वृष' यानी गुर की गुनी भी । घुड़राज के इस  
मत का किनी ने भी समर्थन नहीं दिया है और हम उसके वस्तुस्थिति का वही मूल्यां-  
कन करेंगे जो उसका प्राप्य है । इस टीका में यह भी अर्थ निहित है कि सर्वाथि-  
सिद्धि तथा उसको शत्रिय पत्नी गुनदा के गो पुत्र जा नद बहुमाय ढँबी आनि  
के व । घुड़राज क मतानुसार अत्रमुप्य का पिता मीय का और सर्वाथिसिद्धि ने  
अपना सनापति अपने नद पुत्रा को न बनाकर मीय का बनाया था इस पर नद  
अनुभों ने उस स मीय तथा उसके सब पुत्रों का मरवा दिया बचक अत्रमुप्य  
चाग निकला । मर्यों का एक दूसरा शत्रु आपन्य भी था । समान शत्रुता क कारण  
ये दोनों मित्र बन गए ।

मुद्राराक्षस को कुछ और बातें मुद्राराक्षस में हम विषय में कुछ और बातों  
का भी रस्योद्घाटन किया गया है । यह बात ध्यान देने योग्य है कि अत्रमुप्य  
के प्रति हम नाटक का कृत्रिमता एव-वैसा भी नहीं है और न ही वह सुमय  
है । वही-वही ता हम बात का अत्यधिक ध्यान रखा गया है कि उसे बृष-  
कहकर उसके प्रति विरक्तार न प्रकट किया जाए, वरिष्ठ उसे 'राजकुमार' नद  
अंध की संतान 'नन्दान्वय' या 'मीय-पुत्र' (२ ६) कहकर संबोधित किया  
जाए और जब नंदवंशीय राजा के स्वामिभक्त अनुचर तथा मंत्री राक्षस ने अपन  
आपको अत्रमुप्य का 'गिरुपरायमत' अर्थात् उसके परिवार में अपने दाप-दायों  
के समय से मंत्री का काम करनेवाला कहा ता उसमें भी इसी मावता का बोध  
होता है । उसने एक जगह अत्रमुप्य को अपना 'स्वामिपुत्र' भी कहा है । यह बात  
भी ध्यान देने योग्य है कि "स नाटक में अत्रमुप्य को 'नंद-पुत्र' न कहकर 'मीय-  
पुत्र' कहा गया है । फिर भी उसे 'नंदवंश की संतान' कहा गया है क्योंकि वह  
सर्वाथिसिद्धि के पुत्र मीय का बेटा था और सर्वाथिसिद्धि भी नंदा का पिता था  
और स्वयं नंदवंश की संतान था । इस बड़े राजा को भी नंद कहा गया है । नाटक  
में दिखाया गया है कि राक्षस के परामश से वह पाटलिपुत्र छोड़कर बन में भाग  
गया था क्योंकि अत्रमुप्य तथा आपन्य ने एक-एक करके उसके सभी पुत्रों को  
नंदों को मरवा डाला था । फिर भी अत्रमुप्य को अपना पिता का हुर्यारा नहीं  
कहा जा सकता क्योंकि उसे कहीं नंद-पुत्र नहीं कहा गया है वह उन ही नंदों में  
किसी को भी संतान नहीं था । उसके लिए जिस दूसरे शब्द 'मीय-पुत्र' का प्रयोग  
दिया गया उसके कारण वह इस अर्थपर अपराध के बोध से मुक्त हो गया है  
(रेकिण—सी० बी० बटर्ली इंडियन कलेक्टर में 'जायकेशंस मीन वि बृहत्कथा',  
खंड १ पृष्ठ २२१) ।

हम प्रकार इस नाटक में जो बात नहीं गई है, वह पुराणों के अनुकूल नहीं



है क्योंकि पुराणों में चंद्रगुप्त तथा मौर के बीच रक्त के किसी सम्बन्ध का उल्लेख नहीं किया गया है। नाटक में यह बात पुराण ने टीकाकार से भी गई है, जिसने जैसा कि हम पहले देख चुके हैं, पक्ष्मी वार इस प्रकार के सम्बन्ध का प्रमाण जुटाया था।

मुद्राराक्षस की अन्य कई बातें भी पुराणों से मेल नहीं खाती। जबकि पुराणों में केवल भीम नरों का उल्लेख किया गया है, इस नाटक में सर्वार्थसिद्धि नामक एक रसमें मौर का भी उल्लेख मिलता है, जिसे मौरवर्धनीय कहा गया है और जिसे अंतिम मौर राजा के देहान्त के बाद सिंहासन पर बिठाया गया है। इस प्रकार चाणक्य तथा चंद्रगुप्त को जिस वस्तु के विरुद्ध लड़ना पड़ा वह स्वयं मौर राजा नहीं था, जैसा कि पुराणों में कहा गया है, बल्कि उसका गोती था। नाटक चाणक्य के इस कथन से आरम्भ होता है कि उसने "पृथ्वी पर से भी मौरों का नाम-निशान मिटा दिया है और मल्लव को निर्मूलक कर दिया है। परन्तु जब तक मल्लव की किटी भी साक्षात् का एक भी व्यक्ति जीवित है, तब तक वह अपने लक्ष्य को पूरा नहीं समझ सकता।" और इस प्रकार, इस दृष्टि से, उसने सर्वार्थसिद्धि की हत्या करवाकर ही हम जिया, जो उस समय जंगल में तपस्विता का जीवन व्यतीत कर रहा था क्योंकि वह 'मल्लव की' एकमात्र सेव 'पापा के दण्ड में बन्ध रहा था।

काश्मीरी परम्परा काश्मीर की कथासरित्सागर तथा बृहत्कथामञ्जरी नामक दो संस्कृत रचनाओं में जो दोनो ही बहुत बार की (११वीं शताब्दी) रचनाएँ हैं, चंद्रगुप्त के वंश का एक वृत्त ही बिना प्रस्तुत किया गया है।

इन रचनाओं में न तो नौ मौरों का उल्लेख है और न उनके पिता सर्वार्थसिद्धि का ही जिनका संस्कृत मुद्राराक्षस में दिया गया है। इन रचनाओं में केवल दो मौरों का उल्लेख किया गया है (१) पूर्व-मौर, जिसे चंद्रगुप्त का पिता बताया गया है (जबकि मुद्राराक्षस में उसके पिता का नाम भीम बताया गया है) (२) क्षिरसमुद्र तथा हरिगुप्त के पिता योग-मौर।

यह बात स्पष्ट नहीं की गई है कि पूर्व-मौर और योग-मौर का आपस में क्या सम्बन्ध था और न ही यह बात साफ-साफ बतायी गई है कि इन दोनों का जन्म भी या इस मौरों के साथ क्या सम्बन्ध था जिनका उल्लेख मुद्राराक्षस में मिलता है।

यह बात भी कही नहीं कही गई है कि पूर्व-मौर रामगुप्त या भीम नहीं। हमें केवल इतना पता चलता है कि वृत्त में मौर अर्थात् योग-मौर राजा था जो चाणक्य की हत्या अर्थात् जाह्नव के फलस्वरूप मृत्यु की प्राप्ति हुआ और चाणक्य ने उसका स्थान पर चंद्रगुप्त की सिंहासन पर बिठाया। इस मौर के बारे में भी यह कहा गया है कि वह मौर था और उसका पड़ाव अयोध्या में था।

इस प्रकार यदि जम्मू मित्राक्षर दत्ता जाए तो यह बात बिल्कुल स्पष्ट है कि नंद बाबूजी तथा चंद्रगुप्त के नामों के असाधारण कारकीर्दी की रचनाओं में भी मित्राक्षर के नामों के समानता नहीं है। यद्यपि मित्राक्षर के बारे में यह बात धारणा बहुत व्यापक है कि वह या तो गुणाक्षर की बृहत्कथा पर आधारित है या उसके पश्चात् काश्मीरी कथाओं पर। या यह भी संभव है कि वह बृहत्कथा के अंशों पर आधारित हो। काश्मीरी रचनाओं का जमाना जिसका हिस्सा ही नहीं है। उगम तथा मित्राक्षर की कहानी में कोई समानता नहीं है (सी० टी० चर्चियाँ इंडियन क्वेस्टर पृष्ठ १ पृष्ठ २१० तथा उनके बाद के पृष्ठ)।

बीडू दुदितोय : जब हम बीडू रचनाओं के दृष्टिकोण पर विचार करेंगे तब हमें कहा गया है कि 'मंदिर' के कृष्ण का कोई पता नहीं चलता (अनात कुल) और चंद्रगुप्त को असंख्य रूप से अभिजात कुल का बताया गया है। चंद्रगुप्त के बारे में कहा गया है कि वह मौर्य नामक क्षत्रिय जाति की संतान था। मौर्य जाति काश्मीर की उस उच्च तथा पवित्र जाति की एक शाखा थी जिसमें महात्मा बुद्ध का जन्म हुआ था। कथा के अनुसार जब अत्याचारी कोसल नरेश बिम्बिसार ने राज्याभिषेक पर आक्रमण किया तो मौर्य अपनी मूर्ख विराटरी से अलग हो गए और उन्होंने हिमालय के एक सुस्थित स्थान में जाकर छिप गई। यह प्रदेय मौर्यों के लिए प्रसिद्ध था जिस कारण वहाँ जाकर बस जाने वाले को मौर्य कहलाने लगे जिसका अर्थ है मौर्यों के स्थान के निवासी। मौर्य शब्द 'मोर' से निकला है, जो संस्कृत के 'मयूर' शब्द का पालि पर्याय है। एक और कहानी भी है जिसमें मौर्यनगर नामक एक स्थान का उल्लेख मिलता है। इस शहर का नाम मौर्य-नगर इसलिए रखा गया था कि वहाँ की हमारतों 'मोर' की गरल के रंग की ईंटों की बनी हुई थी। जिन लोगों ने इस शहर का निर्माण किया था वे मौर्य कहलाये। महाबोधिसत्त्व (सम्पादक स्ट्राप पृ० ९८) में कहा गया है कि "कुमार" चंद्रगुप्त जिसका जन्म राजाओं के कुल में हुआ था (मंदिर-कुल-संभव) जो मौर्य शहर का निवासी था जिसका निर्माण क्षत्रियपुत्रों ने किया था बाबूजी नामक शाहूज (क्षत्रिय) की सहायता से पाटलिपुत्र का राजा बना।

महाबोधिसत्त्व में यह भी कहा गया है कि चंद्रगुप्त का 'जन्म क्षत्रियों के मौर्य नामक वंश में' हुआ था (मौर्यन पालियन वंशे जात)।

बीडू के बीच निकाल नामक ग्रंथ में (२ १९७) पिण्डकिशन में रहने वाला मौर्य नामक एक क्षत्रिय वंश का उल्लेख मिलता है।

विष्णुवर्धन (सम्पादक कावेस पृ० १७) में बिम्बिसार (चंद्रगुप्त के पुत्र) के बारे में कहा गया है, कि उसका एक क्षत्रिय राजा के रूप में विभिन्न अभिप्राय

हुआ था (सत्रिय-सूचीविषयक) और अशोक (चंद्रगुप्त के पुत्र) का लक्षित किया गया है।

चीन परम्परा चीन परम्परा में भी यह वर्णन मिलता है कि चंद्रगुप्त एक गाँव के मुखिया की बेटी का पुत्र का जहाँ के रहने वाले 'राजा के मोरों की देखभाल करने वाले' (मयूर-नीयक-ग्रामे) कहलाते थे [ हेमचंद्र कृत परिशिष्ट पर्वण (८, २३०) ]। मंद के बारे में इसी ग्रंथ में कहा गया है कि उसका पिता माई और माँ बम्मा थी (जिसे यूनानियों ने पिछले राजा की रानी बताया है) (पुर्बोक्त ६, २३२)। इस प्रकार उस पर दोहरा झगड़ा लगाया गया है, क्योंकि उसके माता-पिता दोनों ही कमकित थे। साम्राज्यक तुत्र (पृ. १९१) में भी भी तर्कों का (बचने बड़े) उल्लेख किया गया है, और इनमें से पहले मंद को माई की सुतान बताया गया है (नापितदास राजा बस्त.)।

परंतु यह बात ध्यान में रखने की है कि परिशिष्टपर्वण (८, १२) की कहानी के अनुसार नववर्षीय राजा को सिंहासन से उतार देने के बाद चाकस्य ने उसे इस बात की अनुमति दे दी थी कि वह एक रथ भर सामान लेकर पाटलिपुत्र छोड़कर जा सकता है। अगले समय उसके साथ उसकी बी पत्नियाँ तथा एक बेटी थी जो चंद्रगुप्त को देखते ही उस पर मोहित हो गई और उसके पिता मंद ने उसे चंद्रगुप्त से विवाह कर केने की इजाजत दे दी "क्याकि सत्रिय क्रम्याए अपना वर प्रायः स्वयं चुनती है" (प्रायः सत्रिय-क्रम्यामायु शास्त्रे हि स्वययुतः)। इससे तो यही ध्वनि निकलती है कि मंद अभी तक सत्रिय होने का दावा करता था।

स्मारकों की साखी : स्मारकों के अवशेष प्रमाण से बीज तथा चीन दृष्टिकोणों की बड़े अनीय ढंग से पुष्टि होती है इन दोनों में मौरिय व्यवस्था मौर्यवंश का सम्बन्ध मयूर सभ्य के साथ बताया गया है। मयूरगढ़ में अशोक-स्तंभ के निचले सिरे पर जो भूमि के चराचर के नीचे या एक मोर का चित्र अंकित है और छाँचों के बिगुल स्तूप में भी पत्थर पर खुदे हुए अनेक चित्रों में वही मोर की आकृति देखने में आती है। इन चित्रों का सम्बन्ध अशोक से बताया जाता है, क्योंकि उनमें उसी के जीवन की घटनाओं का चित्रण करने का प्रयत्न किया गया है। पहले तथा 'सर ऑन मार्शल' दोनों ही 'पुनबेरेल' से सहमत हैं किन्हीं सबसे पहले यह बात कही थी कि मोर का चित्र इस बात का चिह्न है कि मोर मौर्यी का बंग प्रतीक था।

सारांश : चंद्रगुप्त के जन्म तथा बचपन से सम्बन्धित इन विभिन्न प्रचलित परम्पराओं का सारांश निकालते हुए हम देखते हैं कि उनमें किन बातों पर मतभेद है और किन बातों पर मतभेद। यूनानी कृतियों तथा पुराणों में इस बात पर

मतीय है कि कस्यात उत्पत्ति चंद्रगुप्त की नहीं बल्कि मंडवर्षीय राजा की थी। यूनानी वृत्तांतों में मंडवर्षीय राजा को एक मर्द का कारण पुत्र कहा गया है और पुत्रियों में मंडवर्ष को पुत्र कहा गया है। यूनानी वृत्तांतों में उनकी मीच-कूत-उत्पत्ति का और विस्तारपूर्वक वर्णन करते हुए कहा गया है कि उनका सुदृष्ट पिता एक दयवान मर्द था जिससे राजा मंड की रानी प्रेमपाश में बंध गई थी। इन दोनों के बीच अवैध प्रजनन-सम्बन्ध चलते रहे और अंत में रानी ने अपने राज-वर्णित पति की हत्या करवाकर उसे मार्य से हटा दिया। परंतु मुरारामस में विष्णुकुट ही उत्तम पितृ प्रस्तुत किया गया है। उसमें नंदों की क्षत्रिजात कुल का बताया गया है और चंद्रगुप्त को एक अज्ञात कुल का नया राजा। इस माटक में कहीं-कहीं यह अस्पष्टि भी पाई जाती है कि उसमें चंद्रगुप्त को मंडवर्ष की संतान कहा गया है। बौद्ध और चीन परम्पराओं का इस विषय पर मतीय है कि चंद्रगुप्त का जन्म कुंडीन बंस में हुआ था।

यह बात उल्लेखनीय है कि निबंदरहाण धारत के आक्रमण के यूनानी वृत्तांतों में मोरिएहस नामक एक भारतीय जाति का उल्लेख मिलता है जो मोरिय का यूनानी पर्याय है।

प्रारंभिक जीवन चंद्रगुप्त की उत्पत्ति तथा उसके प्रारंभिक जीवन के बारे में इतनी कम जानकारी प्राप्त है कि इन विषयों पर अनेक कथाएँ प्रचलित हैं। अंधकार के बारे में ज्ञान प्रकार की कथाएँ प्रचलित हो ही जाती हैं। जो भी व्यक्ति सामारण कुल में जन्म लेने के बाद महानता का पद प्राप्त कर लेता है उस इन कथाओं में असाधारण गुणों से सम्पन्न व्यक्ति के पद पर बिठा दिया जाता है। चंद्रगुप्त के प्रारंभिक जीवन के बारे में जानकारी हमें बौद्ध कथाओं से प्राप्त होती है। इन कथाओं का स्रोत मुख्यतः दो रचनाओं में मिलता है, जिनका उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं (१) महावंस टीका, जिस अष्टाध्यायिकातिनी भी कहते हैं (जिसकी रचना लगभग १०वीं सताब्दी ईसवी के मध्य में हुई थी) और (२) महाबोधिवंस जिसके रचयिता अस्पष्ट हैं (लगभग १०वीं सताब्दी ईसवी के उत्तरार्ध में)। इन दोनों ही ग्रंथों का आधार, सीहस्रच्छकका तथा उत्तरबिहारच्छकका नामक प्राचीन ग्रंथ हैं। सीहस्रच्छकका के बारे में कहा जाता है कि उसकी रचना वेर महिन्ध (बोधक का पुत्र) तथा उनके साथ मगध से आये हुए अन्य भिक्षुओं ने की थी जिन्हें संघ के प्रधान ने धर्म प्रचार के लिए भेजा था। बोधक ने धर्म-प्रचारकों के इस संघ में बोधिगुप्त तथा सुमित्र-वैद्य उपासकों की भी भेजा था जो धर्म-प्रचारक नहीं थे। बोधिगुप्त तथा सुमित्र जलोक की पहली पत्नी हैवी के माई थे। लका के राजा वैजानाप्रिय सिध्द ने उन दोनों को बोधि-गुप्त द्वारा लंका की विजय का निरूपण मिलाने के लिए मुख्य स्थलों के रूप में

(संक्रामक-महामेलेक) नियुक्त किया। ऐसा प्रतीत होता है कि उनकी रचना को जब कहीं उपलब्ध नहीं है, अधिक रूप से उत्तरबिहारदृष्टकषा में सम्मिलित कर ली गई थी। इस रचना में मौर्य इतिहास के बारे में कुछ ऐसी बातों का विवरण मिलता है जो सीहृच्छकषा में नहीं है। इन बातों का स्रोत कर्माचिन्मय के उपरोक्त इतिहासकारों की रचना में रहा होगा और उन्हें मठनेब रखने वाले तथा स्मृति-विरोधी उत्तरबिहारवासियों यथवा पम्पदक्षिणों की रचना में शामिल कर लिया गया होगा (वी सी० डी० चटर्जी द्वारा प्रदान की गई जानकारी के आधार पर)।

इन बातों के अनुसार अश्वगुप्त का जन्म मोरिय नामक क्षत्रिय जाति में हुआ था जिसका शाखा के साथ सम्बन्ध था। अपनी जन्मभूमि छोड़कर पत्नी जाने वाली मोरिय जाति का मुलिया अश्वगुप्त का पिता था। कुर्माचिन्मय यह भी माना पर एक क्षत्रिय में मारा गया और उसका परिवार बनाम रह गया। उसकी बचपन विधवा अपने माइयो के साथ मामर पुष्पपुर (= कुम्भपुर = पाटलिपुत्र) नामक नगर में पहुँची जहाँ उसने अश्वगुप्त को जन्म दिया। सुरक्षा के विचार से इस जनाप शासक को उसके माइयो ने एक गोछात्रा में छोड़ दिया जहाँ एक पड़रिण ने अपने पुत्र की तरह उसका आसन-पारण किया और जब वह बड़ा हुआ तो उसे एक पिकारी के हाथ बेच दिया जिसने उस नाम-मैस चरान के काम पर काम दिया। कहा जाता है कि इस मापारण श्रामीन शासक अश्वगुप्त ने रामकीरम् नामक एक खेल का आविष्कार करके जन्मजात नेता होने का परिचय दिया। इस खेल में वह राजा बनता था और अपने सामियों को अपना अनुचर बनाता था। वह राजसभा भी जुटाता था जिसमें बैठकर वह न्याय करता था। पाँच के बच्चों की ऐसी ही एक राजसभा में आणक्य ने पक्षी बार अश्वगुप्त का देना था। आणक्य ने अपनी दिव्यशक्ति से कुछ इस श्रामीन जनाप शासक में राजत्व की प्रतिभा तथा चिह्न देखे और वही पर १०० कार्यापन देकर उसे उसके पालक-पिता से खरीद लिया। उस समय अश्वगुप्त आठ या नौ वर्ष का शासक रहा होगा। आणक्य जिस तससिका नामक नगर का निवासी (तससिका-नगर-वासी) बताया गया है, शासक की लेकर अपने नगर लौटा और ७ या ८ वर्ष तक उस प्रत्यात विद्यापीठ में उसे शिक्षा दिलाई, जहाँ आसक-कषाओं के अनुसार, उस समय की समस्त 'विद्यार्थी तथा कक्षाएँ' शिक्षायी जाती थीं। जहाँ आणक्य ने उसे अत्राविधिक विषयों और व्यावहारिक तथा प्राविधिक कक्षाओं की भी सर्वाधीन शिक्षा दिलाई (अश्वगुप्ताभावकषा जगद्विस्तित्यकषा)।

तससिका में विद्योपार्जन आसक-कषाओं से होने लगा चलता है कि उस समय के राजा अपने राजकमारों का विद्योपार्जन के लिए तससिका भेजा करते

वे वही 'विद्य-विद्यमान' अध्यापक थे। इन कथाओं में हम पढ़ते हैं "सारे भारत से शत्रियों तथा दानवों के पुत्र इन अध्यापकों से विभिन्न कलाएँ सीखने आते थे।" तत्कालीन प्राथमिक शिक्षा का ही नहीं बल्कि उच्च शिक्षा का केंद्र था। इस बात का उल्लेख मिलता है कि वही बालकों का १६ वर्ष की अवस्था में वर्षात् 'द्वितीयावस्था में प्रवेश करने पर' भरती किया जाता था। इसमें बड़ी अवस्था के छात्र अपना गृहस्थ लोग भी यहाँ शिक्षा प्राप्त करते थे। वे अपने रहने वाले का प्रबंध स्वयं करते थे। इस तत्कालीन क एक एने अध्यापक का भी उल्लेख मिलता है जिसकी पाठशाला में कबल राजकुमार ही पढ़ते थे "उस समय भारत में इन राजकुमारों की संख्या १०१ थी।" वही तिन विषयों की शिक्षा दी जाती थी उनमें तीन वेदा तथा १८ मिला अर्थात् विद्या का उल्लेख मिलता है जिनमें अनुविद्या (इस्तेख-तिय) आलट तथा हावियों से सम्बन्धित ज्ञान (हस्तिमुत्त) का उल्लेख किया गया है जिन्हें राजकुमारों के लिए उपयुक्त समझा जाता था। विद्वान्त तथा व्यपहार दोनों ही की शिक्षा दी जाती थी। तत्कालीन अपनी विधि-शास्त्र विधि-विज्ञान तथा सैन्य विद्या की अलग-अलग पाठशालाओं के लिए प्रख्यात था। तत्कालीन की सैनिक अकादमी का भी उल्लेख मिलता है जिसमें १३ राजकुमार शिक्षा पाते थे। एक जगह यह विवरण मिलता है कि किस प्रकार एक विषय को सैन्य-विद्या की शिक्षा समाप्त कर देने के बाद उनके मुख में प्रमाणपत्र के रूप में स्वयं अपनी "तलवार, एक धनुष और बाण एक कवच तथा एक हीरा" दिया और उससे कहा कि वह उसके स्थान पर सैन्य-विद्या की शिक्षा प्राप्त करने वाले ५०० विषयों की पाठशाला के प्रधान का पद ग्रहण करे क्योंकि वह मुख हो गया था और अवकाश ग्रहण करना चाहता था। [विस्तृत विवरण के लिए प्रसिद्ध पुस्तक के लेखक की ऐन्थोनी इंडियन एन्ड्रुकेशन (मैकमिलन संस्करण) नामक रचना का १९वाँ अध्याय देखिए।]

इस प्रकार हम देखते हैं कि चाणक्य अपने अन्वयव्यक्त विषय की शिक्षा का इससे अच्छा कोई दूसरा प्रबंध नहीं कर सकता था कि उसे विद्योपार्जन के लिए तत्कालीन में भरती करा दे। इनके राजकुमारों के साथ रहकर बात वर्ष तक सैनिक पाठशाला में शिक्षा प्राप्त करने के बाद वह उस समय की समस्त सैन्य विद्याओं तथा कलाओं में निपुण हो गया होता। अंतर्गुप्त को उसका अभिभावक चाणक्य ने जो महान् कार्य सौंपा था उसे पूरा करने के लिए इससे अच्छी तैयारी तथा इससे अच्छा प्रशिक्षण कोई दूसरा नहीं हो सकता था।

प्रसंगिक यह भी कह दिया जाए कि तत्कालीन में अंतर्गुप्त के प्रारंभिक जीवन तथा विद्योपार्जन से प्लूटार्क के इस उल्लेखनीय कथन की भी एक टाट से पुष्टि हो जाती है कि वह अपनी युवावस्था में सिक्ंदर से उस समय मिला

(संकाय-ग्रन्थालेखक) नियुक्त किया। ऐसा प्रतीत होता है कि उनकी रचना की श्रम कहीं उपलब्ध नहीं है। नासिक शप से उत्तरविहारदृक्कथा में धम्मिस्सि कर ली गई थी। इस रचना में मौर्य इतिहास के बारे में कुछ ऐसी बातों का विवरण मिलता है जो सीहब्बदृक्कथा में नहीं हैं। इन बातों का स्रोत कदाचित् मगध के उपरोक्त इतिहासकार की रचना में रहा होया और उन्हे मगधमेव रचने वाले तथा रुढ़ि-विरोधी उत्तरविहारवालों अथवा धम्मरक्षिका की रचना में शामिल कर लिया गया होया (श्री सी. डी. चटर्जी द्वारा प्रचार की गई जानकारी के आधार पर)।

इन बातों के अनुसार चन्द्रगुप्त का जन्म मौर्य नामक क्षत्रिय जाति में हुआ था जिसका शास्त्री के साथ सम्बन्ध था। अपनी जन्मभूमि छोड़कर अपनी माँ के साथ मौर्य जाति का मुखिया चन्द्रगुप्त का पिता था। दुर्धम्मवत्स बहु सीमांत पर एक छपड़ में मारा गया और उसका परिवार अनाथ रह गया। उसकी अवस्था बिचवा अपने माता के साथ भायऊर पुण्डुर ( = कृन्तुमपुर = पाटलिपुत्र ) नामक नगर में पहुँची जहाँ उसने चन्द्रगुप्त को जन्म दिया। मुरदा क बिचार से इस बलाप बालक को उसने मायाया ने एक सोपाना में छोड़ दिया। जहाँ एक गड़रिए ने अपने पुत्र की तरह उसका लाठन-यात्रा किया और जब वह बड़ा हुआ तो उसे एक पितारों के हाथ बेच दिया जिसने उसे गाय-बैस चरान के काम पर लगा दिया। कहा जाता है कि इस मायाया धार्मिक पाठक चन्द्रगुप्त ने रामकीर्तम् नामक एक ऐल का आविष्कार करके अत्यन्त मेठा हुँल का परिचय दिया। इस ऐल में वह राजा बनना था और अपने शायियों का अपना अनुचर बनाता था। यह राजमरा भी जुगला था जिसमें बैठकर वह स्वाध करता था। राज के बन्दी की गली ही एक राजमरा में जानकर ने पहली बार चन्द्रगुप्त को देगा था। जानकर ने अपनी दिव्यदृष्टि से पुरत इस धार्मिक बलाप बालक में राजा की प्रतिमा तथा चिह्न देने और वहीं पर १०० बापापण देकर उसे उसके पाठक-रिगा से छोटीर लिया। उस समय चन्द्रगुप्त आठ या नौ वर्ष का बालक रहा होता। जानकर जिने तत्पश्चात्ता नामक नगर का निवासी (तत्कालिन-नगर-राज्य) बनाया गया है, बालक को लेकर अपने नगर लौटा और ७ या ८ वर्ष तक उस प्रख्यात विद्यापीठ में उसे शिक्षा दिलाई, जहाँ पाठक-कथाओं के अनुसार, उस समय की समस्त विद्याएँ तथा कलाएँ निपटानी पाती थीं। बहुतों जानकर ने उसे व्यावहारिक तथा प्राविधिक कलाओं की भी सर्वोत्तम शिक्षा दिलाई (अनुशासनाभाषणम् धम्मवित्तित्तियम्)।

तत्पश्चात्ता में विद्योपासन : पाठक-कथाओं से हमें पता चलता है कि उस नगर के राजा अपने राजकुमारों को विद्योपासन के लिए तत्पश्चात्ता भेजा करते

वे यहाँ 'विराम-विरामान' अध्यापक थे। इन कथाओं में हम पढ़ते हैं "सारे भारत से शत्रियाँ तथा ब्राह्मणों के पुत्र इन अध्यापकों से विभिन्न कथाएँ सीखने आते थे।" तत्कालीन प्राथमिक शिक्षा का ही नहीं बल्कि उच्च शिक्षा का कदम था। इस बात का उल्लेख मिलता है कि यहाँ ब्राह्मणों का १६ वर्ष की अवस्था में यर्वात् 'द्वितीयवर्ष' में प्रवेश करने पर' भरती किया जाता था। इससे बड़ी अवस्था के छात्र यद्यपि गृहस्थ लोग भी यहाँ शिक्षा प्राप्त करते थे। वे अपने रहने आदि का प्रबंध स्वयं करते थे। हम तत्कालीन के एक ऐसे अध्यापक का भी उल्लेख मिलता है जिसको पाठशाला में केवल राजकुमार ही पढ़ते थे "उक्त समय भारत में इन राजकुमारों की संख्या १ १ थी।" यहाँ जिन विषयों की शिक्षा दी जाती थी उनमें तीन बराबरा १८ गिण्टा यर्वात् शिक्षा का उल्लेख मिलता है जिनमें धनुर्विद्या (इस्त्रा-विद्या) आण्ट तथा हाथियों से सम्बन्धित ज्ञान (हस्तिभुत) का उल्लेख किया गया है जिन्हें राजकुमारों के लिए उपयुक्त समझा जाता था। विद्वान्त तथा व्यपहार दोनों ही की शिक्षा दी जाती थी। तत्कालीन अगनी विमि-सास्त्र विद्विद्या-विज्ञान तथा सैन्य विद्या की अलग-अलग पाठशालाओं के लिए प्रस्ताव था। तत्कालीन सैनिक अधिकारी का भी उल्लेख मिलता है जिसमें १०१ राजकुमार शिक्षा पाते थे। एक जगह यह विवरण मिलता है कि किस प्रकार एक धिप्य को सैन्य विद्या की शिक्षा समाप्त कर देने के बाद उसके गुरु ने प्रमाणपत्र के रूप में स्वयं अपनी 'सन्मार्ग' एक सगुन और बाण एक कबज तथा एक हीरा' दिया और उससे कहा कि वह उसके स्थान पर सैन्य विद्या की शिक्षा प्राप्त करने वाले ५ ० धिप्यों की पाठशाला के प्रधान का पद ग्रहण करे क्योंकि वह बुद्ध हो गया था और अवकाश ग्रहण करना चाहता था। [निम्न विवरण के लिए प्रस्तुत पुस्तक के लेखक की ऐंग्रेज इंडियन एजुकेशन (मैकमिलनस बंदन) नामक रचना का १२वाँ अध्याय देखिए।]

इस प्रकार हम देखते हैं कि बालक अपने अल्पवयस्क धिप्य की शिक्षा का इससे अच्छा कोई दूसरा प्रबंध नहीं कर सकता था कि उसे विद्योपार्जन के लिए तत्कालीन में गयी करता है। इतने राजकुमारों के साथ रहकर आठ वर्ष तक सैनिक पाठशाला में शिक्षा प्राप्त करने के बाद वह उस समय की समस्त सैन्य विद्या तथा कलाओं में निपुण हो गया होता। अत्रिपुत्र को उसके अभिभावक बालक ने भी महान् कार्य सीखा था उसे पूरा करने के लिए इससे अच्छी तैयारी तथा इससे अच्छा प्रशिक्षण कोई दूसरा नहीं हो सकता था।

प्रसंगिक यह भी कह दिया जाए कि तत्कालीन में अत्रिपुत्र के प्रारंभिक जीवन तथा विद्योपार्जन से प्लूटार्क के इस संस्मरणीय कथन की भी एक छाप के पुष्टि हो जाती है कि वह अपनी युवावस्था में विद्वान्त से उस समय शिक्षा



या जबकि वह अपने विजय-अभियान के दौरान में पंजाब पहुँचा था। उस समय रहने वाले एक युवक के लिए यह बात सर्वथा संभव थी जिसने सैन्य-विद्या का एक विद्यार्थी होने के नाते स्वयं अपने हाथ में बूढ़ि करने के लिए उस समय के सबसे बड़े सैनिक नेता से भेंट की होगी।

पाणिनीयों से प्राप्त अश्वगुप्त के प्रारंभिक जीवन के इस विवरण से अस्तित्व के इस कथन की भी पुष्टि होती है कि उसका 'जन्म एक मामूली घराने में' हुआ था।

## अध्याय २

### विजय-अभियान तथा कालक्रम

बागवत तथा चंद्रगुप्त की पहली भेंट : हम पिछले अध्याय में इस बात का उल्लेख कर आए हैं कि बागवत तथा चंद्रगुप्त एक-दूसरे से किन परिस्थितियों में पहली बार मिले। यह भेंट एक मुगलरकारी भेंट थी और इसके उत्सवरूप बागवत अछतर न केवल उनके वैयक्तिक जीवन में बल्कि देश के इतिहास में भी बहुत बड़े-बड़े परिवर्तन होने वाले थे। बागवत से उसकी इस मुलाकात ने चंद्रगुप्त के जीवन की घाट को एक नयी दिशा में मोड़ दिया। अब उस एक नागध्व व्यक्ति की भाँति निर्जन स्थानों में पिछारी का संकटमय जीवन व्यतीत नहीं करना था। अब उसे एक सुमस्तुत नागरिक का जीवन व्यतीत करना था उसे सुदूर उत्तराखण्ड में भारत की सबसे बड़ी बिद्यापीठ में उस समय की उच्चतम शिक्षा मिलन वाली थी और उसे इतिहास के एक सबसे बड़े प्रयास के लिए तैयारी करनी थी। परन्तु चंद्रगुप्त के राजनीतिक जीवन पर विस्तारपूर्वक विचार करने से पहले उन परिस्थितियों को समझना आवश्यक है जिनमें ब्रह्मचर्य धर्मधर्म्युप नगर के निकट बागवत तथा चंद्रगुप्त की यह मुलाकातारी भेंट हुई थी।

विद्या का सेंट पार्थसमुद्र जैसा कि महावंस डीका में बताया गया है बागवत ने उत्तराखण्ड से पाटलिपुत्र तक की लम्बी यात्रा ज्ञान की खोज में तथा साम्राज्य की राजधानी के शासकों में भाग लेने के उद्देश्य से की थी (बागवत परिवर्तनों के पुष्कुर गीता)।

भारत की बीहड़िक राजधानी के रूप में पार्थिवपुर के लिए यह एक असाधारण मोरच को बल दी है चाणक्य त्रैमा निष्पात् विज्ञान, वा तत्संशिक्षा-वैसी महानगम विद्यापाठ में शिक्षा प्राप्त कर चुका था पूर्वी भारत के इस सुदूर नगर में अपने ज्ञान का धीर वीरवान्वित कर्म की लोच में आये।

विद्या के क्षेत्र के रूप में पार्थिवपुर की रथाति मुर्षा तक बनी रही उसके राजन्यायिक वैभव का जन हो जाने के बाद भी। इसके सगमय हजार वर्ष बाद की कवि राजाखर की काव्यमीमांसा नामक अमर रचना में उसका उल्लेख मिलता है। उसमें राजाखर ने लिखा है 'वहा जाया है (भूपते) कि पार्थिवपुर समस्त शास्त्रकारों विविध ह्योन-प्रतिपत्ति क संस्थापका तथा प्रवर्तकों की पराज्ञा (सास्त्रकार-परीक्षा) का केंद्र था। यहाँ पर वर्ष तथा उपवर्ष पाणिनि तथा पिपल और व्याधि-वैसी सुविज्ञान नृवनात्मक प्रतिमाओं तथा लेखकों की परीक्षा की गई। बाद में अलङ्कार विद्या के इस नगर में परीक्षा में उत्तीर्ण हान के बाद ही बरहचि तथा पठम्बलि न विज्ञानों के रूप में रथाति प्राप्त की।

यह बात स्पष्ट है कि 'वर्ष एक अवसत प्राचीन लेखक न' क्योंकि वह स्वयं पाणिनि (लगभग ५ ई० पू. या उससे भी पहले) के मुह से। उनके माई 'उत्तरवर्ष' ने वीमांसा सूत्र तथा वेदांत सूत्र की टीकाएँ लिखी थीं जिनके माध्यमों के उत्तरवर्ष स्वयं अमरपुरक शास्त्राचार्य ने दिये हैं। 'वहा जाया है कि छंद-शास्त्र के रचयिता पिपल पाणिनि के छोटे माई न। व्याकरण-आचार्य व्याधि पाणिनि के बाद हुए और उन्होंने उनकी व्याकरण-प्रतिपत्ति के बारे में बहुत कुछ लिखा। बरहचि तथा पठम्बलि तो बहुत बाद में हुए। अतएव एसा प्रतीयत हुआ है कि राजाखर ने वर्ष से लेकर बरहचि तक और पिपल न लेकर पठम्बलि तक इन समस्त विज्ञानों का उल्लेख उनके जीवनकाल के क्रमानुसार किया है। वेद के विविध भागों से सम्बन्ध रखने वाले इन सभी विज्ञानों ने पार्थिवपुर की परीक्षाओं में उत्तीर्ण होकर ही रथाति प्राप्त की।

उपदेव-मंद पार्थिव-युगी में समय के सरासरी नामक का नाम जिसका उल्लेख संस्कृत ग्रंथों में केवल मंद के नाम से किया गया है जन-मंद बताया गया है। इसके अतिरिक्त पार्थिव-युगी में ही मन्धों के नाम तथा उनके जीवन से सम्बन्धित कुछ बातें भी बतायी गई हैं। इन बातों से हमें एसा लगता है कि पर-वंश के ही राजा जो सब माई से बारी-बारी से अपनी बापु के रूप में (बुद्धिपति पालिका) परी पर बैठे। जन-मंद उनमें सबसे छोटा था। सरस बने माई का नाम उदेव-मंद बताया गया है वही मंद-वंश का संस्थापक था। अष्टगुप्त की तरह ही उनका प्रारम्भिक जीवन भी अत्यंत रामाङ्गुल था। वह मूलतः रीमांत प्रदेश का निवासी था (पश्चिम-आदि) एक बार शास्त्रार्थ में उन पर-मं लिया



भारत की बौद्धिक राजधानी के रूप में पाटलिपुत्र के लिए यह एक असाधारण योग्यता की बात थी कि चाणक्य ने मा निष्ठाया विज्ञान ओ लघुशिक्षा-वैद्यी महात्मन विद्यापट्ट म जिला प्राप्त कर चुका था पूर्वी भारत के इस सुदूर नगर में अत्यन्त ज्ञान का और योगदानित करने की गति में आया ।

विद्या के क्षेत्र के रूप में पाटलिपुत्र की गति युगा तक बनी रही उसके राजन्यायिक समय का जन हो ज्ञान के बाद भी । हमारे समकालीन हजार वर्ष बाद का उच्च राजन्याय का कार्यक्षेत्रों का नामक समय के बाद में उसका अन्त्य मिलता है । उसमें राजन्याय में निष्ठा है कहा जाता है (युद्ध) कि पाटलिपुत्र समस्त साम्राज्य के विभिन्न समय-व्यवस्था के संस्थापक तथा प्रवर्धकों की परीक्षा (प्राक्-कार-वरीता) का क्षेत्र था । यहाँ पर वर्ष तथा उपवर्ष पालिनी तथा पिता और व्याधि वैसे बुद्धिमान बुद्धिमानक प्रतिपाद्य तथा व्यवस्था की परीक्षा की गई । बाद में चक्रवर्ति विद्या के इस समय में परीक्षा में उनीच होने के बाद ही चक्रवर्ति तथा पञ्चमूर्ति न विद्या के रूप में गति प्राप्त की ।

यह बात स्पष्ट है कि वर्ष एक अत्यन्त प्राचीन समय से क्योंकि वह स्वयं पालिनी (समय ५ ई. पू. या उसमें भी पहले) के युद्ध में । उनका भाई 'उत्तर' में भीमोत्तम युद्ध तथा वेदों युद्ध की टीकाएँ लिखी थी शिकार प्रायों के उत्तरक स्वयं अज्ञानपूर्ण शकटाचार्य न विवेक है । कहा जाता है कि यह-राज्य के रक्षितों पिता पालिनी के छोटे भाई थे । व्याकरण-प्रायः व्याधि पालिनी के बाद हुए और उन्होंने उनकी व्याकरण-व्यवस्था के बारे में बहुत कुछ किया । वह चक्रवर्ति तथा पञ्चमूर्ति तो बहुत बाद में हुए । अतएव ऐसा प्रतीत होता है कि राजन्याय में वर्ष से लेकर चक्रवर्ति तक और पिता से लेकर पञ्चमूर्ति तक इन समस्त विद्वानों का अन्त्य उनका जीवनकाल के सम्मानित किया है । यह के विभिन्न भागी से सम्मानित करने वाले इन सभी विद्वानों न पाटलिपुत्र की परीक्षाओं में शामिल होने ही गति प्राप्त की ।

उपरोक्त-वर्ष पालि-वर्षा में समय के सम्मानित नामक वा नाम जिसका अन्त्य नरेश्वर वर्षों से वेदों नरेश्वर का नाम से किया गया है, जन-नर बताया गया है । इनके अतिरिक्त पालि-वर्षा में भी नरेश्वर का नाम तथा उनके जीवन से सम्मानित कुछ बात भी बतायी गयी है । इन वर्षों में उन्हें पता चलता है कि नर-वर्ष के भी राजा को यह भाई ने भाई-भाई से जल्दी आयु के रूप से (बुद्धि-व्यक्ति-व्यक्ति) परी पर है । जन-नर उनमें सबसे छोटा था । समय के भाई का नाम उद्योग-नर बताया गया है । यही नर-वर्ष का सम्मानित था । चन्द्रमुक्त की शक्ति ही उनका अतिरिक्त जीवन भी सम्मानित रोमाञ्चपूर्ण था । वह मुद्रा भीमोत्तम प्रदेश का निवासी था (चक्रवर्ति-व्यक्ति) यह बार बार शक्यों ने उन पर किया

बादल ने राधा को गिरा दिया उसके बग का निर्गुण कर हन की घनता ही और एक गज दासबिक मारु के भर में उसके बगुन में बप निरुमा । बून-  
कितन मवादका उसकी नेर बाकक बगमन म हूँ जिसका बनन पहुँच ही बिना  
जा कहा है ।

यह बात जान बन गेल है कि बीड़-घरों की इस बहा की प्रतिध्वनि मुझ  
राजन नामक संग्रहित रचना में मिली है जिसमें कहा गया है कि राजा नर  
ने घर दरबार में जानक को उपर उभर मन्त्राणि पत्र पर से हटा दिया जो  
लेखदरबार में दिया गया था [अग्रामवर्गीयः पृष्ठ १५५ (I, २)], जिस पर जानक  
ने सील लगा कि वह उभर भारे परिवार तथा बग की निर्मूलक करक पत्र से बच  
गया ।

[illegible]

मिथ्या है उसके बारे में बयान करना कहा गया है कि वह पहले कूटपार का बीजम  
व्यतीत करता था जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है। अंत में उसने बमपूर्वक  
मकम पर साउन करम वाले राजमंड का तल्ला उलट दिया। बीड़ प्रथा तथा अन्य  
प्रथाओं में एक और उल्लंघनीय घटना यह है कि बीड़-प्रथा में भी मंडों का उल्लंघन  
तो किया गया है और उनमें से प्रथम का नाम भी बताया गया है पर उस  
सबका भाई बताया गया है। महाभारत में लिखा है "नव मंडा (नवभातरो भी)  
लतो जागु। बीड़-प्रथा में इन मंडवर्णियों के बिना जो सबसे बड़ी कलक की  
बात कही गई है वह यह कि धुक-धुक में ब झाडू बें। महाभारत में मंडवर्णी  
राजाओं की (कोरपुष्पा<sup>१</sup>) पहले के झाडू कहा गया है।

धन-मंड हाथ बाधक का व्यवधान कछ भी हो इतना निश्चित है कि जिस  
काम का नाम पान्तिपुत्र आया था उस समय धन-मंड वहाँ का राजा था। वह  
अपने बल के लोभ के लिए ब्रह्माय का वह ८० करोड़ (कोटि) की सम्पत्ति का  
नामिक था और लालो भाव भूमी तथा पत्थरों तक पर कर वसूल करता  
था। निम्नकार में उसका नाम धन-मंड रखा दिया गया था क्योंकि वह बल  
के द्वारा करने का आशी था (महाभारत जीका)। कर्मास्तित्वापर में वह  
की ९ करोड़ स्वर्ण-मुद्राओं का उल्लेख मिलता है। कहा जाता है कि  
उसने क्या नहीं की तभी में एक बड़ोस गुरुवाकर उसमें अपना साग लुनाता  
पात्र दिया था [महाभारत जीका]। उसकी बल-सम्पदा की क्वालि इतिव तल  
पुंजी। तमिल भाषा की एक कविता में उसकी सम्पदा का उल्लेख इस रूप  
में किया गया है कि वहन वह पाटकि में ललित हुई और फिर लंगा ली  
की बाड़ में लिय गई। [ऐम्बर हन-विनिमित्त और लाउम इतिव हिंदी  
पृष्ठ ८९]। वरुण बाधक ने उसे बिलकल ही बूनरे रूप में देना। अब वह धन  
बनारस के बसाय उसे धन-गुण में व्यय कर रहा था यह काम बाधकाल  
नामक एक तल्ला द्वारा लगीन किया जाता था जिसकी व्यवस्था का नवाचन  
एक 'धन' के हाथों में था जिसका अर्थवा कीं बाधक होता था। नियम यह  
था कि अम्पत्ता एक करोड़ मुद्राओं तक का बल से सजता था और लव का सबसे  
लौटा मरत्व एक लाख मुद्राओं तक का। बाधक की इस धन का अम्पत्ता भुना  
गया। परन्तु हाथी की बाध राजा की उसकी मुद्राता तथा उनका बृद्ध स्वभाव  
अच्छा में लता और उनमें उसे परभुन कर दिया। इस अपमान पर बड़ हाकर

१—बाल्मिकिण्ड मीतापरी ने इस तरह की 'कोरपुष्पा' (= ब झाडू) का  
उल्लेख है पर गी मी० जी० चर्यों के मुताबिक पर (११ दिनांक १०९९)  
उन्होंने इस तरह के उपर्युक्त का बाधक का लो लीकार कर लिया है।

जागृत ने राजा को धार दिया उसके बग को निमूक कर धन की धमकी दी और एक मन्त्र व्याघ्रविह मानु के भेद में उस पर अगुम स बच निकला । धूमने फिरते संजागृत उसकी भेंट ब्राह्मण अग्रगुप्त से हुई जिसने बर्नन पदमे ही दिया जा चुका है ।

यह बात ध्यान देने योग्य है कि बीड़-ग्रंथों की इन कथा की प्रतिष्ठा नि मुद्रा-रासल नामक संस्कृत रचना में मिलती है जिसमें कहा गया है कि राजा नंद ने भरे दरबार में जानक्य को उसका उम सम्मानित पर पर मे हटा दिया जो उमे दरबार में दिया गया था [अष्टासनागोबहृष्टनाम (I २)] जिस पर जानक्य ने सीमंभ की कि वह उसके सारे परिवार तथा बंग को निर्मूक करके नंद से बन्धा देया ।

अग्रगुप्त का पहला काम यूनानी शासन का उन्मूलन : अब हम फिर उस इतिहास पर जाते हैं जो जानक्य की भाग्यवश अग्रगुप्त के रूप में अपनी योजनाओं को पूरा करने का स्रावन भिन्न जाने के बाद चलिष्ठ हुआ । हम पहले देख चुके हैं कि जानक्य ने फिरने धैर्य के साथ बाठ बर्य तक अग्रगुप्त को यथामनब उन्मूलन दिया देने का सबन पहला काम पूरा दिया ताकि उसके सामने जो विरासत योजनाएँ थीं उन्हें पूरा करने के वह योग्य हो जाए । सबसे पहला काम तो उस विपदा से छुटकारा पाना था जो उसका दाग पर आ चुकी थी । अपनी बालों के मामले अपनी मानुभूमि पर बिस्ती आक्रमण पंजाब के छोटे-छोटे गजपरा के निवासियों द्वारा विभिन्न म्यानों में उन आक्रमण का विरोध करने के निष्फल प्रयत्नों और अंत में अपने देश पर बिस्ती यूनानी सामन की स्थापना को देखकर अग्रगुप्त के विचारों में एक कूटान-मा आ गया था । इस प्रकार उसके सामने सामाजिक काम अपने देश की इस बिस्ती पराधीनता से मुक्त करना था । इन काम में उसे अपने गुह कौटिल्य की गिस्ताओं से प्रेरणा मिली कौटिल्य ने बिस्ती सामन को एक अगोचर अभिधाप बहकर उसकी सम्पना की थी । कौटिल्य ने बिस्ती धासन (बैराग्य) को योग्य का निहृष्टतम रूप ठहराकर उसकी निहा की है जिसमें बिजता उस देश का भिजे वह बलपूर्वक अपने अधीन कर मना है, (परस्याकिब) कनी भी अपना प्रिय देश नहीं समझता (मैतन् मम इति मय्यमात्), उस पर दायबिक कर लगाता है तथा बल बगूल करता है (क्ययति) और उसकी सम्पना की निहाइ सेता है (अपवाह्यति) (८, २) । इस बिजय में पूरी जानकारी नहीं मिलती कि बिजय की बिजय के कारण और देशबागियों द्वारा उस आक्रमण का विरोध निष्फल हो जाने के बाद जो निरासा चारों ओर फैल गई थी उस बलाकन में इस विधा का पूरा करने के लिए उसने कौन से उपाय लिये गया जिस प्रकार उसने इसके लिए माधन जुटाए । उस उस



बिरोध के अक्षेपों का सहारा देता वना। उसने बिरोध की उन पुस्तों द्वारा जिस मारिया का छिद्र से ज्वाला क रूप में चढ़ाया और धैर्य की तथा मुद्र-सामग्री के रूप में देश के सैन्य-साधना का देश की स्वतंत्रता के लिए एक और राष्ट्रीय प्रयास करने के सहज्य से नये सिर से सगठित किया।

अश्वघुप्त को रोमा के जोर विक्रम से दबकर बने वाली पञ्चतंत्रिक आतिथी मद्रासक हीका से पता चलता है कि लक्ष्यिका में अश्वघुप्त की शिक्षा समाप्त हो जाने के बाद आनन्द तथा अश्वघुप्त दोनों विभिन्न स्वाम्य से (तत्ती तत्ती कल सभितारोन्ना) केना के लिए धैर्यिक दुर्गने (असं संनक्षित्वा) निकल पडे। इन प्रकार को गला तैयार हुई उसे आपस्य ने अश्वघुप्त के सेनापतिस्व से गग शिवा (महाबलकायं संग्रह्यता सं तत्त पटिपारति)। रोम ईदिवत् निबन्धे ई (बुद्धिस्त इदिया, पृष्ठ २१०) कि "जिस सना के बल पर अश्वघुप्त ने समनर का धारक उसे पगान किया था उसका मूल पत्राव से भरती बिसे था धैर्यिकों पर था। जम्बिन ने भी लिखा है (XV ६) कि अश्वघुप्त ने स्वामीय निवासिका का भ्रमणी करने एक सेना तैयार की। इन स्वामीय निवासिका को जस्टिन ने लगे कहा है। जैसा कि यैर्जॉर्जिए ने बताया है (इन्वेन्शन ऑफ इदिया बाई कलेक्सेडर, पृष्ठ ४०६) मुदरे' शब्द से अभिप्राय उन पञ्चतंत्रिक आतिथी से था जिसका पत्राव से उस समय में बालकाटा था इन्हें आरु अथवा अराष्ट्रक अर्थात् 'राजा-गृह' आतिथी कहा जाता था—रानी आतिथी को किंगी राष्ट्र अथवा राजपत्नी के समान नहीं रखी थी और उस समय राजपत्नी का प्रचलन रूप राजपुत्र था। बीषायन ने अपने पूर्वसूच में (कमनन ४०० ई० प०) पत्राव का आरु' का रूप बताया है (१, १ २, १३-१५)। महापाप्य ने आरु' का अर्थानर (८ ४४ २००) अर्थात् 'पौत्र नरिका वाले देश के निवासी' और बाहीक (VIII ६५ २११०) अर्थात् 'नरिका वाले देश के निवासी' कहा गया है, जिसमें प्रत्येक मत्र पतिार, अत्र वसति सिध् तथा तीवीर नामक आतिथी के लाल से।

यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि बीटियस ने रोमा के लिए मर्याद के शीत निम्नलिखित बनाए हैं—(१) 'भार' या 'प्रतिरोधक' को मुदरे और आरु' (२) 'भार-मय' मर्याद के लक्षित बल (३) परतबानी किराठ आदि दीनी स्पेण्ड' आतिथी (४) जनवासी 'आरु' और (५) परतबानीय कोविर्वा लड़ाकू गण-आतिथी। यह बात भी उल्लेखनीय है कि आपस्य ने इन मय आतिथी में से अपनी रियर धैर्यिकों का 'प्रवीर' बताया है (VII १० VIII १४)। उस समय पत्राव से मय प्रकारका महाक लिए उपयुक्त आतिथी को दाईं धैर्यिकों नहीं थी। स्वयं विद्वान का अपने नियम-अभिधान के दौरान

में इनमें से कई जातियाँ का सामना करना पड़ा था। जैसा कि आगे बतलाया जाता है इन आक्रमणों के प्राचीन वृत्तांत में इन जातियों के जो यूनानी नाम दिये गये हैं उनके भारतीय पर्यायवाची दायें दूँइ निम्नांकना संभव है।

महानगर में उल्लिखित यन्त्राधिक जातियाँ : महाभारत में इस प्रदेश की इन यन्त्राधिक जातियों का उल्लेख मिलता है—(१) यौषेय (II ५२ VII ९) (२) दुर्योधन (II ५१ VI ५७) (३) मातङ्ग (II ३२ II, ५२) (४) बसाति (II, ५२ V १०) (५) शिबि (II, ३२ II, ५२) (६) उदुम्बर (II ५२) (७) प्रस्थल (VIII ४४) (८) विष्मन् (II, ५२) (९) मूढ (II, ५२ VI, ६१) (१०) केकय (II, १२०) और (११) अश्वेय (III २५४)।

पाणिनि द्वारा उल्लिखित यन्त्राधिक जातियाँ पाणिनी ने यन्त्राधिक के लिए 'संभ' अथवा 'यण' (III ३ ८६) शब्द का प्रयोग किया है। इनमें से अविनाश यन्त्राधिक यन्त्राधिक कारण करने लगे और उन्हें 'मायुषवीनि-संभ' कहा जाने लगा। वे वाहीक देश के अर्थात् 'नदियों के देश' के निवासी थे जो पंचाब का ही दूसरा नाम था (V ३ ११४)। मायुषवीनियों के इन स्व-शासित संघों के उदाहरणों के रूप में पाणिनि ने इनका उल्लेख किया है—

(१) दुर्योधन (यूनानी आसवीरुकाई), (IV २, ४५)।

(२) मातङ्ग (यूनानी मन्तोइ) (उपरोक्त)।

(३) दूर जिन्हें बार्कण्य भी कहते थे (V ३ ११५) कदाचित् यह वही जाति थी जिसे हिरोलेनियस (शक) कहा जाता था जिन्हें द्वारा प्रथम के बेहिल्लुम के शिवालेख में बर्कान और क्रागमी के एक दूसरे प्राचीन शिवालेख में बर्कान कहा गया है।

(४) बामनि तथा अथ जातियाँ (इनकी पहचान नहीं हो पाई है) (V ३ ११६)।

(५) छ विष्मन् का संभ—ये त्रिगर्त थे (क) कौषोपरण (ख) बाधकि (ग) कौष्ठकि (घ) बालमालि (ङ) बह्मयुक्त और (च) बानकि।

(६) पर्व, जिसका सम्बन्ध असुर तथा राक्षस जातियों से था। कदाचित् ये उस देश के निवासी थे जिन्हें द्वारा प्रथम के बेहिल्लुम शिवालेख में पार्श्व कहा गया है जो अकनरी जाति के कर्णों का निवासस्थान था और इसी से उस देश का नाम पारस अर्थात् पश्चिम पड़ा।

(७) यौषेय।

(८) ताम्र (अथवा तथा उसके आस-पास का इलाका) यह एक बहुत बड़ा राज्यमय था जिसमें ये जातियाँ सम्मिलित थीं—(क) उदुम्बर, (ग)

तिलकत (ग) मरकार (ब) मुगंघर, (ब) भूतिग (छ) धरदण्ड (ब) बुध (ग) पञ्चकंड और (ट) अजमीड़ (IV १ १७३) ।

(९) जिनका उल्लेख गण-पाठ में इन जातियों के साथ किया गया है—(क) ककर (ख) केकय (ग) कान्मीर, (ब) सास्व (ब) सुस्वत (छ) उररा (हवाय जिमे के) बार (ब) कीरय्य (IV १ १७८) ।

(१०) अम्बळ (यूनानी अक्स्टानोई) जिनका उल्लेख महाभारत में (II ५२ १४ १५) त्रिपि अत्रक सास्व और उन्नर-वर्धिम की अथ जातियों के साथ किया गया है ।

(११) हास्तिनायन (VI, ४ १७४) (यूनानी अक्स्टानोई) ।

(१२) प्रकष्य (VI १ १५३) जो आश्वक करवाता है जहाँ के निवासियों को परिकानिओई कहा गया है जो प्रकष्यायन का ही पर्याय है (स्टेन कोना परोप्यी इंसुक्रिप्टोन पृष्ठ ΔV III) ।

(१३) मर (IV २ १३१) ।

(१४) मधुमंत (IV २ १३३ महाभारत भीष्म पर्व ९, ५३) इन्हीं को आज मोहमद कहते हैं ।

(१५) माजोल (IV २, ५३) (यूनानी अपर्पताई जिन्हें आज अठरीवी कहते हैं) ।

(१६) असाति (IV २ ५३) (यूनानी अक्स्टानोई) ।

(१७) प्रिभि (IV ३ ११८) (यूनानी प्रिभिओई) ।

(१८) आश्वायन (IV १ ११०) तथा आश्वकष्यन (IV १ ९९), जिन्हें यूनानी में कमज अस्पताई तथा अक्स्टानोई कहा गया है जिनका गढ़ मस्सव (मस्सकवती) में था ।

यह बात ध्यान देने योग्य है कि जिस नगर की यूनानियों ने आश्वानोंस कहा है, वह वही है जिस पाणिनि ने बरषा कहा है (IV ९, ८२) ।

उत्सुवत्त सूची में उन गणवर्धन जातियों को छाड़ दिया गया है जो पंजाब और पञ्जाब के बाय-बाय के बाहर थे ।

उत्सुवत्त सूची से पता चलता है कि पाणिनि के काक में अलग-अलग पद्यों में भी थे जो रत्नक कय ग अपना साधन चलाते थे और इस प्रकार के चमत्कारों के राज-संग भी थे जैसे निगड पट्ट, या सास्व (बी एच० अश्वनास-इन पाणिनिवालीन भारत) ।

जैसा कि अश्विन ग हम पता चलता है (IV २१) उस समय पंजाब का बहुत बड़ा नाम दन गराज भारतीय जातियों ने कच्छ में था जिन्हें कटिपत न (IV ४) गुरार जातियों बनाया है जो अपना रत्न बहाकर सिक्कर

का मुद्राबन्धन करने का गत्यर थी। मिर्ज़र म आ राज्य अपने पुगने मनु पारम (पीरक) को बापस लीग दिया था उसमें पन्हु ल्गउभा की मुमि धामिग थी "जिनके अधिकार में ५००० बायी बड़े घहर और अर्धरय छटे पाँच म (पुटार्क साहस ४०)।

वे मिर्ज़र के विरुद्ध होने लगे, उनसे सैनिक साधन सिवहर के आग्रह में पंजाब की इन स्वयंज जातिया की रण-दायता तथा बीरता को प्रकट कर दिया युद्धक चंद्रवृष्ट ने इन बातों का अवरय रखा होगा। सिवहर के आग्रहनों के विरुद्ध उनक प्रतिपाद की बहानी सिवहर की विजया की कहानी से कम प्रेरणादायी नहीं है। भारत के विभिन्न स्थानों म सिवहर का जो विराग किया गया उसका मूल्यांकन स्वयं यूनानियों द्वारा उल्लिखित उद्धा तथा अक्रिर्ग के आधार पर किया जा सकता है।

सिवहर का सबसे पहले एट गन राज्य के प्रधान क विराग का सामना करना पड़ा जिन यूनानी एम्पीज कहत है जिनका नाम ससूत में हस्तिन है वह उस जाति का प्रधान था जिनका आर्याय नाम हास्तिनायन था (पानिनि VI, ४ (१५))। यूनानी में इनके लिए अन्टाकनाई या अस्तानेनोई उद्धा का प्रयोग किया गया है और उसकी राजधानी प्युकेलाभाटिस अर्थात् पुष्कलावती लिखी गई है। इन बीर सरदार ने अपने मगरकोट पर यूनानियों की घेरेबंदी का पूरा लाभ दिन तक मुद्राबन्धन किया और मन में रखा हुआ मार गवा।

इसी प्रकार आ-बायन तथा आरबकायन भी आगिनी दम तक छोड़े बीसा हि इन बात म पता चलता है कि उनके कम-से कम ४०००० सैनिक बंदी बना लिये गए। उनकी आर्थिक समृद्धि का भी अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि इन लड़ाई में २५ • बीस मिर्ज़र के हाथ लय।

आरबकायनों म ३ • पुद्गुचार, ३८ • वीरक और ३० हाथियों की सेना लेकर जिनको सहायता क लिए यैदानों के रणने वाले ७ • बेउन भोमी सिपाही और वे मिर्ज़र से मोर्चा लिया यह पूरी सेना आरबकायनों की क्रिनेबंद राजधानी मस्तम में [मस्तूत मयक जो मयकावती नामक नदी के तट पर स्थित था जिसका उल्लेख पानिनि के वास्तिक भाष्य में मिलता है (IV २, ८५ VI ३ (११०))] अपनी बीरंगना गनी विक्रयाक्षित (संस्तुत हुआ ?) के नेतृत्व में आरबकायना ने "अंत तक अपने देश की रक्षा करने का दृढ़ संकल्प किया।" रात्री क माय ही वहाँ की स्त्रियों ने भी प्रतिरक्षा में भाग लिया। बेतनमीवी सैनिक शुक में बड़े मिससाह हाँकर लड़े परन्तु बाद में उन्हें भी पीछा का गया और उन्होंने "मयमाय के जीवन की अपेक्षा गौरव के साथ मर जाना" ही बेहतर समझा [(मैकडॉनल्ल-कृत इन्वेज्शन, पृष्ठ १९४)

(कटिपथ) २० (द्विमोक्षोरस) ]। उनकी इस उत्साह को देखकर अभिषार नामक निकटवर्ती पर्वतीय प्रदेश में भी उत्साह आपृत हुआ और वहाँ के लोग भी प्रतिष्ठा के लिए बट गए ।

उस प्रदेय के स्वतंत्र नगरों ने भी जैसे दामोदरोंस बहोग ओछ मन्वा हायटों मारि ने प्रतिष्ठोष का यही मार्ग अपनाया और उनमें प्रत्येक ने घटून लम्बी बेरेबरी के साथ ही हुनियार डाल ।

भारतीय सैन्यशास्त्र अपने अन्त में म राजा योग्स (वीर्य) की सेना में लिखाई दिया जो सिकंदर का सबसे प्रतिष्ठापी अनु बा । उनमें अग्निम व धनमान के अनुसार १ वैदल सिपाहिया ॥ पुष्पकारा १ रपा और २ हाथिया की सेना लेकर भिन्न-व का मुकायमा किया । उसकी पराजय के बाद भी सिकंदर को उसकी तरफ मैथी का हाथ बढाना पया ।

अगाहास्मोई जाति के लोगों ने ४ वैदल सिपाहियों और १ पुष्पकारा की सेना लेकर सिकंदर का टनकर की । वहाँ जाता है कि उनके एक नगर के २ निवासियों ने अपने आपको बर्षिया के रूप में अनुबा के हाथों में समर्पित करने के बजाय बाल-यन्त्रों सहित साथ में दूर-दूर प्राण दे देना ही उचित समझा ।

इसके बाद सिकंदर का कई स्वायत्त जानिया के लक्ष के मयटि विराय का सामना करना पड़ा जिनमें मासक तथा लुइक मारि जानिया की जिनकी गरबा मेता में ९ वैदल सिपाही १ पुष्पकारा और ९ ए अधिक रप थे । उनका बाह्यणी ने भी पहले-सिक्क का काम छोड कर लक्षवार सैमाकी और रणलक्ष में लूट हुन मारे गए, बहुत ही कम लोग बची बचाए जा सके ।

फट एक और और जाति की जो अपने लीय के लिए दूर-दूर तक प्रसारा की (अग्निम V २२, २) । वहाँ जाता है कि रणलक्ष में उनका १० लक्ष मारे गए थे और ७ बंदी बना लिये गए थे ।

मामकी ने अन्त में भी ५०० गैजिका की सेना लेकर एक नदी की घाटी की रक्षा की ।

अग्निम की सेना में ६० वैदल १ पुष्पकारा और ५० रप थे ।

अन्त में गिनु घाटी के निचले भाग में होने वाला युद्ध में ८०० गिपाही मारे गए । इस युद्ध के बाद में अग्निम व अनुभा की और प्रतिष्ठा की याचना तथा युद्ध के प्रति लीला में अग्निम उत्साह पैदा किया और धन की रक्षा करत हुए देगा-देगा । अपने प्राणों की जादुति है की । (पुटार् वाग्ध ५, कर्मिज सिद्धि I पुट १७८) ।

उनकी पराजय के कारण यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि इन सभी काबो बड़ी-बड़ी मनाओं के लिए सैनिक छोटे-छोटे गणतान्त्रिक राज्यों से नगरी क्रिये गए थे। हर राज्य की जनसंख्या का संकेत हुए सत्ता में सैनिकों की संख्या का अनुपात बहुत अधिक था। य गणतान्त्रिक जातियों आधुनिक समय तक लड़ी होंगी और देशभक्ति की भावना के बल उन्होंने अपनी स्वतंत्रता का रक्षा हेतु अपने पूरे मानव-बल को रण के लिए समर्पित किया हुआ। पुराना के साथ उनकी स्थितियाँ भी लड़ी थी। यदि सिकंदर-जैसे श्रेष्ठ सनानायक के सिक्का अपनी स्वतंत्रता की रक्षा के लिए उनकी वीरतानुर्ध्व लड़ाई उस समय असफल रही तो इसका कारण केवल यह था कि उनमें नेतृत्व संगठन कर्म की एकता और समस्त राज्यों को एक जगह केन्द्रित करने की क्षमता का अभाव था। धनु का मुहावला बहुत से अलग-अलग बिकरे हुए बन्दों में बहुत ही संकुचित स्वामीय सीमाओं के भीतर रखकर किया गया। उस राष्ट्रभ्यापी प्रतिरक्षा के क्रम में लड़ी संयोजित किया गया। इस प्रकार सिकंदर को अलग-अलग टुकड़ों में इस प्रतिरक्षा से निबटने का मौका मिला गया और उसने बड़ी आसानी से उन्हें दबा लिया। अनेक राज्य होने के कारण एक ही धनु के बिछड़ काई संयुक्त मोर्चा न बन सका और अलग-अलग बिकरे हुए केन्द्रों में विरोधी शक्तियाँ बाहु की भीत की तरह बह गईं। यह विभाजन प्रतिरक्षा के लिए घातक सिद्ध हुआ। एक बार तो धुइक तथा मालव जातियों के सब राज्य ने एक प्रकार से राष्ट्रीय विरोध संगठित किया। उन्होंने अपने सैन्य शायकों की एक में मिलाकर एक शक्ति-धामी संयुक्त सेना बनाई। पाणिनि के समय में भी इस प्रकार की एक संघीय सेना थी जिसे पाणिनि ने 'धुइक-मालवी-सेना' कहा है। परन्तु अश्वगुप्त-जैसे महान् नेता ने जिसमें संगठन की श्रेष्ठतर क्षमता थी बीच ही भारतीय सैनिक परिस्थिति के इन दोषों तथा कमजोरियों को दूर कर दिया।

पंजाब की समस्त गणतान्त्रिक जातियों तथा राज्या और वहाँ के साधारण निवासियों में जो बहुमुख्य सैनिक सामग्री तथा साधन जो निहित क्षमताएँ तथा सम्भावनाएँ प्रचुर मात्रा में उपलब्ध थी उनका काम उठाते तथा एक बार फिर उनका उपयोग करने का ध्येय आगम्य तथा अश्वगुप्त की मध्यायी प्रतिभा को मिला। इस आचारमूर्त सामग्री से जनता में प्रतिरोध की अवश्य भावना से स्वतंत्रता का सपना लड़ने और उसमें विजय प्राप्त करने के लिए एक सुसंगठित सेना तैयार करने में उनको कोई कठिनाई नहीं हुई।

अश्वगुप्त की सेना के अन्य सैनिक : यदि हम अश्वगुप्त की सेना के बारे में प्रचलित परम्परागत कथाओं पर विचार करें तो हम देखेंगे कि उसने अपनी सेना को स्वामीय निवासियों के बीच से भरती किये गए सैनिकों तक ही सीमित

महो गया। उदाहरण के लिए, मुद्राराक्षस में हम बात का उल्लेख मिलता है कि चाणक्य ने हिमालय पर्वत प्रदेस के एक राज्य के पर्वतक या पर्वतेश नामक प्रधान से मैत्री-संधि की थी। परिशिष्टपर्वत नामक क्षेत्र-प्रदेस में भी इस मैत्री संधि का उल्लेख मिलता है। उसमें कहा गया है कि "चाणक्य हिमवत्कूट गया और उस प्रदेश के राजा पर्वतक के साथ उसने मैत्री की संधि की।" बीज बुधायो में भी चाणक्य के पर्वत नामक एक वनिष्ठ मित्र का उल्लेख मिलता है। इस प्रकार तीन प्रचलित पाषाणों में इस मैत्री का उल्लेख मिलता है। एक हर्ष-टामस ने इससे भी जाने जाकर यह सुझाव रखा है (बैम्बिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया, खंड १ पृष्ठ ४७१) कि यह पर्वतक क्याचित् बहो व्यक्ति का जिसे बुधायो ने राजा वारस कहा है। इस बात की बेवकूफ़ी हुए कि अपने समय में अपने देश को राजमार्ग में पारस का जितना महत्वपूर्ण स्थान था, वह मगध बिम्बक तकमयन प्रवीण होता है। पारस का उस समय इतना महत्व था कि उनकी सहायता प्राप्त किये बिना उस प्रदेश में किसी भी युद्ध का बीड़ा नहीं उठाया जा सकता था।

मुद्राराक्षस ने ही हमें यह भी पता चलता है कि इस पर्वत-प्रदेस के राजा के साथ मैत्री हो जाने के फलस्वरूप अश्वपुत्र की सेवा जिसमें विभिन्न जातियों ने नैतिक शक्तों किये गए थे अत्यन्त सुगठित हो गई। इनमें निम्नलिखित जातियों के नाम मिलाये गए हैं एक वचन (कदाचित् मूलानी) किराण काम्बोज पारसीक बह्लीक (II. १२)। पाँच राजाओं ने मिलकर अश्वपुत्र का विरोध किया—जन्म का राजा बिम्बवर्मा मल्ल का राजा मिहनाह काश्मीर का राजा पुष्कराज और सेवधराज सिन्धुपत्र और पारसीकों का राजा मेघाम्ब जो बहुत बड़ी बुद्धिमान सेना (पुत्रपुरमन्त्रः) लेकर उनमें आ मिला था (I. २०)। मल्लकेतु की सेना में निम्नलिखित जातियों में से भरली किये गए सैनिक थे जन्म मामय पामार, वचन एक बेहि तथा हूम (I. ११)। इस समय अश्वपुत्र और मगध ने उसके शत्रुओं के बीच या भीषण युद्ध हुआ उसमें इन विभिन्न जातियों के लोगों ने भाग लिया। परन्तु दुर्भाग्य की बात यह है कि इन सूची के कारण इतिहास के एक स्रोत के रूप में मुद्राराक्षस का महत्व घट जाता है। इनमें कुछ ऐसी जातियों के नाम हैं जैसे एक या हूण जिन्होंने भारतीय इतिहास के समयों पर अश्वपुत्र के साथ से बहुत बार में प्रयोग किया।

मूलानी शासन की होवाडोल स्थिति : अपने ध्येय को पूरा करने के लिए, अश्वपुत्र ने जो नैय-मल्लि पुटार्ई उसके अतिरिक्त भी उस देश की सामरिक स्थिति तथा अन्य ऐसे कारणा से बहुत सहायता मिली जो भारत में मूलानी

शासन के निमित्त के लिए बहुत धुमसूजन नहीं थी। आरंभ से ही सिकंदर का आक्रमण बहुत निर्विघ्न रूप से आगे नहीं बढ़ा। वह केवल ऊपर से दखने में ही निर्विघ्न प्रतीत होता था। उसकी बठिनाइयाँ अधिक गहराई में छिपी हुई थीं। सिकंदर जिस हमले को पीछे कर अपन पीछे छोड़ आया था उस पर उसको पुरा भरोसा नहीं था। यूनानियों तथा भारतवासियों दोनों ही के बीच बिरोह उठ लड़े होने के कारण उसके विजय-अभिषाग के लिए सतरा उत्पन्न हो गया था। सिकंदर ने जिस काम का बीड़ा उठाया था उसकी सफलता के प्रति उसके अनुयायियों के हृदय में स्वयं उसके बीसा उत्साह नहीं था। सिकंदर की नीति यह थी कि वह उचित क्षेत्रों में भये पूर्वी नगरों में अपने विजय-अभिषाग की प्रगति की सूचित करने के लिए और उस विजय के फलों की रक्षा करने के लिए भेजे हुए यूनानी सैनिकों की बस्तियाँ बना देता था (बगियान V २७५)। इस प्रकार की बस्तियाँ सबसे पहले बैक्ट्रिया तथा साय्दियाना में स्थापित की गईं पर ये बस्तियाँ उनमें बसाये गए भाग की इच्छा के विरुद्ध स्थापित की गई थी जो निर्वासन का यह बीजम व्यतीत करने को तैयार नहीं थे। वे हमेशा इन बातों में रहते थे कि कब मौका मिले और वे भाग निकलें। जिस समय सिकंदर बहुत दूर मासगों से लड़ रहा था और उसके एक बाध लगा गया तो तुरन्त-तुरन्त उसकी मृत्यु की खबर फैल गई और वे यूनानी प्रवासी जिनकी संख्या ३० थी अपने देश के लिए चल पड़े (डिओडोरस XVII ९९)। सिकंदर स्वयं भी इन उपनिषदों को बंध देन की बस्तियाँ समझता था जहाँ उनके प्रति बकायागी न रखने के कारण बहिष्कृत यूनानी भेजे जाते थे (बस्टिन XII ५८१२)।

यूनानी क्षत्रपियों जिस भारतवासियों को उसने अपने अधीन कर लिया था उनका दख भी कुछ अधिक अनुकूल नहीं था। उनमें बिरोह की भावना विकसित होती नहीं थी। अपनी विजय का सुरक्षित करने के लिए सिकंदर ने जो प्रशासनात्मक व्यवस्था की उससे ही पता चलता है कि उसे स्वयं इन क्षत्रपियों के सुरक्षित न होने का चिन्ता कम था। उसने यूनानी भारत को छ क्षत्रपियों में विभाजित किया—तीन सिन्धु नदी के पश्चिम में और तीन सिन्धु नदी के पूर्व में। पश्चिम वाले तीनों क्षत्रप यूनानी थे पर पूर्व वाले तीनों क्षत्रप भारतीय थे। तीन पश्चिमी क्षत्रपों में पेडशन का सिंध का शासक नियुक्त किया गया। निकामोर के सुपूर्द सिन्धु नदी के पश्चिम का भारत नामक प्रांत दिया गया। उसमें काबुल की बाग्री का निजबा भाग और हिंदुकुश तक के पर्वत-प्रदेश शामिल थे। उसकी राजधानी पुष्ककावती (चारसदा) में थी। इस क्षत्र के अधीन अकनुनिवाई सैनिकों की एक दुर्रससक संघा थी जिसका सेनानायक क्रिडिप था।



और ऊपर चलकर आदिशैलीय को परोपानिसरे (काबुल घाटी) प्रान्त का सामक नियुक्त किया गया। इसकी राजधानी 'काबेगम की लकड़टी में मिस्त्रिया' नामक नये नगर में थी। पहले सिकन्दर ने वहाँ ईरानी शत्रु नियुक्त किये पर वे असफल रहे, जैसा कि हमें कटियस से पता चलता है (IX ८) "ईरानी शत्रु टाइरिस्मीय के खिलाफ परोपानिसरे के निवासियों ने अग्रपूरवक पैसा बनाने के लिए और बसाचार करने के अभियोग सिद्ध कर दिए थे। यह सम्भव ३०६ ई. पू. की बात है। सिकन्दर ने स्वयं अपने समस्त आदिशैलीय को जा एक ईरानी सामन्त या वहाँ का शत्रु नियुक्त करके परिस्थिति को सुधारने की चेष्टा की।

सिकन्दर सिन्धु नदी न पूर्व की ओर यूनानी शत्रु नियुक्त करने का साहस नहीं कर सकता था। वहाँ की तीन शत्रुपक्षा भारतीय राजाओं के अधीन रही गई। सिन्धु नदी और हाइड्रसीय के बीच के प्रदेश पर सतभिन्ना का राजा आग्नि शासन करता था हाइड्रसीय से लेकर हाइफेसित तक के इलाके पर पागस (पौरुष) का शासन था और अभिसार देश (काश्मीर) का राजा बाकी इलाके पर शासन करता था।

भारतीय अस्तमौल्य : शत्रु निकानोर की हत्या सिन्धु नदी न पश्चिम की ओर यूनानी शासकों की स्थिति बड़ी तेजी से कमजोर होती गई। सबसे पहले एक भारतीय सामक के मड़काने पर, जिस यूनानी लेवेमम ब्रह्मा डैमे-रैमम कहते थे कबाल ने बिरोह का झंडा उठाया। इसके बाद आर्यामना की धापी आई जिन्होंने निकानोर नामक यूनानी शत्रु को जो उन पर उबरपस्ती कर दिया गया था मील के बाद उतार दिया (अरियस V २ ७)। आर्य नायकों ने अपने यूनानी सामक का बीना कुमर कर दिया। वह मिथिकोटस ब्रह्मण घसिमुल्य नामक भारतीय देशवासी था जो यूनानी साम्राज्यवाद का भारतीय गुरु था। सिकन्दर ने अपनी सबसे पश्चिमी शत्रु न महायता भेजी और फिर सतभिन्ना से अभिषेक के मागतिर्य में और अधिक महायता भेजी।

नये सैनिकों तथा सेना के मनोबल में कमी यह सब पड़कर उन समय ही एही की अर्द्ध ३२६ ई. पू. में सिकन्दर देश के भीतर अपने विजय-अभियान में व्यस्त था। ईश-ईशे वह आगे बढ़ता जाता था उसे नये सैनिक मिलना कठिन होता या रहा था। बिनाब के तट पर पहुँचकर उसकी प्रगति बिलकुल रुक गई मुद्र ईशान में घसिमुल्य तिपाहियों के आगे ने ही परिस्थिति में कुछ सुधार हुआ। परन्तु वह व्यास नदी से आगे न बढ़ सका। इसका कारण यह था कि उनमें अनुदासियों की बहुत घसिमुल्य हो चुकी थी। उनके सैनिकों के प्रवृत्ता काश्मीर ने उसे परिस्थिति इस प्रकार स्पष्ट दर्शाई थी "इसकी पश्चिम

में से बेतालियाई सिपाहियों का आपने बचता से बग बापस भेज दिया क्योंकि आपने देखा कि अब व और अधिक कष्ट सहन करने की स्थिति में नहीं है।

बाकी यूनानियों में से कुछ को आपके बसाये हुए नये नगरों में बसा दिया गया है, जहाँ सब अपनी लुट्टी से नहीं रहते हैं। कुछ अभी तक इस धमसाध्य तथा कष्टमय अभियान में हमारे साथ हैं। उनमें से और मक़ूनिया की सना में से कुछ लोग रणक्षेत्र में मारे गए हैं। कुछ घायल हो गए हैं। कुछ एशिया के विभिन्न भागों में पीछे रह गए हैं। परन्तु अधिकांश राम से मर गए हैं। सैनिका की उस बहुत बड़ी संख्या में से जो युद्ध में हमारे साथ थी अब केवल थोड़े-से ही बचे हैं और इन थोड़े-से भागों में भी अब वह घाटीरिक बल नहीं रह गया है जो उनमें पहले था और उनका मनोबल तो और भी टूट चुका है। आप खुद देखें कि आप जब जहाँ व उस समय आपके साथ कितने यूनानी और मक़ूनियावासी व और अब कितने थोड़े रह गए हैं।”

सिकन्दर की योजना में अंतर्निहित दोष इन शब्दों से इस बात का पता चल जाता है कि सिकन्दर की महत्वाकांक्षी योजना के पूरा होने के रास्ते में क्या बुनियादी कठिनाई थी। एक ऐसे साम्राज्य का निर्माण करना असम्भव था जिसे रसद तथा युद्ध-सामग्री के उपलब्ध होने का आवश्यक न हो और जिसे स्वयं अपनी जगह का समर्थन प्राप्त न हो।

एक भारतीय अधि ने बड़ी चतुराई से सिकन्दर को इस परिस्थिति के बारे में भारतीय जनमत से अवगत करवाया। उसने एक सूची ताल जमीन पर फैला कर सिकन्दर से उस पर चलने को कहा। जब सिकन्दर एक काने पर पैर रखता था तो उसके हुंमर कान ऊपर उठ जाते थे। ताल को भूमि पर घटाट रखना कठिन था। इस प्रकार सिकन्दर की आँखों के सामने इस बात का एक स्पष्ट चित्र आ गया कि उसकी इस अनाली योजना का क्या अर्थ था “उसने अपने राज्य के केन्द्र” से बहुत दूर स्थित देशों में बसाए जानेवाले सैनिक अभियानों के अनिश्चित तथा अस्थिर परिणाम उसकी आँखों के सामने आ गए (मैक ग्रीकिल इनवेजन पृष्ठ ११५)। ऐसा कथना है कि वास्तविकता यह थी कि भारतवासियों ने सिकन्दर के आक्रमण को बहुत सह्य नहीं दिया। ऐसा ही हुआ जैसे सना बड़े छानहार डंग से देश के एक सिरे से दूसरे सिरे तक चलने गई। सुदूर देशों में अपनी विजय को सुदृढ़ बनाने के लिए संचार के ऐसे माधनों की आवश्यकता होती है जो विश्वस्त हों। अधि ने भारतीय प्रतिक्रिया की सच्ची अभिव्यक्ति की है—

“The East bowed low before the blast  
In patient, deep disdain,

She let the legions thunder past,  
And plunged in thought again "

—Math w Arnold

क्रिस्तिन की हत्या आईये जब हम देख कि यूनानी क्षत्रपिया का क्या हुआ ? भारतीय 'विश्वोहिमा' द्वारा अन्नग निकालार की हत्या के बाद सिकन्दर ने उसके स्थान पर सेनापति क्रिस्तिन को नियुक्त किया । क्रिस्तिन भारत में सबसे अनुभवी यूनानी प्रधानक था । सबसे पहले सिकन्दर ने दक्षिणायनी भारतीय राजा पोरस की पतिविविधियों पर नजर रखने के लिए सप्तद्विषा में उसे अपना दूत नियुक्त किया था । जब सिकन्दर हाइवेम्पीड (हेलम) की सज्ज मयै विजय-अविषाण पर आये वहा वो पीछे के पीछे हुए इसाके की रक्षा करने का काम उसने क्रिस्तिन को सौंपा । बाद में जब सिकन्दर न माकन तथा कुछ नामर स्वतन्त्र शासियों के राज्यों पर विजय प्राप्त कर ली—यह इसाका दक्षिण में विनाश तथा सिन्धु के संगम तक फैला हुआ था—तो उसने क्रिस्तिन का वहाँ का घासक नियुक्त किया । अब उसके सुपुर्ब यूनानी भारत का सबसे महत्त्वपूर्ण प्रान्त कर दिया गया था जोकि एक प्रकार से भारत का प्रवेशद्वार था । इसके बाद सीमा ही जब सिकन्दर हाइवेम्पीड नदी के रास्ते वापस लौट रहा था तो क्रिस्तिन अपनी मयी राजधानी छोड़कर उसे बिदा करन गया । परन्तु उसे क्या पता था कि उसके जीवन के दिन भी पूरे होने वाले थे ! वापस सीटते समय किसी न उसकी हत्या कर दी ।

यूनानी शासन के लिए एक बहुत आवश्यक अंगियन के मतानुसार (VL २७ २) क्रिस्तिन की हत्या का कारण यूनानियों तथा मक्युनिमावाला की पार करारक ईर्ष्या थी । परन्तु इनकी गम्भार घटना क पीछे और भी पहरे कारण थे बिदेगी शासन क प्रति जना म असन्तोष । क्रिस्तिन जैसे महत्त्वपूर्ण यूनानी पक्षाधिकारी की हत्या या यूनानी सामन का अल्पम साधार नर तथा प्रतिनिधि था मक्युन उस सामन पर एक बालक प्रहार था । यह भारत में यूनानी भाग्यवशा का एक आचार-व्यवहार था । उनकी हत्या ३२५ ई पू में लेते समय पर हुई थी जब सिकन्दर अभी इस स्थिति में था कि वह इसका बदला लेने क लिए भारत कोट मडे क्योंकि वह अभी बापेनिया तक भी नहीं पहुँचा था । पर वह ऐसा न कर सका । यह हत्या सिकन्दर की मला की एक चुनौती थी । परन्तु इस चुनौती का उत्तर देना उनकी शक्ति के बाहर था । सिकन्दर भारत में पीछे हट रहा था और उसके साथ ही यूनानी सामन भी पीछे हटता था । उनकी ममता म केवल यह उपाय आया कि वह अपने भारतीय दिन सप्तद्विषा क राजा की सहायता ले । उसने उस इन आचार के पक्ष में

कि वह इषा करके 'उम समय तक वे सिध जब तक कि कोई दूसरा धर्म न प्रेष लिया जाए' उम प्रेषण का सामन अपने हाथ में से जिस पर पश्य प्रिष्ठिय सामन करता था" (अरियन VI २७)। उमने कोई समय नहीं मना। अग्रे में सिकन्दर को इस काम के लिए अपने भारतीय मित्र पर ही मरसा करना पड़ा। इसका अर्थ यह था कि भारतीय राजा का अपनी मत्ता मित्र नही और सौमराज के पार काङ्गु को बाटी और हिन्दुकुष तक फैला कम में सहयता दी गई। जब भारत में पूरैमस नामक एक धर्म-नामो यूनान का एकमात्र दूत रह गया था जिसे भारतीय राजा के अपील पुच्छसावरी का दुर्गरसक सना का भार मीपा गया और साथ हा उने "इसर उधर बिकरी हुई यूनानी तथा मद्रुनिवाई मैतिक दुरुद्धिरी का सनापति" और उस प्रदेश में बसे हुए 'यूनानी जाति के विभिन्न प्रजातियों का सासक भी निवृत्त किया गया" (कैम्ब्रिज हिस्ट्री I, पृष्ठ ४२९)।

३२३ ई० पू० में सिकन्दर की मृत्यु के बाद यूनानी शासन का पर्वत : इन सब मुसीबतों के ऊपर सबसे बड़ी धुनीबत यह आई कि ३२३ ई० पू० में सुदूर बैबिलोन में स्वयं सिकन्दर की मृत्यु हुई। (और उसके कोई सन्तान भी न था) जिसके बाद उसने साम्राज्य में उबर-मुचक मच गई। साम्राज्य किम निम होने लगा। उसके सनापतियों ने फीरन एक समा की और साम्राज्य को अपने बीच बांट लेन का फैसला किया। ३२१ ई० पू० में बिपासडिसस में दुबारा साम्राज्य का बँटवारा हुआ जिसमें सिन्धु नदी के पूरब का भारत का कोई भाग साम्राज्य का अम नहीं माना गया। सिन्ध के यूनानी सासक पेइवन को वहाँ

१ भारतीय साहित्य में सिकन्दर नाम के कई रूप प्रारम्भ हो गए। अशोक के शिलालेखों में अतिकुम्बर (आहुवाकयकी अट्टन लेख सं० १३), और अलि-बदगुडक (कालसी पाठ) रूप मिलते हैं। मिलिन्द पञ्चु में अलेक्जंडरिया (सिकन्दरिया) को अलसम्ब कहा गया है। सिकन्दरालेखी ने संस्कृत साहित्य में एक स्वाम पर सिकन्दर महान् के अल्लेख का भी सम्बन्ध डूँडा है वह है बाण के हर्षचरित का अल्लेख कि 'अलस चंडकोश ने सारी पृथ्वी जीतकर भी 'स्वीराज्य' में प्रवेश नहीं किया। इस उद्धरण में सिकन्दर ही अभिप्रेत है। इसका पता इस बात से चलता है कि यूनानी परम्परा में इस बात की चर्चा है कि सिकन्दर ने एनेक्स के राज्य में कृपापूर्वक प्रवेश नहीं किया। (जेयोरियक सिकन्दरालेखी), पृ० ४१४ (पेज में)।

लेख के अनुसार सिकन्दर की भारत में इसी रूप में याद किया कि उसके नाम पर एक 'पान' को 'स्वर्द' कहा गया जिसका उपयोग कुछ बच्चों को डराने में होता था। (Birlin S. B 1180 पृ ९३)

त हुआ कि सिन्धु नदी तथा पारोपानितस के बीच का इलाका सुपुर्ब कर दिया गया। यूसुस युगान का एकमात्र बूत वा जो भारत में टिका हुआ वा परम्पु साम्राज्य में उसका कोई सरकारी पद नहीं वा इसलिए साम्राज्य के बंटवारे में उसकी गजता ही नहीं की गई। कदाचित् वह उन युगानी 'विदेशियों' का नेता बन बैठा जो सिन्धु तथा हाइड्रेसीड की भाषियों में बांकी रह गए थे पर वह भी पैदास सिनाहिमों बुझसवारों और १२ हाथियों की छोटी-सी सेना लेकर जो उसने एक भारतीय राजा (कदाचित् पोरस) का जो उसका विस्मस्त मित्र वा छत्रपूजक बन करके प्राप्त किया वे एट्रीओस के विरुद्ध अपने सरदार युमेनीड की सहायता करने के लिए ३१७ ई. पू० में भारत से चला गया। बेबास २ हेमस ऐनीमालस के हारवा मारा गया (डियोडोरस XIX ४४ १)। अश्वन मी जनता प्राप्त छोड़कर इस समझे में वा कुरा उसका भी नहीं बन्द हुआ। वह डेमिथियस के साथ लड़ता हुआ नाडा की लड़ाई में मारा गया (Ib ८५, २)। भारत में इन दोनों में से किसी का भी स्थान लेने के लिए कोई युगानी न मिला।

कालि का नेता अश्वपुष्ट युगानी भारत से अपने-अपने ही नहीं बसे गये। एक भाषि के कारण स्वतन्त्रता के उस युद्ध के कारण जिसकी ओपमा उस युद्ध के नेता के रूप में अश्वपुष्ट ने की थी उन्हीं भारत से हटने पर मजबूर होना पड़ा। युगानी अश्वन की हथ्याओं को केवल मयोग की बात वा छिन्पुन मटनाएँ न समझ सैना चाहिए। व युगानी राजन के खिलाफ आक्रमण की एक निश्चित योजना की प्राथमिक मटनाएँ थी। ३२५ ई० पू० से ३२३ ई० पू० तक जिसमें और उनके स्वामी की मृत्यु के बीच जो दो वर्ष का समय बीता उसमें भारत की स्वतन्त्रता की यात्राएँ बनाने वाले बहुत व्यस्त रहे। उस समय जो कुछ हा रहा वा समझना पना हमें अस्मि के मिथ्यालिनिष्ठ वर्णन से जो भारतीय इतिहास की इस युगान्तरकारी काल के प्रभाव का हमारे पास एकमात्र स्रोत है वह लगता है "सिकन्दर की मृत्यु के बाद भारत में माओ अपने गले से राघव का कूडा उतार फेंका और उसका व्यवहार की यात्रा शला। इन मुक्ति का अन्त्य सङ्कोकोट्ट वा। उनका जगमग नाशास्त्र कर्म में हुआ वा पर कछ ईसी प्रीलाहनों से उसी राजत्व वा पर प्राप्त करने की प्रेरणा मिली। हुआ वह कि उसकी मृत्यु पर सिकन्दर की (अकरबैजुस जिसके स्थान पर कुछ विद्वानों ने मैट्रुन अपर्जि नाम का प्रमाण दिया है) नाम आया और उसने उस मरवा शस्त्रों की मर्यादा की पर वह अपनी जान लपट बर्तों ने नाम मिरसा। जब वह अककण सेना में रहा वा उस समय एक बहुत बड़ा घर उनके पास आया और उसके शरीर में बहता हुआ पमाना चायन पीरे न उसे पगाया और चला गया। इस अनहोनी मटना से

पहले-पहले चन्द्रगुप्त के मन में राजत्व का सम्मान प्राप्त करने की आशा जागृत हुई और उसने अपने चारों ओर सुत्रों का एक विरोह जमा करके भारतवासियों का तत्कालीन (यूनानी) शासन का तत्ता उसने देने के लिए भड़काया। इसके कुछ समय पश्चात् जब वह सिकन्दर के सेनापतियों से लड़ने जा रहा था तो एक बिनासदाय जंगली हानी अपने धाय उसने सामन आकर पड़ा हो गया और तहमा पारुषु हाथी की तरह पीर स्वभाव का होकर उसने चन्द्रगुप्त का अपनी पीर पर बिठा लिया और युद्ध में उसका पक्ष प्रवर्धक बन गया और एक क्षेत्र में बहुत आगे-आगे रहा। इस प्रकार राजसिंहासन पर अधिकार करके सीडोकोटस ने भारत को अपने अधीन कर लिया। इसी समय सेल्यूकस अपनी आधी महानता की नींव डाल रहा था। यदि इसमें से सामन्तिक तत्त्वों को निवारित दिया जाए, तो यह उदरग इतिहास का एक महत्वपूर्ण अभिलेख है। इसमें निश्चित रूप से यह कहा गया है कि चन्द्रगुप्त इस भारतीय स्वतन्त्रता-संग्राम का नामक था। इससे चन्द्रगुप्त की योजना का भी पता चलता है। उसकी योजना यह थी कि वह सबसे पहले यूनानी भारत के बोटी के लोगों का वर्षानु प्राचीन समयों का जो सिकन्दर के सेनापति से सहाया करे। हम पहले ही देख चुके हैं कि वा सबसे महत्वपूर्ण व्यक्तियों निकानार तथा त्रिषिप की हत्या करवाकर इस योजना का किस प्रकार व्यवहार में पूरा किया गया। जब सिकन्दर जीवित था उस समय भी वह इस विरोह के खिलाफ कोई कारण करके उठाने में असमर्थ था और ३२१ ई. पू. में उसकी मृत्यु के बाद ही उसका साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया और उसके सेनापतियों ने आपस में साम्राज्य का बँटवारा करत समय भारत का हाथ नहीं लगाया। इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि सिकन्दर की मृत्यु बास्तव में भारत में यूनानी शासन की मृत्यु थी। हम पहले देख चुके हैं कि ३२१ ई. पू. में जब सिकन्दर के साम्राज्य का दुबारा बँटवारा हुआ तो उसमें यूनानियों ने भारत को स्वतन्त्रता को जिसे चन्द्रगुप्त ने लगभग ३२१ ई. पू. में और ३२१ ई. पू. से पहले ही हार हाथ में प्राप्त कर लिया था लगभग विजय स्वीकार कर लिया।

महाराष्ट्र की ध्यान में रखन योग्य है कि अस्तित्व में उपर्युक्त उदरग में यदि नैडम समय के स्थान पर असेक्सोडर राज्य को मान लिया जाए, तो यह परिस्थिति की सम्भावनाओं के सर्वथा अनुकूल होगा। भारतीय स्वतन्त्रता-आन्दोलन के नेता के उन्मुख अभिप्राय की सम्भावना का सिकन्दर पर अवश्य प्रभाव पड़ा होगा और उसके मन में आसका तथा चन्द्रगुप्त की भावना जागृत हुई होगी। यूनानी शासन के प्रति चन्द्रगुप्त की चतुता का जो राष्ट्रीय कारण था उसमें यह एक निजी कारण भी जुड़ गया।

मगध के विजय युद्ध : इस युद्ध की रणनीति से सम्बन्धित कथाएँ पंजाब का विदेशी शासन से मुक्त कराकर अपने जीवन के अन्त्य का महत्ता भाग प्राप्त कर मगध के बाद चन्द्रगुप्त ने इस सक्षम के दूसरे भाग की ओर ध्यान दिया अर्थात् वेग के हमारे भावों का उसका शासका मगध-वंश के राजाओं के अत्याचार से मुक्त कराने की ओर। कुर्माग्यवदा चन्द्रगुप्त द्वारा मगध विजय जैसी महत्त्वपूर्ण घटना के बारे में बहुत सामग्री नहीं मिलती। परन्तु इस बात का प्रमाण अवश्य मिलता है कि इस घटना से चारों ओर सनसनी फैल गई और समस्त जनता के बीच इस घटना के प्रति दिलचस्पी पैदा हुई। यह बात लोच-परम्परा तथा लोक-कथाओं का एक अंग बन गई। ऐसा प्रतीत होता है कि पंजाब में स्थानीय रूप से अपनी सेना के लिए ऊपर बताये गए हथियारों से सैनिक भरती करके आक्रमण तथा चन्द्रगुप्त ने सबसे पहले सीमान्त के क्षेत्रों पर आक्रमण किया (अन्तर्जनपद परित्तित्वा) और तार्क्षीय सेना प्राप्त करने की इच्छा से (रज्जम् इच्छन्तो) उनके गाँवों को लूटना आरम्भ किया (मामहाताविकम्भम्)। चन्द्रगुप्त सीमान्त से भारत के अन्तर्प्रदेश की ओर, मगध तथा पाटलिपुत्र की ओर बढ़ रहा था परन्तु पहले उसने रणनीति में गलतियों की। एक कहानी इस प्रकार प्रचलित है "इनमें से किसी गाँव में एक स्त्री ने (जिसके घर में चन्द्रगुप्त के एक गुलाम ने छर्रा जें रानी थी) रस्ती पकाकर अपने बच्चे को दी। बच्चे ने रोटी के किनारे छोड़कर केवल बीच का भाग खा लिया और किनारे फेंककर और रोटी माँगने लगा। इस पर वह स्त्री बोली 'यह मज्जा तो बिल्कुल वैसी ही बात कर रहा है जैसी चन्द्रगुप्त ने राज्य पर आक्रमण करने में की है। लड़का बोला 'क्यों माँ मैं क्या कर रहा हूँ और चन्द्रगुप्त ने क्या किया है?' वह बोला बोला 'बच्चे तुम्हें रस्ती का किनारा किनारा छोड़कर केवल बीच का भाग खा रहा है। उसी चन्द्रगुप्त ने राजा बनने की महत्वाकांक्षा में सीमान्त प्रदेशों में आक्रमण किए बिना और राज्यों में घुसने वाले नगरों पर अधिकार किए बिना वेग के अन्तर्जनपद पर आक्रमण कर दिया है और उनकी सेना को घेरकर नष्ट कर दिया गया है। वह उनकी मूर्खता थी" (महावंश टीका पृष्ठ १२३ पंक्ति १)। इसके बाद चन्द्रगुप्त ने दूसरी गड़बड़ करवाई। उसने सीमान्त प्रदेशों में अपना विजय-अभियान आरम्भ किया (परवर्तन्तो बह्ठाव) और राज्य में घुसने वाले जनक राष्ट्रीय तथा जनपदों पर विजय प्राप्त की। पर उनमें एक इन्हीं यह की कि अपनी विजयों का सुरक्षित करने के लिए उनमें पीछे जगती नगाएँ नहीं नियुक्त की। परिणाम यह हुआ कि जैन जैसे वह जाने बढ़ता गया जैसे-जैसे जैन जातिवादी को पराजित करते बढ़-बढ़ते छोड़ता गया वे स्वतन्त्रतापूर्वक आपन में मिल गइली थी और उनकी सेना को चारों ओर उसकी पंजाबियों की निपटण बना गइली थी। तब उठे नई रणनीति

मूसी। वह जैने-जैने इन राष्ट्रा तथा जनपदों पर विजय प्राप्त करता गया जैने वह वही अपनी मगधों भी नियन्त्रण करता गया (उपहिततया बलम् संविभाष) और फिर उमन अपनी विजयी गेता क साब मगध की भीमा म प्रवेश करके पाटलिपुत्र पर बरा डाला और घननश को मार डाला (परिशिष्ट १)।

परिशिष्टपर्वन नामक जैन-ग्रन्थ में भी रजनीति ने सम्बन्ध में एक ऐसी ही टीका मिलती है जिसमें कहा गया है 'जिस प्रकार कोई बच्चा बापी के किनारे के दौलत भाग से प्राप्त करने के बजाय कालक्रम से ही के परम भाग में उद्योगी बनकर अपनी उद्योगी बला करता है उसी प्रकार राजा की भी पराजय हुई क्योंकि उसने पशु के मुँह से खाने पर आक्रमण करने से पहले आस-पास के प्रदेश पर अपना अधिकार सुदृढ़ नहीं बनाया था। इस बात से उपदेश लेकर राजा हिमवतकट गया और वहाँ के राजा पर्यन्त से उससे मैत्री की सन्धि कर ली। फिर उन्होंने प्रान्तों को पराजित करके अपना विजय-अभियान आरम्भ किया' (VIII २९१-३ १)। इसी ग्रन्थ में आगे चलकर बताया गया है कि इस अभियान के आरम्भ में ही राजा तथा अश्वपुत्र की पराजय हुई क्योंकि वे एक नगर पर विजय प्राप्त करने में असफल रहे अन्त में राजा ने एक कूट-युक्ति से नगर के रक्षकों को बकमा लेकर, नगर पर विजय प्राप्त कर ली। इसके बाद उन्होंने मगध-राज्य (मगधदेशम्) का विजय कर दिया और पाटलिपुत्र पर बरा डालकर नन्द का हथियार डाल देने पर विजय कर दिया जिसने जन (जीव-कौश्या) सेना (बल) क्षमता (वीर्य) और शक्ति (विजय) में बहुत कमी हो गई थी (पूर्वोक्त, १ १ ११३)। परन्तु राजा नन्द को मारा नहीं गया और राजा ने उसे अपनी दो पत्नियों तथा एक पुत्री के साथ और एक रथ में जितना सामान आए, लेकर पाटलिपुत्र से बल जाने की अनुमति दे दी (पूर्वोक्त २०१ ३१७)।

परन्तु इन सब कहानियों से भारतीय इतिहास के इस युगों पुराने मूलभूत तथ्य पर प्रकाश पड़ता है कि भारत में जितने भी विजय-अभियान हुए हैं उनकी प्रगति सीमाश्रय प्रदेश से अन्तःप्रदेश की ओर उत्तर से दक्षिण की ओर, पर्वतीय प्रदेश से मैदानों की ओर रही है। केवल अंग्रेजों ने जिन्होंने मुख्यतः अपनी नौ-शक्ति का सहारा किया दूसरी दिशा अपनाई, समुद्र की तरफ से आये बढ़कर बंगाल की खाड़ी भाग की ओर।

नन्द की शक्ति : इन कहानियों से यह भी पता चलता है कि कदाचित् नन्द के साम्राज्य पर विजय इतनी आसानी से प्राप्त नहीं हुई। कई प्रयत्नों के बाद ही उसे परास्त करने में सफलता प्राप्त हो सकी। इसका कारण यह था कि उस साम्राज्य के पास विपुल शक्ति तथा सामन्य थे। कटियस का अनुमान है कि उसकी सेना में ८, ० चौक सिपाही २० ०० बुद्धवार, २ बार मोड़ों



बाले रण और ३ •• हानी थे । इसके अतिरिक्त साम्राज्य का विस्तार भी बहुत अधिक था । बहुपंचायतक पेंसा हुआ था । कहा जाता है कि जब क्षिप्रक ने पारस इरानीय पर आक्रमण किया जिसका राज्य चिनाम तथा रावी के बीच में था वी उसने भागकर अपने पड़ोसी राजा नन्द के राज्य में शरण ली थी (मैक किन्डल इन्वेन्शन, पृष्ठ २७३) । हम पहले देख चुके हैं कि राजा नन्द किस प्रकार विभिन्न राज्यों पर विजय प्राप्त करके अनेक राज्यों का सार्वभौम शासक (एकराट्) बन गया था और उसने इन राज्यों पर अपना एकलेश्वर शासन स्थापित कर लिया था । वे राज्य ऐरावत, पाषाण काशी हूहय अरमक कर मैथिल दूरसेन तथा भीतिहोव नामक जातियों के थे । जैसा कि पुराणों से पता चलता है इन समस्त क्षत्रिय राजवंशों को 'निर्मुक्त कर दिया गया ।' बुनानी उससे पमारिखई तथा प्रासाई नामक जातियों के लोगों के धामक के रूप में अर्थात् यगा की बाटी में रहने वाली और प्राण्य अर्थात् 'पूरव की रहने वाली' उन जातियों के शासक के रूप में परिचित थे जो 'मध्यसेन' से पूरव की ओर रहती थी जैसे पंचाल, दूरसेन कोसल आदि । कर्त्तन पर विजय प्राप्त करके जिसका उत्तरेन सारवभ के हाथीमुष्का धिलामेन में मिलता है राजा नन्द ने अपना राज्य दक्षिण में फैला लिया । उस धिलामेन में एक प्राचीन नहर के प्रसंग में 'मेर राज' के नाम का उल्लेख किया गया है और उनके विषय में यह भी कहा गया है कि वह अपनी विजय के प्रतीक-चिह्नों के रूप में प्रथम त्रिशूल की मूर्ति (अथवा पक्ष चिह्न) और राज-परिवार का लज्जाना अपन साथ प्रथम ल गया था । मैसूर के कुछ चिलामेनो में इस बात का भी उल्लेख मिलता है कि नन्द का शासन मैसूर के उत्तर में कच्छल प्राप्त तक फैला था (राज्य मैसूर एंड कर्ण काज इन्सक्रिप्शन्स पृष्ठ ३) । परन्तु वे चिलामेन बहुत बाद (बारहवीं सताब्दी) के हैं और इन्होंने अब तक इन बातों का पहले का कोई प्रमाण न मिले तक कुछ इन्हें विश्वस्त प्रमाण नहीं माना जा सकता । हम यह भी देर चुके हैं कि किस प्रकार वह जलता पर अमल्य कर लगाकर अपना धन-संग्रहण का साधन बन बैठा था और यह सारी धन-जम्मा उसने जमीन के नीचे भण्डारों में भर रक्की थी ।

उसकी असाहसिकता : इस प्रकार राजा नन्द बाढ़ी शक्ति तथा धन संग्रहण का स्वामी था बन बैठा पर जनता उसे चाहती न थी । जैसा कि पहले बता चुके हैं स्वयं चन्द्रगुप्त ने निकम्बर को पाकर यह सूचना दी थी कि "उसकी प्रजा उससे बुरा करती है" और निकम्बर ने पारस (पौरस) तथा फलाम (ननसा) नामक भारतीय राजाओं से पुछकर इन सूचनाओं पुष्टि भी करवा ली थी । अपने अत्याचारपूर्ण शासन और जनता पर अमल्य करों के बोझ के अतिरिक्त अपने पूर्वज के मूल पात्र के कारण भी वह लोकप्रिय नहीं लगता था । इन प्रकार उसकी सत्ता

पीरे-बीरे लीज होती हुई परगमन की जिगा में जा रही थी। उसे जलपा के समर्थन का विस्तृत आचार प्राप्त न था। इस प्रकार मन्त्र के विच्छेद लक्ष्य में चरगुप्त को सैनिक तत्वों की अपेक्षा इस नैतिक तत्व से बड़ी अधिक महत्ता मिली।

युद्ध में नर-संहार : चरगुप्त तथा मन्त्र ने बीच-बीच में लड़ाई हुई उसका विवरण नहीं मिलता। परिशिष्टपर्यन्त नामक तीन खंडों के एक खंड में (VIII २०-५६) कहा गया है कि 'मन्त्र के शासन को समूल भट्ट करने के लिए समीन के नीचे छिपाकर रने मय घन-कोरों की सहायता से आगवध ने चरगुप्त की सभा के लिए सैनिक भरती किए। "कुछ लोगों ने यह मत भी व्यक्त किया है कि कदाचित् नर के विच्छेद अपनी लड़ाई में उसने मुनाली बेसनमोरी सैनिका को भी इस्तेमाल किया होगा। (कैम्ब्रिज हिस्ट्री, I पृष्ठ ६५)। लोगों के बीच भीषण रक्त पतनपूर्व युद्ध हुआ इसका संकेत तो मिनिस्वरन्तु (सैकेंड बुरस जॉन्स दि ईस्व XXVI पृष्ठ १५७) में भी एच बयह कुछ अतिरंजना के साथ निकला है जिसमें कहा गया है कि इस युद्ध में "छो कोटि सैनिक १०००० हाथी एवं काल पाड़े तथा ५०००० चारबी" मारे गए थे और उसी में बताया गया है कि महामान्त्र नंद की सेना का समापन था। हम इस बात का उत्प्रेक्ष्य पढ़ने ही कर चुके हैं कि मुहाराजस में इस बटना का वर्णन किस रूप में किया गया है जिसका आरम्भ में ही आगवध यह बोलना करता है कि उसने भी नरों की तो हत्या कर दी है और वह नंदवंश के बने हुए एकमात्र प्रतिनिधि बूढ़े मर्बासिंह को भी पीठा नहीं छोड़ेंगा जो अपनी राजधानी कम्युमपुर की बेरोबंदी को छुड़ाने में कर सका और आनंद बंजर में घराने के रहा है। यद्यपि वह बूढ़ा संन्यासी का जीवन व्यतीत करता था पर आगवध की आज्ञा पर वहाँ उसकी हत्या करवा दी गई, क्योंकि आगवध ने नंद-वंश की अंतिम शाखा को भी भट्ट कर देने की सीमा से रकी थी।

३०४ ई० पू० में साम्प्रकस की वराजय ; ईरान तक राज्य का विस्तार : चरगुप्त ने केवल इतना ही नहीं किया कि नंदवंशी राजा को मगध की गद्दी से हटाकर उसकी जगह बैठ गया। वह औरत ही एक ऐसे साम्राज्य का सार्वभौम शासक बन बैठा जो नंद के साम्राज्य से बहुत बड़ा था क्योंकि उसमें सिंधु मरी तक पंचनग देश भी शामिल था। बाद में उसने जो विजयें प्राप्त की उनके फलस्वरूप यह राज्य और भी बढ़ गया। चरगुप्त के इसके बाद के जीवन का पता हमें 'प्लूटार्क' के निम्नलिखित वक्तव्य से ज्ञात सकता है (काइज़र अध्याय ४२) "इसके कुछ ही समय बाद एंथोकोटस ने जो उसी समय राजसिंहासन पर बैठा था साम्प्रकस को ५०० हाथी भेंट किए और १००००० की मेला केन्द्र सारे

बाले रत्न और ३०० हाथी थे। इसके अतिरिक्त साम्राज्य का विस्तार भी बहुत अधिक था। बहुपत्नीय तक फैला हुआ था। कहा जाता है कि जब सिकंदर ने गण्ड द्वीप पर आक्रमण किया जिसका राज्य बिनास तथा रावी के बीच में था वही उसने भागकर अपने पड़ोसी राजा नन्द के राज्य में सरण की थी (मैक लिडिस इनवेन्शन, पृष्ठ २७३)। हम पहले देख चुके हैं कि राजा नन्द किस प्रकार विभिन्न राज्यों पर विजय प्राप्त करके अनेक राज्यों का सार्वभौम शासक (एकराट्ट) बन गया था और उसने इन राज्यों पर अपना एकच्छत्र शासन स्थापित कर लिया था। ये राज्य ऐकाक्य, पाषाण काशी ईहव अस्मक कृष मैत्रिष्ठ गुरमेन तथा भीतिहोन नामक जातियों के थे। जैसा कि पुरानों से पता चलता है इन समस्त खनिज राजवंशों को "निर्मूलक कर दिया गया।" यूनानी चरित ग्यारिबेई तथा प्रासाई नामक जातियों के लोगों के शासक के रूप में अर्बास् गंगा की बाटी में रहने वाली और प्राच्य अर्बास् 'पूरब की रहने वाली' उन जातियों के शासक के रूप में परिचित थे जो 'मध्यदेश' से पूरब की ओर रहती थी जैसा पंचाल गुरमेन कोसल आदि। कश्मिर पर विजय प्राप्त करके जिसका अलेक्स एंडरेस के हाबीयुम्का भिलाल्म में मिलता है, राजा नन्द ने अपना राज्य इक्षिप्त में फैला लिया। उक्त विभाजन में एक प्राचीन गहन के प्रसंग में 'नंद राज' के नाम का उल्लेख किया गया है और उसके विषय में यह भी कहा गया है कि वह अपनी विजय के प्रतीक-चिह्नों के रूप में प्रथम दिन की मूर्ति (अथवा पद चिह्न) और राज-परिवार का सज्जाना अपन साथ मगध ले गया था। मैसूर के कुछ विद्वानों में इस बात का भी उल्लेख मिलता है कि नन्द का शासन मैसूर के उत्तर में कन्नड प्रांत तक फैला था (राइट मैसूर एंड कर्ण कांम इंट्रिक्वैट' पृष्ठ ३)। परन्तु ये विद्वान्त बहुत बाद (बारहवीं शताब्दी) के हैं और इंगलिष जब तक इन बात का पहले का कोई प्रमाण न मिले तब तक इन्हें बिस्वस्त प्रमाण नहीं माना जा सकता। हम यह भी देख चुके हैं कि किस प्रकार वह जनता पर अमह्य कर लगाकर अपार वन-संपत्ति का मालिक बन बैठा था और वह घायी वन-सम्पदा अपने जमीन के नीचे अक्षरी में भर रही थी।

उत्तरी अतोक्षप्रियता : इस प्रकार राजा नन्द बाजी मक्ति तथा वन सम्पदा का स्वामी हो बन बैठा पर जनता उस चाहती न थी। रीखा कि पहले बता चुके हैं स्वयं अन्नपुत्र ने निकम्बर का जाकर यह सूचना दी थी कि "उसकी प्रजा उससे बुरा करती है" और निकम्बर ने पौरत (पीरत) तथा पनेकाम (बगला) नामक भारतीय राजाओं से पूछकर इन सूचना की पुष्टि भी करवा ली थी। अपने अत्याचारपूर्ण सामन और जनता पर अमह्य करों के बोझ के अतिरिक्त अपने पूर्वज के मूल पाप के कारण भी वह कोशप्रिय नहीं बनता था। इन प्रकार उसकी सत्ता

पीरे-पीरे क्षीण होनी हुई परामर्श की दिशा में जा रही थी। उसे जलना के समर्थन का विप्लव आचार प्राप्त न था। इस प्रकार मन्द के विप्लव मन्द में चरमपुत्र का सैनिक तत्त्वों की अपेक्षा इस नीतिवत् तत्त्व से बड़ी अभिर मशायता मिली।

पुत्र में मन्द-बहार : चरमपुत्र तत्त्वामन्द के बीच जो लड़ाई हुई उसका विवरण नहीं मिलता। पश्चिमिष्टपन्न नामक जैन ग्रंथ के एक छंद में (VIII ५ ५६) कहा गया है कि 'मन्द के शासन की समूल नष्ट करने के लिए उर्वीन के बीच छिपाकर रखे गए मन-ढोली की सहायता से चाणक्य ने चरमपुत्र की सेना के लिए सैनिक भर्तों किए। 'कुछ भाषों में यह मत भी व्यक्त किया है कि चरमपुत्र मन्द के विप्लव अपनी लड़ाई में अपने मूलनी सेतनभाषी सैनिकों को भी हस्तगत किया जाता।' (संक्षिप्त हिस्ट्री, I पृष्ठ ८३५)। हाथों के बीच भीयम रक्त-पातपूर्ण युद्ध हुआ इसका संकेत तो निम्नलिखित है (संक्षेप कृष्ण श्लोक दि ईस्ट XXVI पृष्ठ १४७) में भी एक जगह कुछ अतिरिक्त बातें पायी गयी हैं। त्रिममें कहा गया है कि इस युद्ध में "भी कोटि सैनिक १०००० हाथी एक भाग मोड़े तथा ५,००० मारवा" मारे गए थे और उनी में बताया गया है कि महामन्द मन्द की सेना का संभाषति था। इस इस बात का उत्प्रेम परम ही कर बुद्ध है कि मुद्राराक्षस में इस बटना का वर्जन किम रूप में किया गया है त्रिमक भाग्य में ही चाणक्य यह घोषणा करता है कि अपने भी भर्तों की ता हत्या कर दी है और वह मन्दवर्ज क बड़े हुए एकमात्र प्रतिनिधि बड़े मर्वावर्जिदि की भी जीना नहीं छोड़ना जो अपनी राजधानी चरमपुत्र की चरेबंदी को भवन न कर रहा और बाहर जंगल में शरण ल रहा है। यद्यपि वह बड़ा मर्यादी का रक्षण प्रदान करता था पर चाणक्य की आज्ञा पर वहाँ उसकी हत्या करवा दी गई। चाणक्य ने मन्द-वंश की अंतिम शाखा का भी नष्ट कर देन की मन्द के रानी थी।

३०४ ई० पू० में सेल्युकस की वराजय, ईसा तक राज्य का विप्लव चरमपुत्र ने केवल इतना ही नहीं किया कि मन्दवर्मी राजा का मन्द रं मन्दी में हटाकर उसकी जगह बैठ गया। वह औरत ही एक मन्द साम्राज्य का मन्दवर्मी शासक बन बैठा जो मन्द के साम्राज्य में बहुत बड़ा था। चाणक्य उन्हें मन्द की एक पंचमर देश भी सामिल था। बाद में अपने जा त्रिममें उक्त मन्द मन्द रूप यह राज्य और भी बढ़ गया। चरमपुत्र के मन्द मन्द रं रं रं का भी हमें म्मूटार्ड के निम्नलिखित वक्तव्य से पता चलता है (साक्ष्य अग्रिम ८२) "इसके कुछ ही समय बाद एंड्राकस्टस ने जा उनी मन्द मर्वावर्जिदिन का रं रं या सेल्युकस को ५०० हाथी भेंट किए और ६,००००० की सेवा मन्द मन्द

भारत का अपने अधीन कर लिया।" यहाँ पर 'राजमहिास' से अभिप्राय मगध के सिंहासन से है जिस पर उसने मगध के राजा को पराजित करके अपना अधिकार जमाया था। सेल्यूकस को यह उपहार इन पानों के बीच युद्ध के परिणामस्वरूप दिया गया था। ऐसा लगता है कि सिन्धु की मृत्यु के बाद उसके सेनापतियों के बीच आपस में सत्ता के लिए या संपर्क बना उसमें ३११ ई० पू० के लगभग तक सेल्यूकस ने बैक्ट्रियन के शासक क रूप में अपनी स्थिति बहुत दृढ़ कर ली थीर तब उसे सुदूर-ईश्वर प्रांतों में अपने शासन को सुदृढ़ बनाने का अवकाश मिला। और ३०५ ई० पू० के समय या हू-से-हू ३०४ ई० पू० तक उसने भारत के उस भाग पर बुद्धांत आधिपत्य जमाने की योजना बनाई जिसे सिन्धु ने पहले जीता था। काबुल नदी का रास्ता पकड़कर उसने सिंधु नदी पार की (ऐम्बियन 857-858) परन्तु यह अभियान निष्फल रहा और मोना में सधि हो गई। इसका कारण यह था कि उस एक नये भारत से मार्गों केना पड़ा था चन्द्रगुप्त के शासन में एक संपुर्ण तथा शक्तिशाली देश था और उनका नाम बहुत बड़ी सैन्य-शक्ति थी। उसने हठधर्मी से लड़ते रहने की अपेक्षा सधि कर देने में ही कम्पाज किया। इस सधि की शर्तों के अनुसार सेल्यूकस ने अरकोसिया (कश्मीर) और परोपामिछे (काबुल) की संधिपति और उसके साथ बरिया (हज्ज) तथा वेरोसिया (बम्बई-प्रांत) के कुछ भाग चन्द्रगुप्त को दे दिए। इस प्रकार चन्द्रगुप्त के बीरव को चार चौं चय गए। उसने अपना साम्राज्य भारत की सीमाओं में आने ईरान की सीमा तक फैला लिया। यही कारण था कि उसके तीन बेटों ने अपने दो शिताफेला (दूधर तथा १३ में) में यह घोषणा की कि सीरिया का सम्राट् ऐन्टिओकस (अंतिओको पौम-राजा) उनका बर्तनी अथ अथवा प्रथम राजा था। चन्द्रगुप्त ने सेल्यूकस को ५० मुद्रा-बमोली हाथी उपहार में देकर इस बीबी को सुदृढ़ बनाने में अपना योगदान दिया। यह उपहार सेल्यूकस के लिए बहुत बहुमूल्य था क्योंकि उनका सप के कैमडर, साइसैमैकस तथा टॉलेमी नामक राजाओं ने जो उसके विरुद्ध अपने समस्त सन्तु ऐन्टिओकस के विरुद्ध उनका महासत्ता मांगी थी जिसके कारण वह बहुत चिंतित था। चन्द्रगुप्त के मिये हुए हाथी टीक समय पर दण्ड के रथधन में बर्चस गए और टॉलेमीस का बना-बनाया लेक बिगड गया। जब चन्द्रगुप्त ने सेल्यूकस की हाथी भेंट किए तो उसके बाग पश्चिमी देशों में लगे जाने वाले मुद्रों के लिए उनकी माँग होन लगी। २८१ ई० पू० में पाईरैथस इन जहाजों की परिगणन में इनको ल गया। २५१ ई० पू० में ह्यडु बल ने पैगारमन में 'जार्जीस' महापती हाग बनाए जानवाले हाथी इस्तेमाल किए। राय के विरुद्ध द्वितीय प्युनिक युद्ध में इजिप्ट तथा ह्यडु बल ने इन्हीं हाथियों को इस्तेमाल किया और एशिया की

सफाई में तोलेमी के जीवियाई द्वारा एनीओनम के भारतीय हाथियों के सामने पक्ष डेर न टिक सके (कार्यमयटन कामत बिटविन टीमन एम्पायर ऐंड इंडिया पृष्ठ १५१) ।

हाथियों के इस उपहार के बाद दोनों राजाओं के बीच मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों की अभिव्यक्ति अन्य रूपों में भी हुई। ऐप्पियन (Syr ५५) ने इस बात की ओर भी संकेत दिया है कि दोनों राजाओं के बीच विवाह के सम्बन्ध भी स्थापित हुए और इस प्रकार सस्युक्त या ता चन्द्रगुप्त का समुद्र बन गया या बामाह । स्त्राबो की यह बात (SV ७२४) अधिक तर्कमय प्रतीत होती है कि 'बाना' राजवंश के बीच विवाह करने का अधिकार स्थापित कर दिया गया । इस बात की ता कल्पना भी नहीं की जा सकती कि क्यों को मानने वाले उस देश में दोनों जातियों के बीच परस्पर विवाह करने का अधिकार दे दिया गया हो । (कम्ब्रिज हिस्ट्री I पृष्ठ ४३१) । सस्युक्त के साथ चन्द्रगुप्त के सम्बन्ध आज बल्लभ भी बहुत मैत्रीपूर्ण हैं इनका पता एबनीयस की उस बहानी से चलता है जिसमें उसने कहा है कि उसने सस्युक्त को कुछ भारतीय जीवधियाँ उपहार में भेजी (प्लॉट ५२) और सस्युक्त ने मेगस्थनीज का भीय राज-दरबार में अपना राजदूत नियुक्त करके इस मैत्री की पुष्टि की। इससे पहले मेगस्थनीज अराकोसिया के शत्रु सिबिन्थस के दरबार में सस्युक्त का राजदूत था । अरियन के कथना मुसार मेगस्थनीज कुछ समय तक पोरस के दरबार में भी रहा था ( V २२ ) परन्तु इबानजेव ने भूल पात्र के इस अंश का अनुवाद दूसरे ढंग से किया है । कुछ भी हा इतना तो निश्चित है कि वह ३०४ ई० पू० और २९९ ई० पू० (जिस वर्ष चन्द्रगुप्त की मृत्यु हुई थी) के बीच किसी समय पाण्डुपुत्र राजदूत होकर आया था । इस प्रकार उसने चन्द्रगुप्त के जीवनकाल के अन्तिम वर्षों में भीय भारत को उसके शासन के अन्तिम एक सुसंरचित राज्य के रूप में अपने पौरव के विचार पर देखा था ।

इन दोनों राजाओं की मृत्यु के बाद भी भारत तथा पश्चिम के बीच मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध बने रहे । चन्द्रगुप्त के बेटे बिम्बुसार ने सस्युक्त के बेटे ऐंटिआकोस प्रथम से कुछ मोठी शरण भेजी और एक दार्शनिक भेजने की प्रार्थना की थी । ऐंटिओकोस प्रथम ने प्लैटो के डाइमैकस को अपना राजदूत बनाकर बिम्बुसार के यहाँ भेजा था । प्लिनी (नेबरक हिस्ट्री VI, ५८) ने इस बात का उल्लेख किया है कि तालेमी जिन्नाइसस (मिस्र का राजा २८५-२४७ ई० पू०) ने बायोनीसिस को अपना राजदूत बनाकर भारत भेजा था । बायोनीसिस का जिन राजा के यहाँ राजदूत बनाकर भेजा गया था वह या तो बिम्बुसार हो सकता है या उसका बेटा अलोके । जिसने अपने १३वें पितालेख में मिस्र के इस राजा

का उद्देश्य उन पाँच राजाओं में किया है जिनके दरबार में उनका स्वयं अपने सम्पाद-संस्करण में से।

इन प्रमाणों में यह बात ध्यान देने योग्य है कि मेक्सवेलीन ने कहा है कि उनके समय में अनेक सेवक (यूनानी सेवक) सिंधु नदी का उत्तरेक भारत की पश्चिमी सीमा के रूप में गृहीत करते थे कि भारत में उन चार राज्यों की भी प्राप्ति करते हैं जिन्होंने उत्तरेक अंग्रेजों को दिया था चुका है (पिनी हाथ उद्घृत ५६वीं सं. १)।

दक्षिण-दिग्गज अपना राज्य भारत की सीमाओं के आगे तक फैला लेने के बाद विजय-नरेश के पार दक्षिण में अपना साम्राज्य स्थापित करने का विचार उसके मन में उत्पन्न हुआ। ज्यूरार्क का जो उद्घरण ऊपर दिया गया है उसमें कहा गया है कि "उनका १००० की सेना केन्द्र सारे भारत को अपने अधीन कर दिया।" इस भारत विजय के पूर्ण विवरण नहीं मिलते पर अंग्रेजों के सिद्धांतों में इसके विवरण प्रमाण मिलते हैं। पहली बात यह है कि मैसूर के चिलमहूय जिसे में सिंधु, ब्रह्मविरी और पश्चिम समरेचर पर्यंत पर उनके सिद्धांतों में कोलकाता तक में सीमाओं तथा पाटलीपुत्र के सिद्धांतों में ईदराबाद तक में मस्की के सिद्धांतों में और कर्नूल जिले में पूरी के सिद्धांतों में इस बात का प्रमाण मिलता है कि अंग्रेजों का राज्य दक्षिण में फैला हुआ था। इसके अनिश्चित लोक तथा वास्तविक समय तथा कैलपुत्र आदि बातों का उद्देश्य अपने पड़ोसी राज्यों के रूप में करके (सिद्धांत २ ११) अपने साम्राज्य की पश्चिमी सीमाओं अथाक में इंगित कर दी है। तीसरे अथाक में अपने १२वें सिद्धांत में इस बात की सूचना दी है कि उस समय मेसूर का विजय प्राप्त की है और यह कि उस विजय के कारण उसे बहुत कुछ तथा परचाताप हुआ क्योंकि उनमें बड़ी हिंसा और रक्तपात हुआ था। उस युद्ध में "१५००० लोग बंदी बनाये गए (अथर्व) १००० लाख मारे गए (हते) और रक्षा कई नुती लप्या में सोम युद्ध में लक्ष पाँचों का कारण बन गए। इन भीषण रक्तपात तथा विपदा के लिए वह स्वयं उत्तरदायी था। इन बातों का उसे इतना हीन भावना हुआ कि उसने तुल्य कारणों की कि पश्चिम में अब कभी वह ऐसे रक्तपात द्वारा किसी देश पर विजय नहीं प्राप्त करेगा और उसने अपने विजय को अपने साम्राज्य की नीति पर्यंत दिया और इसमें पहले की भावना तथा देश-विजय की नीति का अन्त कर दिया। अब वह अहिंसा का पूर्ण प्रचारक बन गया। इस प्रकार यह बात स्पष्ट है कि दक्षिण-विजय का अन्त अंग्रेजों को नहीं है। और इसका भी कोई निश्चित प्रमाण नहीं मिलता कि वह विजय उसके पिता विन्डुमार ने प्राप्त की हुई, जबकि ज्यूरार्क ने यह बात निश्चित रूप में नहीं

अज्ञानक एने समय पर राजसिंहासन बर्षीं स्थाप दिया जब उसकी अवस्था नी-  
चट्टन अधिक नहीं थी और वह अपनी सत्ता के मिश्रण पर था। जैसा कि उन्होंने  
कहा है 'चंद्रगुप्त मौर्य का चरनामय शासन जिस रूप से समाप्त हुआ गया उस  
पर प्रकाश डालनेवाला एकमात्र प्रमाण इन प्रबंधों में मिलता है। बहुत ही कम  
मायु में (उस समय उमरी था पञ्चांग म कम ही रही होगी) उनका विमल  
हो जाने की समस्या का पर्याप्त समाधान हम बात में हुआ जाता है कि उनमें स्वयं  
राजसिंहासन स्थाप दिया था।"

इस बात का कि चंद्रगुप्त ने जैन-धर्म अंगीकार कर लिया था सभी जैन  
रूपकों ने बिना किसी संका या बिचार की आवश्यकता के स्वीकार कर लिया  
है और इसका खंडन करने वाला भी कोई प्रमाण नहीं मिलता। जैसा कि हम  
दल चुके हैं सर्वश्रेष्ठ के राजाओं के शासनकाल में जिनका नुकाव जैन-मत की  
आर का और जिनके दरबार में जैन-मनों के जन-मत का शासनकाल पान्तिपुर  
में थाप्ट हुआ था (हिन्दू सम्प्रदाय, पृष्ठ २७७)। मुशराधम में पान्तिपुर  
के राज-दरबार में जैना के प्रमुख स्थान और स्वयं शासक द्वारा जो शासन  
धर्म का कट्टर समर्थक का अपन मुख्य रूप के रूप में एक जैन की नियुक्ति के  
का प्रमम मिलता है व भी इनो उच्च को स्वादृष्टि है। राज-दरबार में जैन प्रमाण  
का चुका था [राष्ट्र मैसूर ऐंड कर्म काम इन्सिपिण्ड, पृष्ठ ३-९ Ep Carn. II  
पृष्ठ ३५-४३ अथवा बल्लमाठा के सिद्धांत]।

इसलिए यदि इस बात का सब मान लिया जाए कि चंद्रगुप्त ने अपन जीवन  
के अंतिम दिन अथवा बेलपोला में व्यतीत किये थे तो यह मान करना भी अनुचित  
न होगा कि वह किसी ऐसे स्थान में ही जाकर बसा होगा जो उनके साम्राज्य  
की सीमाओं के भीतर और जनाक के निवासों के बड़ी निकट ही रहा होगा।

तमिल परम्परा इसके अतिरिक्त बलिण पर मौर्य शासन का उत्तरा  
गमिल साहित्य में भी मिलता है। तमिल रचनाओं में बार बार हम इस बात का  
उल्लेख मिलता है, तीन जगह महानगर में और बीबी जगह पुराना नगर में। इनमें  
कहा गया है कि मौर्य के राजा का बसत करम के लिए, जिसने उनके वाधिपत्य  
का स्वीकार करने में इनकार कर दिया था मौर्य अपने रथों और "अपनी  
माइों तथा हाथियों की सेना" के साथ बट्टाओं को चोखे हुए जाने बहुत गए।  
अपन समिपान में उनके स्वामीय मित्रों कागलों ने जिन्होंने "गमलेन में पशु की  
सेनाओं को परास्त कर दिया" और बहुतों ने सहायता की जो "अपने तीव्र  
यामी तीरो" से लड़ते थे। कुछ लोगों का मत है कि इन प्रकरणों में कदाचित्  
मौर्य से तात्पर्य काकण के उन बाद के मौर्यों से है जो इतिहास के रणमंच पर  
पीछी घुलसि इसी में आये परन्तु एक प्रकरण में "नववसिवा की बहुत सम्पदा





माग्राज्य सिव नदी के पार के प्रांतों में ईरान की सीमा तक बढ़ा दिया। इस प्रकार हम इस बात का मान सकते हैं कि ३२३ और ३२१ ई० पू० के बीच चंद्रगुप्त पंडित का शासन और मगध का सम्राट बन बैठा। यह मान लेना अनुचित न होगा कि ३२० ई० पू० में सार्वभौम शासन के रूप में उनका साम्राज्यिक राजा और सभी रूप अपने सभी राजवंश की नींव डाली।

इस तिथि की पुष्टि करने के लिए हमें और भी तथ्य-सामग्री उपलब्ध है। यदि हम विभिन्न राजाओं के शासनकाल के बारे में पुराणा में भी हुई विविधा वर विवरण करें तो हम देखेंगे कि चंद्रगुप्त ने २४ वर्ष तक शासन किया और इसलिए उसका शासनकाल ३१८ ई० पू० में सत्तापुत्र हुआ होगा और उसके बेटे बिहुमार ने २५ वर्ष तक मगध ३०३ ई० पू० तक शासन किया। इस प्रकार हमें मानना पड़ेगा कि अंशक २७३ ई० पू० में सिहासन पर बैठा होगा इस तिथि की अकाल्य पुष्टि अंग्रेजों के अभिलेखों में होती है। अहमद में अंग्रेजों के सिहासन पर बैठने और उनके साम्राज्यिक में अंतर किया गया है और बताया गया है कि इन दोनों के बीच चार वर्ष का अंतर था (पृ० २२)। इस प्रकार उनके साम्राज्यिक की तिथि २६९ ई० पू० निकलती है। उसके अभिलेखों पर भी उसके साम्राज्यिक के हिसाब से तिथियाँ डाली गई हैं। उसके १३वें शासनकाल पर उसके साम्राज्यिक के १३ वर्ष बाद की तिथि पड़ी है। इस प्रकार यदि उनके साम्राज्यिक की तिथि २६९ ई० पू० में सही मानी जाए तो इस शासनकाल की तिथि २५६ ई० पू० होनी चाहिए। यह तिथि सही है क्योंकि स्वयं १३वें शासनकाल के बारे में सुविदिन निधि-सम्बन्धी तथ्य-सामग्री में यह निश्चय है। १३वीं शासनकाल भारतीय इतिहास में तिथि कम की दृष्टि में अपूर्व महत्व रखता है। इस शासनकाल में अंग्रेजों ने पाँच सत्र महत्वपूर्ण मुताबिक राजाओं का उल्लेख किया है, जिन सबका साथ अपने शासनकालों के लिए उसने वैधपूर्ण सम्बन्ध स्थापित कर रहे थे। इसलिए जिन समय अंग्रेजों ने उनका उल्लेख किया है उसकी तिथि हम-ने-हम उस समय की रही होगी जब वे सब घोषित थे और उनके बीच होने का अभाव को पता था और हम उस निधि को उसमें एक वर्ष पहले की मान सकते हैं जब वे सब छुट-पुट रहे होंगे।

इसमें से निम्नलिखित तीन राजाओं की शासनकाल तिथि का रूप में मान्य है

(१) अशोक, मगध के राजा ईरान का राजा एन्थोपस द्वितीय दिवस २६१-२४६ ई० पू०।

(२) मुरारि, मगध के राजा एन्थोपस द्वितीय दिवस २८५-२४० ई० पू०।

(३) अतिरिक्ति अर्थात् मकहूनिवा का राजा ऐटियोस वानाटस १०३-२४० ई. पू० ।

तबका इन वा राजाओं के सम्बन्ध में है

(४) मक अर्थात् साइरीस का राजा समस जिसकी शासनावधि हम बहुत मान सकते हैं जो बैबल तथा गवर दोनों ने प्रमाणित की है, अर्थात् १००-२५० ई. पू० ।

(५) अलिस्सुडर, जिसके सम्बन्ध में बहुत मतभेद है कि वास्तव में वह कौन था और उसने कब से कब तक शासन किया । वह या तो एरिरस का अलेक्जेंडर हो सकता है या कार्थेज का अलेक्जेंडर । इन दोनों में एरिरस का अलेक्जेंडर अरशास्त अधिक पक्षपूर्वक था और उसी की आर मघोक का ध्यान आकृष्ट होने की अधिक सम्भावना है । वह एरिरस के प्रस्ताव पार्थस का पुत्र और मकहूनिवा के गैरीवानस बोवाटस का प्रतिद्वंद्वी था । कार्थेज का अलेक्जेंडर समसप जिसका ही स्वामीय राजा था जो बात में "किन्तु एक मगर तथा एक डोम का आपनायी घामक बनकर रह गया जिसे न कोई ऐतिहासिक पौरव प्राप्त था और न उसका संसकन ही प्रतिष्ठित था ।" एशिया माइनर के अनेक राजाओं का वह भी इन्हीं के बगवदर या इनस जैसा था जिसका उत्प्रेषण मघोक का करना चाहिए था जैसे पैर्सोन का कुमेनीस ( २९०-२४ ई० पू० ) या भारत में भार भी निकट बैकिन्मा का हियारसस । वह बात है कि एरिरस का अलेक्जेंडर जिसका अशोक न वास्तव में उत्प्रेषण किया है, २५५ ई. पू० तक जीवित रहा ।

इन पाँच राजाओं के शासनकाल की तिथियों का ध्यान में रखते हुए हम इन विचारों पर कर्तव्य है कि २५५ ई० पू० तक वे सब जीवित थे । इससे यह मनोना निकलता है कि १३वें शताब्दी में मघोक ने जब उनका उत्प्रेषण किया था वह २५५ ई. पू० में पहले ही किया हुआ । हेम ( हार्तड ) के पी. एच० एक एशियाई ने ( जिन्होंने हार्ड पर अनेक आक्रमण के बात ही दिन पहिने ३० अगस्त १९४० का 'अशोक के १३वें शताब्दी की तिथि' टीपिक अपना विद्वान्पूर्ण नया अंतरा मुझे सम्मानित किया था, बहुत निपुणता के साथ शिवाय लगाकर बहुत अच्छे रूप में यह निरा किया है कि इनमें से किसी भी मूलानी राजा की मृत्यु का सम्भाव्य पाल्मिपुर में अशोक के पास तक पहुँचने में ४ या ५ महीने न अधिक का समय नहीं लग सकता था इसलिए एक वर्ष की मृदा हम मानने की कोई आवश्यकता नहीं है, जैसा कि मैंने अपनी अशोक नामक पुस्तक में किया था । बाकी तर्क-विमर्श के बाद उन्होंने बाकी वा राजाओं एरिरस के अलेक्जेंडर और नासीस के समय का निर्धारण भी निर्धारित किया है ।

राज्य व्यवस्था सार्वभौम शासक का यह परम कर्तव्य था कि वह इस समाज-व्यवस्था की रक्षा करे क्योंकि इस व्यवस्था की समाज कल्याणकारी और राज्य के सर्वोच्च धर्म के रूप में व्यक्तिगत के विकास अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति की समता की पूर्णतम अभिव्यक्ति की सुनिश्चित बनाने के लिए सर्वोच्च व्यवस्था समाज जाता था ।

इस अर्थात् धर्म के रक्षक के रूप में राजा ऐतरेय ब्राह्मण में [VIII २६] राजा को धर्म का रक्षक (धर्मस्य रक्षता) बताया गया है । छठवें ब्राह्मण में [XIV ४ २ २३] कहा गया है कि धर्म को रक्षा करने के लिए अर्थात् 'न्याय के उन सिद्धांतों की रक्षा करने के लिए, जिनके द्वारा वक्त्रवाणी को निर्बली को द्या जाने से रोका जाता है' (अवलीयम् कर्त्तव्यं मा धंसते धर्मो यथा) इस अर्थात् राजा की आवश्यकता होती है । महाभारत में कहा गया है कि इस के बिना समाज मत्स्य-न्याय की व्यवस्था में पहुँच जाएगा जिसमें 'मीन एक-दूसरे को मछलियों या कुत्तों की तरह खा जायेंगे' (परस्परं मत्स्यतो मत्स्या इव जले कुक्षत् । परस्परं विनुष्यन्ति सारथेया यथापिपम्॥) । कौटिल्य ने इसी मत को इस प्रकार व्यक्त किया है 'जहाँ कोई पशुधर नहीं होता अर्थात् जहाँ न्याय दंड चालू करने वाला कोई नहीं होता वहाँ इसका निबन्ध को उसी प्रकार खा जाते हैं जैसे बड़ी मछली छोटी मछली को खा जाती है । परन्तु राज्य का संरक्षण बाकर निबन्ध भी आवश्यक हो जाते हैं' (अप्रसीतो हि मात्स्यग्रायमुद्भाषयति । अलीयावत्सर्गं हि प्रसीतं दण्डवराभावे । तेनमुत्त. प्रमवति ॥) [I, ४] । कौटिल्य ने अपने चम्कर कहा है कि जो राजा धर्म का रक्षा करता है वह 'इस लोक में और परलोक में सुख का भोग करेगा' (मेवैवैह च नृभवति) [I ३] । यह बात भी ध्यान में रखनी चाहिए कि धर्म अर्थात् उस राज्य-विशेष के कानून तथा संविधान की सीमाओं के भीतर राज्य के प्रभान के नाते सार्वभौम शासक अपने राज्य में सर्वोच्च व्यक्ति का स्वामी होता था (कृत्स्नाधीनो हि स्वामीति) [VIII १] । कौटिल्य ने यह भी बताया है [III, १] कि वह राजा जो धर्म (सत्य, निष्ठा, धर्म, अर्थात् सम्प्रतिष्ठ धर्म) व्यवहार (निर्धारित नियमों) सत्ता (रीति-रिवाज, लोकधार) और न्याय (विवेक) के अनुसार शासन करता है (अनु-शासन) वह समुद्र की सीमाओं तक समस्त पृथ्वी पर विजय प्राप्त कर लेगा (चतुरन्ता महिं जयेत्) । कौटिल्य का यह भी मत है [IV २३] कि यदि कोई राजा अपनी क्षमता का अधिक रूप से उपयोग करेगा तो वह स्वयं भी बंध का भागी होगा (अदभ्युदयने राज्ञो बन्धविघ्नस्तु चोन्मतिः) अर्थात् जो राजा किसी निर्दोष व्यक्ति को बंध देता, वह स्वयं उससे तीस-मुने बंध का भागी होता । यह बंध भोगने के बाद वह न्याय के पाप से मुक्त हो जाएगा (तेन तत् पश्ये

पार्श्व रामो दधूपचारजम्) । यह इस सिद्धांत की उसकी चरम सीमा तक पहुँचा देना है परन्तु इसका उद्देश्य केवल इस बात पर जोर देना है कि अंत में धर्म ही सर्वोच्च सामक है स्वयं राजा भी जिसके अधीन होता है । मनुष्य पर विधि व्यवस्था नियमों का शासन होता है ।

यह आवश्यक न देना कि महर्षि राजाओं के धर्म शासन के अंतर्गत राजाओं के लिए विहित इस उदात्त लक्ष्य का इनमें हो रहा है तब उसने इसी लक्ष्य की पूर्ति के लिए स्वयं अश्वपुत्र की सिहासन पर बिठाया ।

लौकाचार विधि के रूप में हम यत् भी देखते हैं कि विधि के जा ओत निर्धारित किये गए हैं उनमें से एक आचार भी है जिसे कौटिल्य ने चरित्र या धर्मवा अर्थात् उन देश के आचार-स्वभाव तथा रीति-रिवाज कहा है । परन्तु अस्म-अस्म कर्मों जानिये ये विधियाँ तथा जनपदा के आचार भी अस्म-अस्म होने हैं और इन विभिन्न समूहों को स्वयं अपने लिए कानून बनाने का अधिकार होता है । इसीलिए मनु ने कहा है [VIII ४१ ४६] कि शासक का यह कर्तव्य है कि वह इन विभिन्न स्वशासित समूहों को कानून बताये तथा जनपद द्वारा अपने लिए बनाये गए कानूनों को साम्यता से तथा उनका सामन करवाए । गौतम ने [II २ २ २१] इससे भी आगे जाकर हुए की व्यापारियों पशु पक्षियों तथा घिसाकारों की ये विधियाँ व्यवस्था अर्थात् यहाँ की भी कानून बनाने का अधिकार दिया है । राजा को किन जनपदीय या स्थानीय कानूनों को साम्यता देनी चाहिए इसके एक उदाहरण के रूप में मनुस्मृति के एक टीकाकार ने 'सामा की देनी से विवाह करने के रिवाज का उल्लेख किया है ।

इस प्रकार अस्म-अस्म पाँच एक और सामाजिक इकाई के निम्नतम स्तर तक पहुँच गया था और जनता के अस्म के सबसे अधिकाराली सामन के रूप में अस्म कर रहा था । गणसभा की व्यवस्था की ही दृष्टि से प्राचीन हिंदू साम्राज्य एक सीमित गणराज्य था । जिस स्वशासित समूहों पर राज्य की नींव रखी गई थी उन्हीं के लिए एक ऐसे अनुपम जनपद का रूप धारण कर लिया था जिसके कारण गणसभा के विचार पर आश्रित मार्गशीर्ष शासक निर्बल नहीं हो सकता था ।

और साम्राज्य की अनेक की प्रशासन के इन परम्परागत माँके से वास्तव में था । स्थानीय सामन-व्यवस्था की वास्तविकता ही कुछ नहीं थी कि उसने साम्राज्य के सामन की समस्या को हल कर दिया था । मगध को वैभव प्रशासन की मौजूदा व्यवस्था का अस्म बन गया था ।

प्रशासनिक विचार : और साम्राज्य अनेक उप-राज्य तथा प्रांतों में बँटा हुआ था और इनमें से प्रत्येक हिंदू राज्य युगों में प्रतिष्ठित तथा एक निश्चित

रूप में दृष्टे हुए नमूने पर संयोजित था। इनकी शासन-व्यवस्था में सबसे ऊपर राज्यपाल होता था फिर मन्त्रि-परिषद् होती थी। इससे बाहर विभिन्न विभागों के अध्यक्ष होने से फिर राज्यपाल के छोटे-बड़े विभिन्न पदाधिकारी होंगे या भिन्न-भिन्न जगह-जगह पदाधिकार-क्षेत्र होंगे वे और इस पूरे ढाँचे का आधार होता था स्वशासित ग्राम-समुदाय।

चतुर्गुण मौर्य के शासनकाल में साम्राज्य किन प्रांतों में विभाजित था इसमें बारे में हमें अधिक प्रमाण नहीं मिलते। परन्तु उससे पौब अशोक के शासनकाल के बारे में हम कुछ प्रमाण मिलते हैं। उसने अपने पूर्वजों द्वारा स्थापित कुछ संस्थाओं में सुधार किये थे परन्तु वेप को व्यो-का-स्था बना रहने दिया था। जो नयी संस्थाएँ उनसे स्थापित की थी उनका उल्लेख उसने अपने सिंहालक्ष्मण में कर दिया है। अशोक ने अपने सिंहालक्ष्मणों में जिसने प्रांतों का उल्लेख किया है उनमें से किसी के भी बारे में उसने यह नहीं कहा है कि उसकी स्थापना उसने स्वयं की थी।

उप-राज्य : इनके सिंहालक्ष्मणों में कम-से-कम चार उप-राज्यों का उल्लेख मिलता है जिसकी राजधानियाँ इन स्थानों में थीं (१) तक्षशिला (२) उज्जैन (३) तासिली और (४) मुबनगिरि।

इन उप-राज्यों के शासन राजकुमार होते थे जिन्हें अराज के सिंहालक्ष्मणों में 'कुमार' या 'मायपुत्र' कहा गया है। अशोक को उसका पिता ने पहले उज्जैन का शासक नियुक्त किया था फिर वह तक्षशिला में अपने बड़े भाई राजकुमार सुमीन के स्थान पर शासक नियुक्त हुआ। अशोक का बेटा जगल तक्षशिला में सम्राट् के प्रतिनिधि के रूप में शासक नियुक्त था। अशोक ने अपने भाई राजकुमार तिस्र के अपने स्थान पर राजधानी में काम करने के लिए उपराज नियुक्त किया था। राज्य के उत्तराधिकारी को मुबनगिरि कहते थे।

कौटिल्य ने [XII, २] यह भी बताया है कि यदि राजा को किसी कारणवश देश से बाहर जाना पड़े तो क्या व्यवस्था की जानी चाहिए। इस प्रकार जो स्थान खाली (शून्य) होगा उसे भरने के लिए एक पदाधिकारी नियुक्त होगा और उसे मुख्य-पालक कहा जाएगा। उसका पद बहुत-कुछ अशोक के उपराज जैसा ही था।

उपयुक्त उप-राज्यों (राष्ट्रों) में से तक्षशिला चतुर्गुण के साम्राज्य के मुख विहित उत्तर-पश्चिमी सीमाप्रांत की राजधानी थी और उज्जैन मध्य प्रांत की राजधानी थी जिस उस समय अजन्तिकाष्ट कहते थे [महावंस XIII, ८]।

मुबनगिरि बल्लिषी प्रांत की राजधानी थी। तीसरी कलिंग राज्य की राजधानी थी पर वह चतुर्गुण के समय में मौर्य साम्राज्य का अंग नहीं था।

यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि भारत जिन पाँच प्रांतों में विभाजित था उनके नाम पुराणों में ये बताये गए हैं

- (१) उत्तरीय (उत्तरी भारत) या उत्तराखण्ड ।
- (२) मध्य देश (मध्यवर्ती भारत) ।
- (३) प्राच्य (पूर्वी भारत) ।
- (४) अपरांत (पश्चिमी भारत) ।
- (५) दक्षिणात्य (दक्कन तथा दक्षिणी भारत) ।

राजा की तरह ही इन उप-राज्यों के शासकों की भी मन्त्रि-परिषद् होती थी इन मन्त्रियों का बहामाय कहने से । राजा की तरह ही उप-राज्या के शासक भी श्वाश-सुश्रुक्ष्मी प्रमाणन व निरीक्षण के लिए बिनाप मंत्री (अह्मदाय) नियुक्त कर सकत थे [बिबिध मेरी पुस्तक अमोक्ष (वैकमिन्) पृष्ठ ५ ] ।

प्रांतों के शासक : उप-राज्यों के अनिर्दिष्ट जिनके पासक राजस्वमात्र होते थे कुछ प्रांत भी थे । इस प्रकार के कुछ प्रांतों की राजधानियों का सम्बन्ध अष्टांग के शिवालयों में मिलता है जैसे दक्षिण में इमिन् तथा गमापा और आजमक के उत्तर प्रदेश में इलाहाबाद के निषद कीपाप्पी । इन प्रांतों के शासक प्राये 'मिक महामात्र' या 'राजुव' कहलाते थे जो लार्ड लार्डों पर आमत पर करते थे । इन्हें सामन के ब्रह्म श्वाशक अधिकार मिले हुए थे [उपरास्त] । परन्तु इसके बाद के काग के १५ ई के इन्द्रास के शिवालय में प्रांत के शासक का 'राष्ट्रिय' कहा गया है । जैसा कि हम पहले बता चुके हैं इस शिवालय में ही हमें यह महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त हुई है कि अष्टांगसूत्र के शास्त्राध्यक्ष व पश्चिमी प्रांत का नाम आनर्न -

इमची राज

मिन्ग व भी और उत्तका

## अध्याय ४

### राजा

राजा : उसकी शिक्षा प्रशासन का बहुत काम राजा को स्वयं करना पड़ता था। इस काम के योग्य बनने के लिए उसे विशेष प्रकार की शिक्षा प्राप्त करनी पड़ती थी। हम पिछले अध्यायों में देख चुके हैं कि चांद्रगुप्त इस दृष्टि से बहुत ही साम्यवादी था कि आपत्त-वैसा गिण्ठात पीठित उसका बुरा बना जिसने उसे सप्तशिक्षा में आठ वर्ष तक शिक्षा दिलाई। उस सारे देख में इससे अच्छी शिक्षा प्राप्त करना संभव न था। कौटिल्य ने बताया है [ I ५ ] कि राजकुमारों को जो शिक्षा दी जाए, उसमें क्या-क्या आते होंगी चाहिए। शिक्षा में सबसे पहला स्थान अनुशासन (विनय) का बताया गया है जिसमें निम्नलिखित युग होने चाहिए (१) ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा (शुश्रूषा) (२) सीखे हुए सत्य पर ध्यान देना (अवचमम्) (३) जो कुछ सीखा जाए, उसे अच्छी तरह समझना (गृह्यम्) (४) जो समझ में आ जाए उसे हृदयगम करना (आरचम्) (५) सीखे हुए सत्य को प्राप्त करने के उपाय तथा साधन जानना (विज्ञानम्) (६) निष्कर्ष निकालना (ग्रह्णा) (७) चिंतन-मनन करना।

क्रिया से केवल उसी प्रकार को बरा में किया जा सकता है, जो इसके योग्य हो उसे नहीं जो इसके योग्य न हो। (क्रिया हि त्रयं विनयति नक्षत्रम्)।

शिक्षा में अध्ययन तथा व्यवहार दोनों का ही समावेश होना चाहिए। उसे केवल सैद्धांतिक न होना चाहिए।



यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि भारत जिन पाँच प्रांतों में विभाजित था उनके नाम पुराणों में ये बताये गए हैं

- (१) उत्तरीय (उत्तरी भारत) या उत्तरापथ ।
- (२) मध्य वेद (मध्यवर्ती भारत) ।
- (३) प्राच्य (पूर्वी भारत) ।
- (४) अपरंत (पश्चिमी भारत) ।
- (५) दक्षिणापथ (दक्कन तथा दक्षिणी भारत) ।

राजा की तरह ही इन उप-राज्यों के शासक की भी मूर्ति-परिपक्व होती थी इन मूर्तियों का महामात्र कहते थे । राजा की तरह ही उप राज्या के शासक भी स्वाय-गम्यन्त्री प्रणामन के निरीक्षण के लिए विषय मंत्री (महामात्र) नियुक्त कर रखते थे [मिगिए मैरी पुस्तक असीक (मैक्सिमिन) पृष्ठ ५ ] ।

प्रांतों के शासक : उप-राज्य के अनिश्चित जिनके शासक राजबन्धु होते थे कुछ प्रांत थे । इस प्रकार के कुछ प्रांतों की राजधानियाँ का उम्माय अचोठ के शिलालेखों में मिलती हैं जैसे दक्षिण = इल्लिम् तथा सम्राट और ब्राह्मण के उत्तर प्रदेश में इलाहाबाद के निकट कीलानी । इन प्रांतों के शासक 'प्रादे' शिख महामात्र या 'राजूक' कहलाते थे जो स्वयं काया पर शासन करते थे । इन्हें सामन के बहुत व्यापक अधिकार मिले हुए थे [उपरायत] । परन्तु इसके बाद, का. के १५० ई. के इलाक़ में दिलाप्लेन में प्राप्त के शासक का 'राष्ट्रिय' कहा गया है । जैसा कि हम पहले बताना चुके हैं इस दिलाप्लेन से ही हमें यह महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त हुई है कि चन्द्रगुप्त के साम्राज्य के पश्चिमी प्रांत का नाम आनन तथा मुराष्ट्र था । इनकी राजधानी बिरिनगर में थी और इसका सामन वैद्य पुष्यवृत्त था । कोटिस्व ने प्राचीन सामन के लिए 'राष्ट्र-मुष्य' या 'राष्ट्र-नाक' [I १] या 'ईरवर' [II १] शब्दों का प्रयोग किया है ।

## अध्याय ४

### राजा

राजा : उसकी शिक्षा : प्रशासन का बहुत काम राजा को स्वयं करना पड़ता था । इस काम के योग्य बनने के लिए उस विशेष प्रकार की शिक्षा प्राप्त करनी पड़ती थी । हम पिछले अध्यामों में देख चुके हैं कि ब्रह्मुत्पत्ति इस दृष्टि से बहुत ही नाम्यदायी था कि आणक्य-वीर्या निष्पात पंडित उसका धुर बना जिसने उसे सप्तशिक्षा में बाँट कर्य तक सिखा दिया । उस सारे क्षेत्र में इससे अच्छी शिक्षा प्राप्त करना संभव न था । कौटिल्य ने बताया है [ I, ५ ] कि राजकुमारों को जो शिक्षा दी जाए, उसमें क्या-क्या बातें होनी चाहिए । शिक्षा में सबसे पहला स्थान अनुशासन (विनय) का बताया गया है जिसमें निम्नलिखित गुण होने चाहिए (१) ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा (द्युषुषा) (२) सीखे हुए सत्य पर ध्यान देना (अवधम्) (३) जो कुछ सीखा जाए, उसे अच्छी तरह समझना (ग्रहणम्) (४) जो समझ में आ जाए उसे दृढगमन करना (धारणम्) (५) सीखे हुए सत्य को प्राप्त करने के उपाय तथा साधन जानना (धिज्ञानम्) (६) निष्कर्ष निकालना (ग्रह) (७) चिंतन-मनन करना ।

“क्रिया से केवल उसी पदार्थ को ज्ञान में किया जा सकता है जो इसने योग्य हो, उसे नहीं जो इसके योग्य न हो ।” (क्रिया हि ब्रह्म विनयति वाक्यम्) ।

शिक्षा में अध्ययन तथा व्यवहार दोनों का ही समावेश होना चाहिए । उसे केवल सैद्धांतिक न होना चाहिए ।

राजकुमार का अपनी पिता यज्ञित (संख्या) और सिखाई (शिक्षा) से  
 आरंभ करनी चाहिए और फिर इन विषयों का अध्ययन करना चाहिए (क)  
 यही यानी तीनों वेद (ख) अध्यापकों से जमीनकी सर्वस्व दर्शनमात्र (ग)  
 अनुमयी प्रसाधकों (अध्यापकों) से सांख्य जीवन (वार्ता) के विभिन्न विभागों  
 का ज्ञान और (घ) राज्य-शासन के सिद्धांत तथा व्यवहार (अनुप्रयोग-विषय)  
 के विज्ञान अध्यापकों से रहनीति अर्थात् शासन-कला । राजकुमार का १५ वर्ष  
 की अवस्था तक ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए और तब विवाह करना चाहिए ।  
 उसे अपनी माननाओं पर पूरा नियंत्रण रखना चाहिए और यह याद रखना  
 चाहिए कि इन सामनाओं के समीपूत हुक्म, श्रेय विज्ञान से पड़कर बड़े-बड़े  
 राजाओं ने किस प्रकार अपने विज्ञान को निश्चिंत बुझाया [ उपरोक्त I ६ ] और  
 किस प्रकार वे राजा जो अपने आत्म-व्यय के लिए प्रयास से ईश्वरप्राप्ति के  
 [उत्पत्ति] ।

विज्ञान पूरी कर विवाह करने के बाद भी उसे अपने ज्ञान को बढ़ाते रहने  
 के लिए तब तक उस कोष का नाब करना चाहिए जो ज्ञान के दोष में उसमें बड़े  
 है (विद्या-बुद्ध-संयोग) ।

प्राप्त-काल उसे हाथिया बाणों तथा तथा वैद्यक विद्याधिया की सेवाओं के  
 साथ करने का श्रेय प्रशिक्षण प्राप्त करना चाहिए ।

तीसरे पहर का समय उस इतिहास के अध्ययन में लगाया चाहिए, जिनमें  
 निम्नलिखित सब शामिल हैं (१) पुराण (२) इतिवृत्त (अतीत का इतिहास)  
 और रामायण तथा महाभारत (३) आत्मविद्या (वचनों तथा महापुरुषों  
 की कहानियाँ) (४) उदाहरण (किन्हीं तथा जीवितों या एक टीकाकार के  
 अनुसार व्याय मीमांसा तथा उपन्यास-शास्त्र अर्थात् गल्प रचनाएँ) (५)  
 धर्म-शास्त्र अनुस्मृति वैनी विधि-नियम और (६) धर्म-शास्त्र ।

अवकाश का समय उस नया ज्ञान प्राप्त करने और जो कुछ सीखा है उनको  
 आत्ममात्र करने में व्यय करना चाहिए ।  
 इस प्रकार पिता तथा विद्वान् प्राप्त कर देने वाला राजा सबमुख अर्थात्  
 हो जाता है ।

उस कभी भी अनावधान न रहना चाहिए, बल्कि तब तक उत्तम तथा श्रेष्ठ  
 रहना चाहिए (अर्थात् बृद्धि) [उपरोक्त १९] ।  
 दिनचर्या : प्रातःकाल के बाद का ध्यान में रखकर ही राजा की दिनचर्या  
 निर्धारित की गई है ।  
 दिन और रात बाधा को जान-जान लोगों में बाँट लिया गया था । समय  
 का ज्ञान सूर्य द्वारा या सम्य-गुरुक जलपत्र द्वारा प्राप्त किया जाता था । इस

प्रकार समय का प्रत्येक ऐसा विभाजन (नासिका) बड़ बट्टे के बराबर होता था । राजा दिन-भर इतना व्यस्त रहता था और उस पर ऐम-यम कामों का भार था कि उसकी दिनचर्या साहित्य में हास्य का विषय बन गई है । ब्रह्मकुमारचरित में [II, ८] दण्डिन् ने कौटिल्य द्वारा राजाओं के लिए निर्धारित दिनचर्या का मजाक उड़ाया है उसका कहना है कि ऐसी दिनचर्या से राजा एक असह्य भार बन जाएगा ।

यदि हम दिन और रात की सम्भाई बराबर-बराबर भाग में और दिन तथा रात के सोकड़ भागों का हिस्सा बनें य सपाएँ तो राजा की दिनचर्या इस प्रकार होगी

राति में १॥ से १ बजे तक—सुयोध या घुहनाई की आवाज (तुर्य-बोप) सुनकर सोकर उठना धर्म के आदेशों (शास्त्रम्) तथा आध्यामी दिन के कामों पर विचार करना ।

प्रातःकाल १ से ४॥ बजे तक—नीति तथा योजनाएँ निर्धारित करना और उनके अनुसार अपने गुप्त बूत भेजना ।

प्रातःकाल ४॥ से ६ बजे तक—यज्ञ कराने वाल पुरोहित राजपुर तथा कूक-पुरोहित के साथ बैठना और उनका आशीर्वाद प्राप्त करना (स्वस्त्यायन) बिस्त्रिस्तक पाक्याका के पदाधिकारियों तथा अ्योतिषिया से भेंट ।

प्रातःकाल ६ से ७॥ बजे तक—बरबार (उपस्थान) में बैठना और वहाँ अपने सैनिक तथा विसीय परामर्शदाताओं से रिपटें सुनना ।

प्रातःकाल ७॥ से ९ बजे तक—बरबार (उपस्थान) में बैठना और वहाँ नगरबाना तथा ग्रामबानी जनता की समस्याओं पर विचार करना और उन्हें बिना किसी रोक-टोक के बरबार में जाने देना ।

प्रातःकाल ९ से १०॥ बजे तक—स्नान भोजन तथा धर्मग्रंथों का अध्ययन ।

१॥ से १२ बजे बापहर तक—पिछले दिन की बची हुई स्वर्णमुद्राएँ बसूरु करना (हिरण्यप्रतिग्रहं गतविषसोत्क्रियमन्तवीकारम्) ; विभागाध्यक्षों की समस्याओं पर विचार करना और उन्हें काम दीपना (अध्यक्षान् कूर्बोत कार्मविशेषेषु निमुञ्चति) ।

१२ बजे बापहर से १॥ बजे तक—मन्त्रि-परिषद् के साथ पत्र-व्यवहार गुणबटों के साथ बैठकर जामूखी की योजनाएँ बनाना ।

तीसरे पहर १॥ से ३ बजे तक—मन्त्रीरजन तथा विद्याम और अपनी नीति पर विचार करना ।

तीसरे पहर ३ से ४॥ बजे तक—भंगा अरब-सना हाथियों तथा अस्त्रायार का निरीक्षण ।

संध्याकाळ ५॥ से ६ बजे तक—सैनिक व्यक्ति के विषय में प्रश्नानुसंधान से परामर्श संध्याकाळीन प्रार्थना ।

संध्याकाळ ६ से ७॥ बजे तक—गुप्त दूतों से भेंट ।

रात्रि में ७॥ से ९ बजे तक—बुझाए स्वाम तथा भोजन और तदुपरान्त धार्मिक चिंतन ।

रात्रि में ९ से १०॥ बजे तक—संजीत सुनते हुए विधायक के लिए बैठना ।

रात्रि में १० से ११ बजे तक—निद्रा ।

रात्रि के लिए यही दिनचर्या निर्धारित की गई थी ।

एक प्रकार से पूरा राजा के लिए वह एक आदर्श था । उस अपनी दिनचर्या बदलने दिन और रात के विभाजनों को अपनी इच्छानुसार विभाजित करने और अपनी क्षमता के अनुसार अपने दूरियों को पूरा करने का पूर्ण अधिकार था ।

उपस्थान तथा अन्वेषण : उपर्युक्त दिनचर्या को देखने से पता चलता कि राजा ९ बजे रात्रि से प्रान्त-काक ५॥ बजे तक दार्शनिक काम से छुट्टी पाकर विधायक करता था । उसके बाद विविध प्रकार के प्रशासनिक कार्यों का दैनिक काम आरंभ हो जाता था । इनमें सबसे महत्त्वपूर्ण काम रोज दरबार में बैठना था जहाँ वह नागरिकों का प्रान्त-काक ६ बजे से तीन घंटे समय व्यतीत करता था स्वयं विचारों का निवेदन करता था । प्रत्येक व्यक्ति को किसी भी सवाल का निवेदन करने के लिए दरबार में दिया रोज-गार मान की इजाजत थी । यह बताया गया है कि जिस राजा ने राजा आगामी न गद्दी पहुँच सकती (बुद्धि) और जो अपना काम राज-नर्तकियों का गीत बना है वह न केवल अपने काम में मगनी पैदा करता है बल्कि जन-आश्रय में विज्ञान की भावना भी जन्म करता है । यह मान ध्यान में रखने योग्य है कि उपस्थान उक्त स्थान का बहुत बड़ा सारा राजा का दर्शन करने के लिए प्रतीक्षा करने है (उपस्थिति-संदर्भात्मक राजाजालम इति उपस्थानमुहन्) (अवस्थान के १२६ अध्याय का टीकाकार) ।

जिन कारणों पर राजा की स्वयं विचार करना चाहिए उनमें देवताओं संस्था निर्माण विभिन्न विचारों का विज्ञान आश्रय (धीमे) पपुजा पवित्र स्थानों नागरिकों बुद्धिमानों को अपना निजी बुद्धिमान के कारण अक्षय हो जाने का सोचा जाता था तथा विचारों की समस्या का उद्घेन दिया गया है । इन समस्याओं पर उसे इसी क्रम में या समस्या-विशेष के महत्त्व तथा गंभीरता की दृष्टि से विचार करना चाहिए । आन्तरिक में राजा के बारे में यह कहा गया है कि उन सभी सामान्य बातों की ओर गुरुत्व ध्यान देना चाहिए । (और इस नाम का बिना किसी विचार के जीवन निवेदन देना चाहिए ।)

यह भी कहा गया है कि जिन समय यह उपामना-युह (अम्भ्यागार) में रीठा हो उस समय उस अपन प्रधान पुराहित तथा राजगुरु के साथ मिलकर चिन्तितकरा तथा उपस्थितों से सम्बन्धित कामों पर विचार करना चाहिए।

अन-साधारण स मिथ्य समय राजा की मूर्खता के लिए कौटिल्य ने यह व्यवस्था बतलाई है [I, २१] कि राजा को अपरिचित लोगों साधुप्रा तथा उपस्थितों से उस समय तक नहीं मिलना चाहिए जब तक कि उसका विश्वस्त भगवत्पुत्र (आप्तभक्तप्राहाषिष्ठित) उसरी रक्षा के लिए मौजूद न हो। उन विन्नों के राजाओं के राजपुत्रों से भी उसी समय मिलना चाहिए जब पूरी मन्त्रि-परिषद् उपस्थित हो (मन्त्रिपरिषदा सम्प्रेतवृत्तम्)।

राज्य के लिए आवश्यक सुख : अतः में अर्थशास्त्र में राजा के लिए यह सारथ्य आदेश दिया गया है "निरंतर अपनी प्रजा के हित के लिए (उत्थानम्) काम करना ही राजा का व्रत है प्रथमन का काम (कार्यमुद्यत्तानम्) ही उनके लिए श्रेष्ठ धार्मिक कर्म है। सबके साथ समानता का व्यवहार करना ही उसका सर्वोच्च दान (वक्तिना) है।

"प्रजा के सुख में ही राजा का सुख है जो जोड़ उगे शक्तिर हा उनमें नहीं वक्ति प्रजा को मलाई में ही उसकी मलाई है। प्रजा के सुख में ही उसे अपना सुख लोभना चाहिए।

इस प्रकार अन-कस्याम का ही प्रथमन की सफलता का आधार बताया गया है (अर्थस्य सुखं उत्थानम्) [I, १९]। एक दूसरे प्रमग में [VI, १] कौटिल्य ने राजा के गण से बताया है कि उसमें उत्साह का वाग्व्य होना चाहिए और उस किमा काम में विश्रम्भ न करना चाहिए (महोत्सहो मदीर्घसूत्रः)। और कौटिल्य ने यह भी कहा है [XII, ११] जो राजा वैवर्ण्यी (वैद्यप्रमाणः) होगा जिसमें व्यक्ति का अनाव होगा (मानुष्यहीन) या जिसमें पदस करने की शक्ति न होमी (निर्धारः) वह संकट में फँस जाएगा।"

कौटिल्य की इन वनावर्णिया की प्रतिष्ठाति अमान के छठे शिक्षात्मक में मिलती है "कारण कि कोई प्रमाण करने (उत्थानम्) या किसी कार्य को पूरा करने (अर्थस्योत्थानम्) में ही मृग कई मतोप नहीं मिलता। वास्तव में सबक कस्याम (सर्व-सोक-हितम्) के लिए सपष्ट रहना ही मेरा परम कर्तव्य है। परन्तु उसका भी तो मूर्ख नहीं हो जानें है प्रयास (उत्थानम्) और कार्य-मृति। सोक-कस्याम के लिए प्रयत्नशील रहन में बढ़कर कोई दूसरा काम नहीं है।

अधोक्त की विनचर्या यह बात ध्यान देने योग्य है कि अधोक्त की विनचर्या भी कौटिल्य द्वारा विचारित विनचर्या के ही अनुकूल थी। अपने छठे शिक्षात्मक में अधोक्त ने कहा है कि "चाह भोजन करते समय या अपने मनवास में (ओरो-

घर्षहि) या राज प्रमाह के पीतरी बर्षों म (गभापारहि), या पशुपाला में (बर्षहि) या बर्षोंपरेष मुक्त समय (बिलोतहि) या उद्याम म (उपातेतु) हर समय और हर जगह वह सांस्कृतिक कार्य क लिए सदैव तत्पर रहता है बाह वह शासन-सम्बन्धी कोई कार्य हो (धर्म-कर्म) या किसी को कोई रिपोर्ट देना हो (प्रतिवेदनम्)।

मेगास्थनीज की शाली : इस विषय में मेगास्थनीज ने जो कुछ लिखा है उसने पता चलता है कि राजाशा क लिए निर्धारित यह दिनचर्या केवल एक जाहान परामर्श-यात्र नहीं बा। मेगास्थनीज ने स्वय अपनी बीसा से देखा बा कि मघाद् बर्षाद् बर्षयुक्त क्रितना व्यस्त रहता बा और दिन प्रकार वह हर समय सांस्कृतिक काम से फेला रहता बा। मेगास्थनीज ने लिखा है 'राजा दिन म नहीं मत्ता। केवल पुड के समय ही नहीं। अधिक बिबादों का फैसला करने के लिए भी वह राज-यात्रा से निकलता है। ऐम अवसर पर अत दिन भर का (मत्ता) म रहता है और हम काम म कोई बिज नहीं पढ़ने देना चाहे हम बीच में उस अपनी वैयक्तिक आवश्यकताओं की धार ध्यान देने का ही समय क्यों न आ जाय' [मैकड्रिडल ऐंसेड इंडिया, पृष्ठ ५८]। कटिबम ने भी लिखा है [VIII, ९] 'राज प्रमाह में कोई भी आ-जा सकता है चाहे राजा उस समय अपने बाक लेखन और अन्य पढ़ने में ही क्या न व्यस्त हो। उसी समय वह राजदूतों म साक्षात्कार करता है और अपनी प्रजा का स्वाय करता है। [उपरोक्त]

हम देखने है कि यूनानियों की बीसा-देवी शाली म कोटिम्प क कबल को रिमनी पुत्रि हुई। वाता ही से हम पता चलता है कि प्रजा की हर समय राजा तक पहुँच का जीव उत्क नाम का अपिवाय बिबादों को निबटना बा। मेगास्थनीज ने त्रिम कार्य (मत्ता) कहा है उस कोटिम्प म उपम्बाल तथा ब्रध्या गाव कहा है। मेगास्थनीज ने तो राजा के स्वाय करने या बिबाद का फैसला करने का ही उल्लेख किया है पर कोटिम्प ने राजा क प्रशासनिक कार्य का उल्लेख अधिक व्यापक अर्थ म किया है त्रिमम प्रजा के आवेदनों पर निम्न देना भा शामिल है। कोटिम्प की बनाई दिनचर्या म यह भी ध्यान है कि बिबादों का फैसला करना म कहा सामाजी से कुछ यह समय भी चला जाता हागा बा राजा के स्वाय तथा भाजन के लिए रखा गया बा जगा कि यूनानी काल ने लिखा है। कदाकि हम दिनचर्या से यह पता चलता है कि राजा प्रातः ९ से १० पर तक उपम्बाल म है हर सांस्कृतिक काम निबटना या त्रिमके बाद स्वाय का समय जाता बा। यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि कोटिम्प की योजना क अनुसार राजा भाजन से बा ११:०० तक १। यह से तीन पर तक अन्य प्रजा-

करजन्मात्माकारणम् वास्यः कर्तुः)। कौटिल्य के कथनानुसार राजा ने यहाँ उसकी सेवा-टहल करन के लिए नियमित रूप से कुछ गणिकाएँ नियुक्त करनी भी भिन्न-हीन धेनियाँ होती थीं। इनमें सबसे मिथ्य धेणी की गणिकारण राजा का छन तथा साने का बछा (छत्राभार) लकर चलती थी दूसरी धेना की गणिकाएँ पंचा भलती थी और तिस समय राजा पाककी में बैठता था उस समय उसकी सेवा करने के लिए उपस्थित रहती थी (व्यवन-धिविका); और सबसे उच्च धेणी की गणिकाएँ उस समय उसकी सेवा करती थी जब वह सिहा सन पर या रन पर बैठ होता था (वीरिका-रथेषु)। तिनकी उमर उसने म्गनी थी वे राज-प्रासाद के भंडार (कोष्ठाभार) में या रसो (महानसे) में काम करने के लिए भेज दी जाती थी [II २७]। २४ • पण की रकम बना करके (मिथिय) कोई भी गणिका दूमर प्रसार या जीवन व्यतीत करने के लिए मुक्ति प्राप्त कर सकती थी (उपरोक्त)। राजा के सम्मुख मानने-माने के लिए आठ वर्ष से अधिक आयु की लड़कियाँ नियुक्त की जाती थी (अष्टवर्षात् प्रमुति राजः कुलीनश्च कर्म कुर्यात्) (उपरोक्त)। इस प्रसंग में हम मगा स्वनीच का यह वक्तव्य भी उद्धृत कर दें [अं XXVII] कि “जो स्त्रियाँ राजा की निजी सेवा करती थी उन्हें उनके माता-पिता से खरीदा जाता था।

यह बात भी उल्लेखनीय है कि अगहन में मृतिरक्षा की इतियाँ (सगभन ईसा-पूर्व दूसरी शताब्दी की) में एक जुलूम का निबध किया गया है जिसमें एक स्त्री सजे हुए घोड़े पर सवार है और हाथ में गरुडध्वज धिये हुए है [ए माइड II स्कन्धस इति इंडियन म्युजियम I २४]।

आखेट : यूनानी लेखकों के अनुसार राजा तीन अवसरों पर राज प्रासाद से बाहर जाता है और जन-साधारण के बीच घूमता-फिरता है। “एक तो विवाशों को सुनवाई करने जिसमें वह शारा तिस व्यस्त रहता था जैसा कि हम ऊपर बता आए हैं। दूसरे, जब वह शिकारी स्त्रिया से घिरा हुआ शिकार खेळने निकलता था जैसा कि ऊपर बधन किया जा चुका है। “रसियाँ खानकर माग की सीमाएँ निर्धारित कर दी जाती हैं और जो भी इन सीमाओं को पार कर स्त्रियों के बीच जाता वह खौरन गीत न पाट उतार दिया जाता। दोस पीटते हुए और पंटे बनाते हुए कुछ सोन जाये-जागे चलते हैं। आखेट-क्षेत्र में पहुँचकर राजा एक ऊँचे स्थान से बैठकर बाध बछाता है, और बा या तीन ससस्त्र स्त्रियाँ उसका पाछ बड़ी रहती हैं। जब वह किसी ऐसे स्थान में शिकार खेलने जाता है, जो चारों ओर से घिरा हुआ न हो ता वह हाथी पर बैठकर निधाना साधता है।

यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि कौटिल्य ने राजा के बिहार बसवा भीड़ा के लिए मलग एक ऐसा जन हाने की बात लिपी है [II, २] तिनमें





का त्याग कर बिभु बन गया राजाशा का फोडा कं लय म आग्य की अनुमति थी ।

दीह उस समय में भाग्य क बाद राजाओं की सर्वप्रिय कीड़ा दीह थी । ब्रह्मगुप्त के समय में एक नाम मम्म क बीच हुआ य "जो पाड़ा के बराबर तब माग शरद थे । इस प्रमाण क वा बीमो बीर उनक बीच में एक बोड़े को एक माड़ी में जल दिया जाता था । दीह समयम पीम वा मीम की हन्ती की और राजा तथा समने सामन इन दीड़ा म मने और पाड़ी का मम्मा जुमा कम्मे ब । कीटिय ने भी ऐसे बीगों का उल्लेख किया है जो पाड़ा क बराबर सेइ हो सकत थे (अलीचर्चाया बस्माद्वयमद्वयपतिवाहिनी) [ II २० ] ।

पशुओं की सड़ाई : राजाओं की अन्य कोशाआ म गङ्गिबन ने तो इसका भी उल्लेख किया है कि उस समय म त्याग तीर पर कछ कावों को पाला जाता था कि उनका पशुओं का भीति सड़ाया जाय । परन्तु उदाहरण सड़ाइया 'गुंगार सांगदार जानवरो के बीच' सड़ाई जाती थी "जा एक दुमरे को सीता से मार्ग से जैसे बनकी बीर पासतु दुम्ब और पीडे । हाथियों की भी सड़ाइया करी जाती थी । दीह-निकास में इस प्रकार की कीड़ा वा 'उमाव' कहा गया है और उद्यकी निहा की गई है और "हाथियों पाड़ी जेसो बीमा बचरा तथा दुम्बा" जैम पशुओं और "मुषी तथा बटेरा जैस पक्षिवा की सड़ाइयो का वर्णन किया गया है ।

राजा की सवारी तीसरा अवसर जब राजा जन-साधारण के बीच जाता था वह किसी धार्मिक समारोह या किसी धार्मिक यज्ञ का अवसर होता था । जैसा कि कहा जा न कहा है [ XV १ ६ ] इन समारोहों के अवसर पर राजा की सवारी में छान और चोरी के जानूषणों म गृहस्थित कई हाथी चार घोड़ों वाले रथ और बीमा की ओड़ियाँ बलती थी । उसके बाद बहुत से नीकर-बाकर अपने सबम अच्छ बस्त्र पहनकर पत्ता बैरुय सास जादि रमां में अटित सोने के सुरापान और मुचहियां छ-छ पूर चौड़ी मेवें राजसिंहासन छोड़े के बड़े-बड़े छल्ले तथा पराते छरी-कमरबाब आदि के वस्त्र ग्रीस पीते पास्तु खेर आदि वग्य पशु और नामा रंगा की सुरीली बिड़ियां लेकर पकते थे । स्के टाकोस ने "चार-यहियों वाली ऐंगी गाड़ियों" का उल्लेख किया है "जिन पर बड़े पत्ते वाले पड़ लड़े हुए थे जिन पर नानाप्रकार की पास्तु बिड़ियां पिचरों में लटकी खूटी थीं जिनमें उसने क्रियान पत्ती का सबसे सुरीला बसाया है उसने कटेक नामक एक दूसरे पत्ती वा उल्लेख किया है जो वेगम में सबसे सुन्दर होता था और जिसके पर ननक रंगों के होते थे ।"

राज-बरबार का बीमब : कीटियस म ब्रह्मगुप्त मीय के धामननाम म भारतीय

राज-रबार के बीच का उल्लास इन राखी में किया था "जब राजा जन-साधारण के बीच घात देने की रूपा करता है तो उसके नीकर चाकर राज में चोरी की घुपराभियाँ स्रुकर चलते हैं और जिस मान से राजा की चकारी निक-रती थी उस पूरे मार्ग का बूपाहि स मुगबिध करते थे। राजा रत्न-जामूपगो से मुगजिबन हाँकर मोर साँस रन के तथा माने के तार के बस-बूटा से बड़े हुए बड़िया मलयस के बरत पहनकर मान की पासकी में बैठता था। पाएकी के पीछे सचासन सैनिक और उनक अगस्तक चलन से जिनमे कुछ अपने हाथों में पड़ी की डाल भिन्न रहते थे जिन पर सघाये हुए पछी बैठ छत से जो बीच-बीच में अपनी आलिया से इस कायकर्म का मन करने रहते थे।

बुद्धार्थ : इन्द्राक्ष के कथनानुसार जब अपने जगम विवस पर राजा अपने मान घाता था तो राज-रबार में बन्ध ममाराह मनाया जाता था। सोम राजा का बहुमूल्य उपहार भजने थे और प्रत्येक व्यक्ति अपनी धन-सम्पदा के प्रदर्शन में अपने पत्नियों से हाड़ करता था' [XV L १९] राजा "पशुभ्रा के उपहार, जिनमे हिरन वारहमिने या गीड़ आदि जगमी आलवर भी शामिल थे या सारस इस वस्तु के पुनर आदि चिन्पिया के उपहार" सबसे अधिक पसंद करता था। मारगबामी अपने राजा को पासपू घर पाछू भीते हुतमामी बैस या पाठ पीले रंग के कवतर निचारी वन और बहर आदि साँकर उपहार में इन थे (एन्ड्रियस पृष्ठ १४४ मैट्रिजिजि इत ऐंसेंट इंडिया)।

हाबियों की सलाही : हमें इस बात का भी उल्लेख मिलता है कि राजा को श्रीरंग हाथी मनामी बैठ थे। सबसे पहले हाथी का इन तरह सभाया जाता था कि जब राजा ग्याम करन जाता था तो वह उसका अधिचारन करता था। जैसा ही राजा निकलता था वह हाथी महावत के अक्षर का चपट पाते ही उसे सैनिक सलानी देता था (मेगास्थनीज अध २५)।

यात्राएँ : राजा की यात्राओं के बारे में यह उल्लेख मिलता है कि "जब उसे कोई जग यात्रा करनी होती थी तो वह बा" पर सवार हुकर जाता था परन्तु जब उस बड़ी दूर जाता होता था तो वह हाथियों पर हीरा बमबाकर उसमें बैठता था और यद्यपि ये हाथी बहुत विज्ञासपाय होते थे पर उनक पूरे घरीर बर साने की क्षमता नहीं रहती थी। (अथयुक्त)

हमें इस बात का भी उल्लेख मिलता है कि इन यात्राओं के दौरान में राजा मत्ता मोजन स्त्रिया से परभाता था [इन्द्राक्ष VIII ९]।

कोटिस के कथनानुसार, जब कभी राजा पूरी सैनिक शास्त्र-संग्रहा के साथ प्रमृत्त की गई गया था निर्दिष्ट करन जाता था तो वह स्वयं भी पूरी सैनिक सेवना में था" एवं या हाथी पर सवार होकर जाता था।

यात्रा के समय चाह वह यात्रा पर जा रहा हो या यात्रा से लौट रहा हो (निर्याची अभियाने च) मार्ग के दोनों ओर (उभयतः) काठाबंद पुलिस (बहिर्भिः) राहों रहती थी जो मार्ग पर किसी भी सगस्य व्यक्ति (अपास्तप्रवृत्त) यात्रा या अर्पण व्यक्ति का नहीं जान देती थी। राजा भीड़ में नहीं घुसता था (न पुण्यतन्मापनवपाहेत्) (अपमृशत)।

कौटिल्य ने लिखा है कि राजा समारोहों के अवसर पर निकलने वाले जुमूसों (यात्राओं) समवेत जन-समुदायों (समाज) बननोत्पन्न जैसे उत्पन्न और उद्यान भोजन आदि को देखने भी निकलना था पर केवल उनी दया में जब वहाँ उसको सुरक्षा के लिए सैनिका (व्यवस्थापिका) की उचित व्यवस्था हो (अपमृशत)।

सुरक्षा की व्यवस्था : कौटिल्य ने यात्रा के समय राजा की सुरक्षा के लिए हर समय उपाय का आयोजन रखा है। कौटिल्य ने कहा है कि राजा उस समय तक स्थिरी रह या छोड़े या हावी पर (पालकान्तेन) सवार नहीं होगा जब तक उसका निरवलम्ब अधिकारी इनके विप्लवसर्गीय होने का प्रमाणरूप न दे दे। वह जात्र पर भी उही समय बजना जब कोई विस्वस्त सम्पत्ति उस पर रहा हो और उसके साथ एक कुसरी नाव धँसो हुई हो। परन्तु वह किसी भी जगह में किसी नाव पर नहीं बैठेगा जिसे कभी भी आँबी आदि न बाधन (बाधवैमर्शा) ऐसी शक्ति पहुँचो हो कि वह जल में चमके यात्रा न रह गई हो। (अपमृशत)

राज-प्रासाद : जब हम साम्राज्य की राजधानी पाण्डिपुत्र में स्थित राज-प्रासाद के बीमन का बयान करते हैं। एरस्तियस के मतानुसार, मेगस्थनीस राजा के मूला नामक नगर का सम्पूर्ण बीमन और एकबागन की सारी सम्पत्ति भी इसका मुकाबला नहीं कर सकती थी।

“राज-प्रासाद की सोमा बहाने के लिए हर ओर सुनहरे स्तंभ हैं जिन पर चारों ओर सोन की अमूर की बेलें उमरी हुई बनायी गई हैं। इन कक्षात्मकता में वैविध्य उत्पन्न करने के लिए जगह जगह उन चित्रितों की चोरी की मूर्तियाँ कनी हैं जिन्हें दखते ही भित्त प्रसन्न हो उठता है।”

राज-प्रासाद एक विस्तृत उद्यान में स्थित था। उसने लिखा है कि उसमें अत्यन्त “पाकनु मार और जीवक पत्ती हैं। छायादार कुंड और बूखों के एक झरमुट हैं जिनकी टांगें उद्यान-कक्षा की किसी जगह विभिन्न एक-दूसरे में उठती रहती हैं। ये बूख सबैक हरे-परे रहते हैं, न कभी सूखते नहीं और उनकी पत्तियाँ कभी नहीं झड़ती। इनमें से कुछ बूख दूरी देश के हैं और कुछ विदेशों से बड़ी सावधानी से लाये गए हैं। ये सब बूख राज-प्रासाद की सोमा बहाने हैं। वहाँ पत्ती स्वच्छन्द तथा उन्मुक्त हैं। ये अपनी दृष्टि से वहाँ आते हैं और इन

राज-परिवार के बीच का उत्सव इन राशियों में किया था "जब राजा जन-साधारण के बीच रहने का की हुपा करता है या उसके पीछे जाकर साथ में बीस की घुमनियों सबर करता है और जिस मास में राजा की सवारी निकलती थी उस पूरे मास का कुपावि स सुगमिष्ठ करते थे । राजा रत्न-आभूषणों से सुसज्जित होकर और आस-सुख के साथ सने के तार के बेल-बुटा से बने हुए बड़िया मलमल के बस्त्र पहनकर सने की पालकी में बैठता था । पालकी के पीछे सशस्त्र सैनिक और उसके अगल-पछल में जिनमें कुछ अपने हाथों में पेड़ों की डाल भिन्न रहने थे जिन पर सवाये हुए पत्ती बँधे रहते थे जो बीच-बीच में अपनी आसिया से इस कार्यक्रम का भव करते रहने थे ।

बुद्धावर्त : कदाचि के बचनानुसार जब अपने जन्म-दिवस पर राजा अपने जात पाता था तो राज-परिवार में बड़ा मजराह मनाया जाता था आग राजा को 'महामृत्यु उपहार लेने के और श्रेष्ठ व्यक्ति अपनी जन-समुदाय के प्रवर्धन में अपने पालकियों सहित करना था' [XV I १९] राजा पशुओं के उपहार, जिनमें हिरण, बारहसिंगे या गैंडे आदि जंगली जानवर भी शामिल थे या सारा हंस, बत्तख, कबूतर आदि चिड़ियों के उपहार" सबसे अधिक पसंद करता था । भारतवर्षी अपने राजा को पालतू पशु, पालतू पीठे, हुतमानी बैल या याद पीले रंग के कज्जर निकारी बने और बर आदि लाकर उपहार में देते थे (एशियाटिक पृष्ठ १४४ मौर्यकालिक हंस ऐंसेट इंडिया) ।

हाथियों की सलामी हम इस बात का भी उत्सव मिलता है कि राजा को शौर्यम हाथी सलामी देते थे । सबसे पहला हाथी का इस तरह सवाया जाता था कि जब राजा ग्याय करने जाता था तो वह उसका अभिवादन करता था । जैसे ही राजा निकलता था वह हाथी महाभय के अकल का सकेत पाते ही उसे सैनिक सलामा देता था (मसाम्बनीय अध २५) ।

यथाए राजा की यात्राओं के बार में यह उत्सव मिलता है कि "जब उसे कोई सारी यात्रा करनी होती थी तो वह यात्रा पर सवार होकर जाता था परन्तु जब उस बड़ी दूर जाता यात्रा का तो वह हाथियों पर हीरा कमराकर उसमें बैठता था और यद्यपि वे हाथी बहुत शितालकाय हाथ से पर उनके पूरे घीरे पर सने की दूने पड़ा रहती थी । (उपसृक्त)

जैसे इस बात का भी उत्सव मिलता है कि इन यात्राओं के दौरान में राजा बान्ना भोजन किया था परजाता था [ग्यारो VIII ९] ।

कौटिल्य के बचनानुसार, जब सभी राजा पूरी सैनिक शक्ति-संग्रह के साथ प्रस्तुत की गई गंगा का निर्वाण करने जाता था तो वह स्वयं भी पूरी सैनिक सैद्यमता में यात्रा रख या हाथी पर सवार होकर जाता था ।

यात्रा के समय जाहे वह यात्रा पर जा रहा हो या यात्रा से लौट रहा हो (निर्वाचो अभियाने च) मार्ग के दोनों ओर (पञ्चपत्त) साठोबंद पुलिस (इन्डिभि) खड़ी रहती थी जो मार्ग पर किसी भी शरास्त्र व्यक्ति (अपास्तशस्त्रहस्त) साथ या अर्पण व्यक्ति को नहीं माने देती थी। राजा भीड़ में नहीं घुसता था (न पुण्यसम्भाजमवगाहेत्) (उपर्युक्त)।

कौटिल्य ने लिखा है कि राजा समारोहों में भवसर पर निकलने वाले चुन्नों (यात्राओं) समवेत जन-समुदायों (समाज) बसंतोत्सव-जैस उत्सवा और उद्यान भ्रमों आदि को देखन भी निकलता था पर केवल उसी दशा में जब वहाँ उसकी सुरक्षा के लिए सैनिकों (राक्षसिका) की उचित व्यवस्था हो (उपर्युक्त)।

सुरक्षा की व्यवस्था कौटिल्य ने यात्रा के समय राजा की सुरक्षा के लिए हर संभव उपाय का आयोगन रखा है। कौटिल्य ने कहा है कि राजा उस समय तक किसी रथ या घोड़े या हाथी पर (यात्रावाहन) सवार नहीं होया जब तक उसके विश्वस्त अधिकारी इनके विपुलसनीय होने का प्रमाणपत्र न दे दे। वह जात्र पर भी उसी समय बढ़ेगा जब कोई विश्वस्त मन्त्राह उस से रहा हो और उसके साथ एक दूसरी नाव बैठी हुई हो। परन्तु वह किसी भी दशा में ऐसी किसी नाव पर नहीं बैठेगा जिसे कभी भी भीषी आदि न कारण (वातवेगवत्) ऐसी क्षति पहुँची हो कि वह जल में चकन योग्य न रह गई हो। (उपर्युक्त)

राज-प्रासाद जब हम साम्राज्य की राजधानी पाटलिपुत्र में स्थित राज प्रासाद के दैनिक का वर्णन करते। ऐश्वर्य्य के मतानुसार 'मेमनोन राजाओं के सूत्रा नामक मय का सम्पूर्ण दैनिक और एकत्रात्रन की सारी मयता' भी इसका मुकाबला नहीं कर सकती थी।

"राज प्रासाद की सोभा बढ़ाने के लिए हर ओर घुनहरे स्थल हैं जिन पर पारों ओर सोने की खंभूर की बेलें उमरी हुई बनायी गई हैं इस कलात्मकता में वैविध्य उत्पन्न करने के लिए जगह-जगह उन चित्रियों की चाँदी की मूर्तियाँ रखी हैं जिन्हें देखते ही चित्त प्रसन्न हो उठता है।

राज प्रासाद एक विस्तृत उद्यान में स्थित था। उसने लिखा है कि उसमें अर्धवृत्त "पादु मीर और बीचक पत्ती हैं। जग्याहार कृत्र और वृत्तों के ऐसे शुरुमुट हैं, जिनको बाले उद्यान-कला की किसी जगह बिधि से एक-दूसरे में उलझी रहती हैं ये कुछ सदैव हरे-मरे रहते हैं, न कभी सूखते पत्ती और उनकी पतियाँ कभी नहीं झड़तीं। इनमें से कुछ बूझ इसी देख के हैं और कुछ बिबेसों से बड़ी सावधानी से छाये गए हैं। ये सब कुछ राज प्रासाद की सोभा बढ़ाते हैं। यहाँ पत्ती स्वच्छन्द तथा उन्मुक्त हैं। वे अपनी इच्छा से वहाँ आत हैं और इन

भी पर अपने धाम बसाते हैं। इनमें राजा प्रकार के पत्नी होने पर तब बड़ी विभक्त्य में रहे गए हैं और वे बड़े बड़े राजा के पत्नी और मन्त्रियों हैं। इस राज-विभाग में अनेक विभिन्न विभाग बसाये हैं जिनमें बहुत बड़ी-बड़ी मण्डलियाँ रखी जाती हैं पर वे किसी प्रकार हाजि नहीं पहुँचती। अनेक साम्राज्य में राज-कार्य के अतिरिक्त किसी का इन मण्डलों का विचार करने की इजाजत नहीं होती। ये बालक इन मण्डलों के पास जब वे मण्डलों पर जाने का आनन्द लेते हैं तब अनेक नामें बलाया सीपट हैं और उन्हें इनके का भी कोई ध्यान नहीं रहता।

राज-शासन के नीति : राज-शासन के बाहरी भाग तथा उसके अन्तर्गत का वर्तमान धनानी लेखाओं में उपर्युक्त मण्डल में दिया है। राज-शासन के नीतिगत भाग की विस्तृत जानकारी हमें कौटिल्य से प्राप्त होती है [I २० २१]। राज-शासन की मण्डल के लिए उपर्युक्त भाग और बाहरी और एक गरीब होती थी (साम्राज्य-नीति)। राज-शासन के निम्ने भाग में विभाग के निवास-कर्म होते थे जिनके साथ प्रमथका में उपर्युक्त विभागों के मन्त्र भी होते थे। इन कर्मों के बाहर राज-कार्य तथा राज-कार्य के निवास-कर्म हुए थे। इनके नामने गृह्य-रथ (अन्तर्गत-मण्डल) परमम-अन्त (अन्तर्गत) राज-कार्य (अन्तर्गत) और गृह्य-रथ (कुमार) तथा विभिन्न विभागों के अध्यक्षा के प्राग-मन-राज्य (अध्यक्षा-मण्डल) होने थे। इन कर्मों के बीच में वे प्राचीन स्वान-राजा का उनका धन-मन्त्र की रक्षा करने वाले सैनिक (अन्तर्गत-मण्डल) सैनिक हुए थे। राज-कार्य की एक विभक्त गन्ध (अध्यक्षा-मण्डल) जिसमें ८० पुत्र तथा ५० विभक्त (या ८ वर्ष के बड़े पुत्र तथा ५० वर्ष की बड़े विभक्त) होती थी। इनमें से सैनिक-अध्यक्ष के पास पर बृद्धि करने की (उपर्युक्त)।

राजा के अपने के कर्मों अन्तर्गत हुए थे। प्राग-मन-मन्त्र राजा और राजा और राजा का प्राग-मन-मण्डल (अन्तर्गत-मण्डल) का उनका अध्यक्षा के लिए नियुक्त होती थी। उनका धन-मन्त्र की। दूसरे कर्म में अन्तर्गत तथा पत्नी पत्नी के होते हुए निम्ने के अन्तर्गत अन्तर्गत तथा अन्तर्गत मन्त्र उनका स्वागत करते थे। नीचे के भाग में कोरा अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत अन्तर्गत की एक मन्त्र की अन्तर्गत मन्त्र होती थी। राजा के निवास-कर्म के मन्त्र बाहरी भाग की निवास-कर्म जिसमें वे राज-शासन के बाहरी भाग में राजा का राजा राजा का परमम-मन्त्र (अध्यक्षा-मण्डल) अन्तर्गत (अन्तर्गत) राजा के मन्त्रों तथा अन्तर्गत के अन्तर्गत होती थी।

नीति-शासन : राज-शासन के नीति-शासन में वे भाग होते थे (१) बृद्ध (२) उपर्युक्त ( ) अन्तर्गत (४) अन्तर्गत (५) अन्तर्गत

(६) संवाहक, (७) आस्तरक (८) रजक (९) मासाकार बीर, (१०) माहात्मिक । संवाहकों के सम्बन्ध में स्थायी ने कहा है कि राजा का "अपने घरीर को स्फूर्तिमय रखने का सबसे प्रिय तरीका विभिन्न प्रकार से घरीर की मात्सिज बगाना था जिसमें घरीर पर कुत्तार की लकड़ी के बिनने बेहम फिरवाना उसे विशेष रूप में पसन्द था ।

इनके अतिरिक्त बीर कुछ गीकर चाकरी का भी उत्सेह किया गया है । [ I १२ ] जैसे सुब बीर आरात्मिक विभिन्न प्रकार के व्यंजन तथा पेय पदार्थ बनाने वाले रमाइये पानी देने के लिए जल-परिवारक इनके अतिरिक्त भी राजा के अन्य कई निजी सेवक भी होते थे जैसे (१) कुम्ह (कुम्हे) (२) बामन (बौने) (३) किरात (नाग के अस्पननु) (४) मूक (मूँके) (५) बधिर (बहुर) (६) बड़ (मूर्ख) (७) बंध (बंध) । इस प्रकार सार्वजनिक किरातों का भी राजा की सेवा के लिए खान चढ़ाया जाता था ।

राजा की निजी आवश्यकता की चीजों जैसे छत्र कलश (मृगार) चंदर (व्यंजन) जूते (पादुका) आसन गाड़ी (यान) बीर बाड़े (बाहन) की देखभाल करने के लिए भी अनेक गीकर चाकर होते थे । जैसा कि पहले बताया था चुका है इनमें से कुछ स्त्रियाँ भी होती थीं ।

अन्त में राजा का मनोरंजन करने के लिए भी कुछ विषय मौज होते थे जिनकी सूची कौटिल्य ने यह बताई है नट-नर्तक-गायक-वाद्यक-बाल्योदित-कुशीलव [ I १२ ] ।

कौटिल्य ने बताया है [ I २१ ] कि राजा के निजी सेवक (आश्रय कर्मचारी) अपने ही देश के लोग हो सकते हैं उनमें कोई विदेशी नहीं हो सकता इन सेवकों के लिए ऐसे ही कामों को रखा जाना चाहिए, जो ऐसे विभक्त परिवारों के हों जो कई पुष्टों से राज-परिवार की सेवा करते आए हों और जिनकी स्वामिमक्ति तथा कर्म-असक्तता में किसी प्रकार का संदेह न हो । वे ऐसे लोग होने चाहिए, जिनमें किसी भी प्रकार का भय न हो और जो किसी भी दबाव में आकर विस्वाम्भवात् न कर सकते हों [ I २० ] ।

राजा की सुरक्षा की समुचित व्यवस्था राज-प्रासाद राजा की सुरक्षा के समुचित प्रबन्ध की दृष्टि में रखकर बनाया गया था । उसमें अनेक मूक-मुसैदों गुप्त रास्त तथा सुरंगों खोजकर स्वयं बीर-धीने खटका दबाव से सरक जाने वाले फर्ष होते थे । उसमें बाण विपक्षी भीष-जंगुधों तथा जहूर देने वाली से राजा को सुरक्षित रखने की भी विविध व्यवस्थाएँ रहती थी । उसमें होते इसलिये रते जाते थे कि वे छाप को देखते ही तुरंत पीछेकर सकट की सूचना देते थे ।



अन्य कई प्रकार के पक्षी भी ऐसे जाते थे जिन पर विप के देखने मात्र से विविध प्रकार की प्रतिक्रियाएँ होती थीं [I २०] ।

विप से रक्षा के उपाय : पाकशाला एक गुप्त स्थान में बनाई जाती है और उस पर कड़ा पहरा रहता है । राजा को नोजन देने से पहले कई काम उसे बताने होते हैं । यदि नोजन में कोई विप पाया जाता है या बचने वालों के व्यवहार से यदि विप का किसी भी प्रकार का सबूत होता है तो उसकी छानबीन की जाती है । इसी प्रकार राजा को जो भीषणियाँ दी जाती हैं उनकी भी परीक्षा की जाती है । जो मोंकर राजा को बस्त्र पहनाते हैं तथा उसका शृंगार करते हैं उन्हें नहाकर तथा कुछे दूध कपड़े पहनकर आना पड़ता है फिर उनको एक विशेष अवरक्त शृंगार के मुखर प्रसाधन देता है इसके बाद ही राजा के खटीर पर इन प्रसाधनों का प्रयोग किया जा सकता है । राजा को बासियाँ उसक बस्त्र-जामूयों का पहले निरीक्षण कर लेनी हैं । खेप बादि पहले उन लोगों पर समाकर आबसा लिए जाते हैं जो इन चीजों को राजा के लगाते हैं । जो लोग राजा के सम्मुख कोई उमाड़ा या करतब दिखाते हैं वे किसी ऐसी वस्तु का प्रयोग नहीं कर सकते जिससे आम रूपने या विप बादि का कोई खराब हो और वे किसी हथियार का प्रयोग नहीं कर सकते । गर्वों को राजा के सम्मुख जाते समय जल्दी बाधों का प्रयोग करना पड़ता था जो राजा प्रासाद में रखे जान थे और इस प्रकार विप से सचचा मुक्त रहते थे । इसी प्रकार राजा की सचारी के बोझों रथों तथा हाथियों की सज-सज्जा भी राजा प्रामाण्य से ही दी जाती थी । राजा के समीप चिकित्सकों तथा विप-विज्ञान के विशेषज्ञों (बावलीविह) का हर समय उपस्थित रहना आवश्यक था । [I २१] ।

राजसभाओं के प्रति व्यवहार : राजा की वैयक्तिक सुरक्षा के प्रसंग में जिस विषय की और अर्चशास्त्र में विशेष रूप से ध्यान दिया गया है राजा के वयस्क पुत्रों की समस्या पर भी विचार किया गया है जिसे एक उम्पू० टामस में अत्यंत उचित शब्दों में "बनेक विवाह करने वाले राजाओं की समस्या" कहा है । उसमें स्पष्ट रूप से इस बात को स्वीकार किया गया है कि "राजपुत्र कैदों की भाँति अपने ही माता-पिता को नष्ट जाते हैं" (कर्कटतपर्मों की हिं बन्कभलाय राजपुत्रः) [I १६] । प्रसन्न यह है कि उन्हें राजा के पाय ही रहना चाहिए या उनमें दूर रहना चाहिए ? यदि उन्हें दूर रखा जाए तो क्या उन्हें नजरबंद रखा जाए (एकरपालाबरोक) या किसी नीमांत दुर्ग में रखा जाए (अन्तपालाबुर्ग) या किसी दूसरे राजा के दुर्ग में (सामंतदुर्ग) ? परन्तु यदि राजपुत्रों को किसी दूसरे राजा के दुर्ग में रखा गया तो वह बिदेसी राजा

उत्तराधिकार के विषय पर परिस्थिति का काम उठाएगा और जिस प्रकार बछड़े की सहायता से गाय को बुरा किया जाता है, उसी प्रकार वह विदेशी राजा इस राजा को बुरा भेदा (बल्लेनेव हि बेनु पितरजस्य सामंतो ब्रुम्यात्) । अन्तिम उपाय यह है कि इन राजपूतों को सबसे अल्प किसी गाँव में उनके निवासियों के पास रख दिया जाए । कुछ भी हो उन पर कड़ो नजर रखी जानी चाहिए और यदि आवश्यक हो तो उन पर घुसघर लगा दिये जाएँ, जो उनकी गतिविधियों को सूचनाएँ देते रहें । यदि राजा के कई पुत्र हों तो उनमें से एक को मौमत्त प्रदेश में या ऐसे दूसरे राज्य में भेज दिया जाना चाहिए (अस्थानं जग्यविषयं वा प्रेषयेत्) जहाँ राज्य का कोई उत्तराधिकारी न हो और न जाने बल्लकर होने की चोई जाया हो (ताकि उन्हें वह राजा गोद के के और वे राज्य के उत्तराधिकारी नम सकें) । जो पुत्र सबसे मोक्ष्य हो उसे प्रधान सेनापति या युवराज बनाया जाना चाहिए ।

**उत्तराधिकार :** नियम तो यही था कि सबसे बड़े पुत्र को राज्य का उत्तराधिकारी बनाया जाए (ऐश्वर्यं ज्येष्ठजाती) । परन्तु कौटिल्य ने इस बात पर जोर दिया है कि यदि राजा के केवल एक ही पुत्र ही और वह सिला विनय तथा चरित्र से समझा जाता हो तो उसे भी राज्य का उत्तराधिकारी नहीं बनाना चाहिए (न चैक पुत्रमभिनीतमं राज्ये स्थापयेत्) । यह भी कहा गया है कि यदि राजा अपने अनेक पुत्रों में से किसी बृष्ट पुत्र का निर्वाचित कर दे तो यह अनुचित न होगा । यह भी कहा गया है कि सामान्यतः पिता अपने पुत्रों का घुमविलसक होता है । अनेक पुत्रों में से राज्य का उत्तराधिकारी किसे बनाया जाए, इन समस्या को हल करने के लिए कौटिल्य ने एक युक्ति यह सोची थी कि शार्वभीम सत्ता संयुक्त परिवार के हाथों में हो क्योंकि इस प्रकार की सामूहिक शार्वभीम सत्ता की सक्ति बढेय होती और उन लोगों से मुक्त होती जो एक ही शासक की बुराइयों से उत्पन्न होते हैं । इस प्रकार की सत्ता स्वायत्त भी होगी (कुलस्य वा जनेषु राज्यं कुलस्यो हि दुर्बलम् । अराजक्यसमायाकः शम्भराजसति क्षितीम्) ।

कुछ विद्वानों का मत है कि मंडर्बता की शार्वभीम सत्ता उनके संयुक्त-परिवार के हाथों में थी । चाणक्य-कथा (एन सा द्वारा सम्पादित [V ७] के अनुसार महात्मन २ बाद उसके बेटे राज्य के उत्तराधिकारी बने न सब मिलाकर घातन करते थे और उनमें से प्रति वर्ष बारी-बारी से एक को राजा चुन लिया जाता था पर शार्वभीम सत्ता उन सबके सम्मिश्रित हाथों में रहती थी ।

यह बात ध्यान देने योग्य है कि कौटिल्य जिसने प्रचलित कथानों के अनुसार अपनी पद्धत के एक व्यक्ति को वक्तपूर्वक समय के राजविहासन पर

बिछाया था राजत्व के पद के लिए वीरुक अधिकार की अपेक्षा उत्तराधिकारी के गुणों की अधिक महत्त्व देता था। परन्तु यह स्वयं बकात् सत्ताहर्ष करने वाले हुए व्यक्ति का सम्बन्ध नहीं था [VIII २]। कुछ लोगों का विश्वास होता है कि नया राजा इसलिए अधिक लोकप्रिय होता है कि वह 'अनुग्रह' परिहार, दान तथा मातृ-हारा साधों को प्रसन्न रखने के लिए सर्वत्र तत्पर रहता है (नवस्तु राजा स्वयमनुग्रह-परिहार-दान-मातृ-कर्मेभिः प्रहृष्टिरञ्जनापकारंश्चरति इति) परन्तु कीटिस्व के विचार में यह बात सच नहीं है क्योंकि असल में राजा का शासन बल का शासन होता था। किन्तु उसके मन में हमेशा यही विचार रहेगा कि उसने देम पर स्वयं अपने भूवज्ज से विजय प्राप्त की है (अन्तर्जितं मयेवं राज्यं इति)। यदि राजा अपना कोई योग्य उत्तराधिकारी छाड़े बिना ही मर जाए, तो उस योग्य उत्तराधिकारी को ही विहासन पर बिठाकर, उसे प्रजा के सामने अल्प नरेशों तथा सामंतों (पुष्प-राष्ट्रमुख्य) के सहपाय से राजाकीर्ति कर देना चाहिए। "या महामनी को बीरे-बीरे कासन वा साध भार युवराज को खींचकर वह प्रजा के सम्मुख राजा की मृत्यु की घोषणा करनी चाहिए। साधारणतया "राजा के उस पुत्र को राज्य का उत्तराधिकारी बनाया जाना चाहिए जिसमें आत्म-संबन्ध है। यदि कोई ऐसा योग्य पुत्र न हो तो महामनी को योग्य राजकुमार (कनार) जबवा राजकुमारी या गर्भवती रानी (देवी) को ही विहासन पर बिठाकर मथियों तथा बन्ध-माल राजकर्मचारियों (महामात्रात् सन्निपात्य) की एक उमा बुलाकर उनसे कहना चाहिए 'राज्य अब तुम्हारे हाथों में एक बरपहर (मिलेय) है। इनके सिद्ध को स्वरूप करो और स्वयं अपनी शक्ति तथा अपनी कृष्ण-उत्पत्ति को ध्यान में रनो। राजा का यह उत्तराधिकारी सत्ता का कर्षक प्रतीक-मात्र (ध्वजावाधो-ग्रन्थ) है। वास्तविक सत्ता तुम्हारे हाथों में है। यह कहकर उसे राजकुमार, या राजकुमारी जबवा गर्भवती रानी का राज्याभिषेक कर देना चाहिए (तथेति अमत्यः कुमारं राज-कन्यां यमिभी देवी वा अधिकुर्वन्ति यमिपिञ्चन्)। इसके बाद उसे राजकुमार को राजत्व के पद के योग्य बनने की सिखा देनी चाहिए (विमलकर्मणि च कनारस्य प्रणेत)। यदि राजकुमारी विहासन पर बैठी है तो मत में बलकर उसका पुत्र जिसका पिता उसी जाति (समान जाति) का होना चाहिए। राज्य का उत्तराधिकारी बनेगा। मंत्री (अपत्य) को राजा के लिए शासन रख मोड़े हाजी (यत्न-वाहन) आनुयय (आवरण) बन्ध रनवाट निवागरान तथा उमड़ी गात्र-नग्रा (बह्र-निबोधन-परिचायान्) आदि का राजाका प्रकण बजाना चाहिए" [१ ६]। इन प्रकार कीटिस्व ने आबस्यष्टा बहन पर प्रतिपन्न-दानन वा विचार प्रम्पुन प्रिया वा ताकि कोई ऐसी बात

महोने पाण जिसमें परम्परागत राजघर की हटाकर कोई नया राजा सिंहासन पर अधिकार कर ले ।

राजधानी पाटलिपुत्र मेगास्थनीज के वर्णन के अनुसार जो पाटलिपुत्र में रहा था यह नगर पंगा तथा सोन नामक नदियों के संगम पर बसा हुआ था, जिसे कौटिल्य ने नवीनोपम कहा है [II ३] । नगर आयताकार क्षेत्र में बसा था जिसकी लम्बाई ८० स्टेड (= १.५ = मील) और चौड़ाई १५ स्टेड (= १ मील १२०० यज) थी । नगर की सुरक्षा के लिए चारों ओर एक खाई (परिवा) थी जो ६ प्लेथा (= २०० यज) चौड़ी और १० क्यूबिट (= लगभग ६० फुट) गहरी थी जिसका अर्थ है कि इस खाई में भागे जा सकने की थी । इसमें सोन नदी का पानी आता था । नगर का चारों ओर पानी भी जाकर इसी में गिरता था । नगर को और सुरक्षित बनाने के लिए उसके चारों ओर खाई के किनारे-किनारे कच्ची की एक बहुत बड़ी दीवार थी । इस दीवार के बीच-बीच में बरतों की जिनमें से पनुरापी छीर बजाते थे । इसमें १४ द्वार और ५७० बुनियाँ भी थीं (मेगास्थनीज अंश २५ = स्त्राबो XV-७ २) ।

रोम ईतिहास ने (बुक्सिड इटालिया, पृष्ठ २६२) हित्ताब बताया है कि "इतनी बुनियाँ का अर्थ यह है कि वे ७५-७५ गज की दूरी पर रखी होंगी ताकि उनमें बैठे हुए पनुरापी या बुनियाँ के बीच के पूरे क्षेत्र में कहीं भी छीर मार सकते थे । पालकों की संख्या से हित्ताब बताया जाए, ता दो पालकों के बीच १६० गज की दूरी रखी होगी जो बिल्कुल समय और सुविधानेक दूरी प्रतीत होती है । प्राचीन की लम्बाई सन्तुष्ट अविस्मरणीय प्रतीत होती है । परन्तु स्वार्थीय अभिलेखों से पता चलता है कि अथ की तरह ही उस समय में भी मार तीव्र नगर बहुत विस्तार में फैले होते थे इसलिए मेगास्थनीज ने इस नगर के आकार के बारे में जिसमें वह यह कहा था जो अनुमान लगाया है उसे हम सही मान सकते हैं ।

मेगास्थनीज के कथनानुसार पाटलिपुत्र नगर का निर्माण करने में मुख्यतः कच्ची का प्रयोग किया गया था क्योंकि वह नदियों ने तट पर बसा हुआ था और बाद से उसकी सुरक्षा करना आवश्यक था [I ६] । यह बात सम्भवतः है कि उस स्वातंत्र्य पर, पाली पाटलिपुत्र बसा हुआ था जो कुराई की गई है उसमें भू-तक से कम से कम ५०० फुट तक की गहराई पर कच्ची की दीवार के अवशेष मिले हैं । ये अवशेष ही उनी मीयकाशीन नगर की प्राचीन कच्ची की दीवार के अवशेष हैं ।

नगर का निर्माण उनी क्षेत्र से किया गया था जैसा कि कौटिल्य ने अपने विवरण में बताया है । कौटिल्य का मत था कि राजधानी का निर्माण क्षेत्र की

रखा के लिए (जनपदारक्षायाम्) एक कुयं के रू-में किया जाना चाहिए। इस लक्ष्य को दृष्टिगत रखते हुए राजधानी किसी पर्वत पर अथवा किसी नदी के किनारे बनायी जाहिए। या फिर उसे राज्य के मध्य में किसी ऐसे स्थान पर बसाया जाना चाहिए जहाँ वास्तुकला के विशेषज्ञ अर्थात् कजीमियर उपयुक्त समर्थों (वास्तुक-प्रशस्ते वास्तुनिष्ठाभिज्ञनिश्चिते वेले) जैसे नदिया के संगम पर (बरी-संगमे) या किसी झील के किनारे (हृद) या किसी घाताश के किनारे (लटाक) ताबि निरंतर एक भिन्न में कोई अस्तुविधा न हो। उसके चारों ओर एक गहर (प्रवर्तिचौल्लस) होनी चाहिए और उसके अन्त तथा अन्त दोनों ही मार्गों से प्रवेश की उचित व्यवस्था होनी चाहिए। और अधिक सुरक्षा के लिए उसके चारों ओर एक-एक दण्ड (= १ फुट) की दूरी पर तीन परिसार होनी चाहिए। इन तीनों परिसारों की चौड़ाई क्रमशः १४ १२ तथा १० दण्ड (= ८४ ७२ तथा ६० फुट) होनी चाहिए और इनकी बीचों-बीच अथवा ईद की बनावी जानी चाहिए। इनकी महगाई चौड़ाई की चौड़ाई अथवा आधी होनी चाहिए (जिससे उसमें नालें बसाई जा सकें)। इन परिसारों में निरंतर एक का प्रवाह रहना चाहिए और उन्हें अन्त के प्राकृतिक स्रोतों से जैसे नदियों से जोड़ दिया जाना चाहिए, जिनमें इनके पानी की निकाली की जा सकती है। इन परिसारों में कचक के पृष्ठ और नदियाँ बाँधे होने चाहिए (तोयामित्योः आमन्तुतोन्मूर्ता वा उपरिवाहाः पप्रप्रावृत्तीः)।

उसके अन्दरवाली परिसार से ४ दण्ड की दूरी पर मिट्टी का एक परकोटा (ध्व) बनाया जाना चाहिए, जिसकी ऊँचाई १ दण्ड और चौड़ाई १२ दण्ड होनी चाहिए। परकोटा बनाते समय मिट्टी को हाथियों तथा बाघों के पैरों से पीरवाकर मजबूत बना लिया जाना चाहिए और उसे और अधिक सुदृढ़ बनाने के लिए उस पर नदियों काट्टियाँ तथा चिपली लगाएँ लगवाई जानी चाहिए। परकोटे के चारों ओर जीत की दीवारों के लिए पक्की ईंटों के पुत्ते (प्राकार) बनवाए जाने चाहिए और चौकोर बीमारों (अट्टालक) होनी चाहिए। प्रत्येक दो अट्टालकों के बीच में नायबान (प्रतोली) होना चाहिए और अट्टालक तथा प्रतोली के बीच में एक ऐसा स्थान (ईदकोष) होना चाहिए जिसमें तीन बनुर्बाँटी लड़े हो सकें (विशानुष्ठापिष्टानम्)। प्राकार और परकोटे के बीच में चौर रास्ते (दिवन तथा कामा तथा उपलव) होने से। इनमें द्वार और चरक (बीपुरम्) होने से। परकोटे पर छोड़ी-छोड़ी दूर पर बड़े-बड़े ताक (कापा) बनवाए जाते थे जिसमें नाला प्रकार के अन्ध-नाथ रने जा सकें और पत्थर के पावड़े (दुहाल) फटाईयाँ (कजारी) तीर (काण्ड) हाथियों के अंजन (कम्पना) गदाएँ (मुनिक), लगीने (मुत्तर) दण्ड अन्त, बीच लोहे की बीलों वाले इपियार

(घातम्) इत्यादि के हथियार (कार्मारिकाः) विपुल मात्रे, बिम्बोटक पदार्थ (अग्निर्संयोगः) आदि ।

नगर के १२ द्वार होने चाहिये, जिससे देश के विभिन्न कोटों तथा बर्मा की ओर मार्ग बने होने चाहिये ।

राजा का निवास (राजनिवेश) उसके नवें भाग (नवभाग) में सबसे गुरतिलेन स्थान में बनाया जाना चाहिए (प्रचीरे वास्तुनि) ।

राज प्रासाद के निकट राजगुरु तथा पुरोहित के निवासकक्ष तथा यज्ञ भवन (इत्यादि) चक्र-मंडार (क्षोपस्वानम्) और मंत्रियों के रहने के घर होने चाहिये ।

इन से मिली हुई पाकघाता समा-भवन ( पाकघाता हस्तिपुष्टाकारम् सभापुहम् ) और मंडार होना ।

राज प्रासाद के बाहर (तत् परं राजमन्त्रालयं बहिः) सुगंध पुष्पमालाएँ, बस तथा पेय आदि के व्यापारियों मुख्य शिल्पकारों तथा लक्षियों के घर होने ।

इसके बाद खजाना भंडा-कार्यालय तथा सवारों की दुकानें (कर्मनिवृत्तः स्वर्णरत्नप्रतिष्ठापनामि) होंगी ।

उसके बाद अन्य धातुओं के शिल्पकारों की दुकानें (कृष्णाहं स्वर्ण-रत्नलेनस्वानम्) और अस्त्रशाला होंगी ।

इसके बाद नगरपालिका (नगर-व्यावहारिक) अनाज की मंडी के नियंत्रक (धान्य-व्यावहारिक) राजनिवेशों के निरीक्षण तथा सेनापति के कार्यालय होंगे ।

इसके बाद पका हुआ भोजन मांस मदिरा आदि के भोजनालय तथा उपाहार-मृदु, बेस्याओं तथा अग्निनेत्राजी (तालाबचारा मन्त्रः) और वैद्यों के घर होंगे ।

उसके बाद मयों तथा कोटों के अस्तबल और रखवालाएँ, गाड़ीखाने तथा उनके निर्माण तथा मरम्मत का कारखाना होंगा ।

इसके बाद विभिन्न शिल्पकारों काठ, रत्न, सन तथा जमड़े की चीजें बनाने वालों तथा झुंडों के घर होंगे । इसके बाद दवा की दुकानें (वैद्यस्य गृहम्) होंगी ।

फिर चक्र-मंडार, पशुघाताएँ तथा अस्त्रशालाएँ होंगी ।

उसके बाद राज-परिवार के गुरु-वैद्यताओं और साधारण नागरिकों के पुष्प बेचठों के मंदिर होंगे फिर झुंडारों और औद्योगिकों की दुकानें और बाह्यकों के घर होंगे ।

नगर के भीतर ही विभिन्न धर्मों की श्रेणियाँ तथा विशेषी व्यापारियों के संघ स्थित होंगे (प्रबह्मिक निकायाः प्रबह्मिकाः विशेषांगता बहिः संप्रदायः) । ।

नगर के भीतर ही दर्म्य (अपराजिता) विष्णु (अपस्तिह) मुहूर्त (अपस्त) इन्द्र (वैद्यमत्त) शिव वैद्यमत्त अतिवन्दन करमी तथा मदिरा के मंदिर होंगे ।

बापलिक तथा चाण्डाल आदि धर्मद्रोही दमघान-मुनि के परे रहेंगे।

राजधानी के भंडार में जीवनोपयोगी वस्तुएँ, आवश्यक आद्य-साधनी औपचारिक तथा प्रतिरक्षा के साधन कई वर्ग के लिए, (यदि मगर को धनु शीर्षकाक्ष के लिए भर के तो उस समय के लिए) पर्याप्त मात्रा में होने चाहिएँ।

भारतीय साहित्य में पाटलिपुत्र : बौद्ध ग्रंथ : पाटलिपुत्र का उत्प्रेरक भारतीय साहित्य में चट्मुत्त से पहले और उसके बाद भी बहुत समय से होता आया है। पालि ग्रंथों में उसकी स्थापना मगध के प्रख्यात सम्राट् अजातशत्रु के शासनकाल में जिसने कमसे ५५१ से ५१९ ई० पू. तक शासन किया था बताई जाती है। उसी ने गंगा नदी के किनारे इस नगर को बनाने के लिए एक उपयुक्त स्थान ईश्वर वा और सुनीय तथा वस्त्रकार नामक अपने मुख्यमंत्रियों की निगरानी में उसका निर्माण करवाया था। उसकी स्थापना के समय महारमा ब्रह्म ने उस नगर में आकर उसे औरवान्धित किया था और उसकी महानता के विषय में यह भविष्यवाणी की थी "जिन प्रख्यात स्थानों में व्यस्त लोग रहने तथा आते-आते हैं उनमें यह पाटलिपुत्र का नगर, सर्वप्रमुख बन जाएगा यह हर प्रकार की वस्तुओं के आवागमन का केंद्र बन जाएगा" (महापरिनिष्पान सुत्तांत पृष्ठ १८ सेक्केड् बुक्त अर्द्ध वि ईस्ट में अनुरित)। महाब्रह्म में भी [VI २८८] यही भविष्यवाणी की गई है "जानन्द मगध के मंत्री सुनीय तथा वस्त्रकार ब्रह्मियों की पीछे चलने के लिए (उपयुक्त स्थान पर) पाटलिपुत्र में इस नगर का निर्माण कर रहे हैं। जानक वहाँ तक आये जोय बसे हुए हैं वहाँ तक व्यापारी यात्रा करके आते हैं उस पूर विस्तार में यह पाटलिपुत्र का नगर प्रमुखतम नगर बन जाएगा।

प्लट्युस : अपने महाभाष्य में [II १ २] प्लट्युस ने ( लगभग इमरी पताम्बी ई० पू. ) पाटलिपुत्र को 'अनुषीषम्' वाटलिपुत्र कहा है जिसका अर्थ है कि प्लट्युस को पाटलिपुत्र के चोख नदी के तट पर स्थित होने की बात मालूम थी। जिन ऋषि ऋषि मन्त्री तथा मुहुरी के लिए यह नगर इतना प्रसिद्ध था उसका प्लट्युस पर इतना महत्त्व प्रभाव पड़ा कि उन्होंने अपनी व्याख्यान में उसका व्याख्या में प्रमाण दिया है। उदाहरण के लिए उन्होंने लिखा है [IV १ २] पाटलिपुत्रवा प्रामादा पाटलिपुत्रवा प्राकारा इति।"

मुद्राराक्षस : इनके बाद लिगे गए मुद्राराक्षस नामक नाटक में पाटलिपुत्र का वर्णन रोचक ढंग से मिलता है। उनमें इस बात का संकेत मिलता है कि पाटलिपुत्र मगध और चोख नामक नदियों के संगम पर बसा हुआ था। इन नाटक में यह वर्णन मिलता है कि नंद राजा के महल पर अधिकार करने के बाद जिसका नाम मुद्राराक्षस था वह उस महल से रंगा की छटा देखता है, जिस

पारव क्षत्रु वर्षा क्षत्रु के बाद की एक छठपत्ती हुई पल-धारा के रूप में बड़ी तीव्र गति से उसके स्वामा के पास वर्षात् समुद्र की ओर से आ रही है [ III ९ ] । इससे पता चलता है कि नगर ठीक यमा नदी के किनारे बसा हुआ था । साथ ही इसी नाटक में हमें इस बात का भी अस्सेष्ट मिलता है कि मलयवेनु को पाटलि-पुत्र पहुँचने के लिए घोष नदी को पार करना पड़ा था । यह कहता है "मेरे सबड़ों हाथी नगर की ओर कूब करते समय घोष नदी का सारा पल पी जाएँगे" [ IV १९ ] ।

इस नाटक में यह भी कहा गया है कि नगर के चारों ओर एक परकाण ( प्राकार ) भी था जिस पर नगर की सुरक्षा के लिए बनुर्षारी ( अरासनपरतः ) खनात किए जा सकते थे । नगर के बगल में यह भी कहा गया है कि उसमें बनर फाटक थे जिन पर हर समय ऐसे अस्त्रिणाकी हाथी बड़े रहते थे जो क्षत्रु के हाथियों की बड़ाई को परास्त कर सकते थे [ II १३ ] । उसी वर्ग में यह भी कहा गया है कि एक फाटक में यात्रिक किबाड़ ( यत्र-सोरण ) लगे थे जिन्हें लोहे का एक पेंच ( लोह-लोलकम् ) घुमाकर नीचे गिराया जा सकता था [ II, १५ ] ।

यह बात ध्यान देने योग्य है कि यूनानियों ने एपसीबार्बोस शब्द का प्रयोग किया है जिसका संस्कृत पर्याय हिरण्य-बाहु है जो घोष नदी का कुसुम नाम था ( नाम का हर्षचरित पृष्ठ १९, परब द्वारा सम्पादित ) ।

आ-क्ष्मलः : यह बात भी अस्सेखनीय है कि चीनी यात्री आ-क्ष्मल ने जिसने ३१९ ई० से ४१४ ई० के बीच भारत की यात्रा की थी सीर्य राज प्रासाद को बहुत अच्छी हालत में पाया था और उसने उसका वर्णन इन शब्दों में किया है "नगर में सग्राद् ( अशोक ) का प्रासाद जिसमें अनेक यवन तथा कस्त हैं, अभी तक विद्यमान है । ऐसा प्रतीत होता है कि उसका निर्माण किसी अमानवीय योजना के अनुसार अलौकिक शक्तियों ने किया था उन्होंने ही उसके पत्थर चूने-झर बनाए थे हीनारों तथा फाटक बनाए थे उस बेस-बूटों से सजाया था ।"

राज-आदेशः : राजा प्रशासन का कार्य अपने आदेशों द्वारा करता था जिन्हें कौटिल्य ने सासन [ II, १ ] कहा है । राजा एक योग्य सेलक नियुक्त करता था जो राजा की आज्ञा को सुनकर और उसे सबी भाँति समझकर निपिबद्ध करता था । राजा ये आज्ञाएँ अपने उप राजाओं ( ईश्वरों ) या अन्य पराधिकारियों के नाम जारी करता था । इसलिए सेलक में उच्च योग्यताओं का होना आवश्यक था । उसमें अमान्यों अर्थात् मणियों-जैसी योग्यताएँ होनी चाहिए, उसे विभिन्न प्रशासकों का ज्ञान होना चाहिए, उसका सेल सुन्दर होना



चाहिए, विचारों को तुरंत उचित शब्दों में व्यक्त करने की क्षमता होनी चाहिए और उसे दूसरों की निजार्थ पक सेनी चाहिए ।

विचारों का अच्छे ढंग से व्यवहार करने ( लेख-सम्पत् ) के लिए वे गुण आवश्यक हैं । विषय-बस्तु की सुचारु व्यवस्था ( व्यवस्था ) उद्गमकृच्छता ( सम्पन्न ) अभिव्यक्ति की परिपूर्णता कर्तव्य सध्यों का प्रयोग ( माधुर्य ) भाषा की साक्षीयता ( औदार्य ) और स्पष्ट अभिव्यक्ति ( स्पष्टार्थ ) ।

हो एक उक्त्युद्गमक का मत है [ कौटिल्य हिस्त्री बौद्ध इतिहास ] ४८८ ] कि इन लेखकों का सम्पन्न पत्र-व्यवहार मंत्री के विभाष सि होता था जिसे 'प्रजास्ता' कहते थे और जिस पर राजा के आसन प्रकाशित करने का भार होता था ।

राजाकार्यें सूचना ( प्रजास्त ) आज्ञा वाग ( परिवान ) कृत् ( परिहार ) अधिकार-दान ( निमुष्टि ) आनकारी ( प्रवृत्तिका ) उत्तर ( प्रतिज्ञेय ) या सार्वजनिक उद्घोषणा ( सर्वज्ञ ) किसी भी विषय के बारे में हो सकती थीं । "समस्त मास्त्रां का ज्ञान अभिज्ञ करने के बाद और आत्मोक्त आदेशों के व्यावहारिक परिपालन पर विचार कर लेने के बाद, कौटिल्य ने नरेन्द्र के ही हित में राजा द्वारा अप्पादेश जारी करने के सम्बन्ध में वह कार्य-प्रवृत्ति निर्धारित की है । ( एक प्रचलित मत यह है कि नरेन्द्र चन्द्रगुप्त का ही नाम था ) ।

## अध्याय ५

### मन्त्री सेवा के नियम

राज्यसत्ता के अंग : हिंदू शासन-प्रणालि के सिद्धान्त में राज्य के जो सात अंग माने गए हैं उन्हीं को आपार मानकर कौटिल्य ने शासन-व्यवस्था की योजना बनाई थी। ये सात अंग हैं (१) स्वामी अर्थात् सार्वभौम शासक (२) मन्त्रस्थ अर्थात् मंत्री (३) जनपद अर्थात् राज्यक्षेत्र (४) धूर्त (५) कौशल अर्थात् वित्तीय बल (६) दण्ड अर्थात् सैनिक बल ( जिसमें सेना के चार अंग—वीर्य, बुद्धि, सहाय, हाथी तथा रथ शामिल हैं ) और (७) मित्र अर्थात् मैत्री-सन्धियाँ।

राज्य-क्षेत्र : इन सब अंगों में कौटिल्य ने राज्य के क्षेत्रीय आपार के महत्त्व पर काफी जोर दिया है जिस पर उसकी प्रणति तथा उसका भविष्य निर्भर है। सबसे पहले तो कौटिल्य ने [IX. १] देश-भक्ति तथा देश-प्रेम की अपनी बलवत्त मानना को व्यक्त करते हुए कहा है "समस्त संसार में देश का वह उत्तरी भाग जो हिमालय से समुद्र तक फैला हुआ है ( हिमवत्समुद्रान्तरमुखी-बीच ) साम्राज्य का स्वाभाविक क्षेत्र है" ( अक्षयतिलोत्तमम् )। स्पष्टतः यहाँ पर कौटिल्य का संकेत उस साम्राज्य की ओर है, जिसे अश्वमेध ने पंजाब में स्थापित किया था। यह देश आर्थिक साधनों तथा सामर्थ्यताओं की दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध है इसमें खेती के कामकाज ( ग्राम्य ) जंगली ( आरण्य ) पहाड़ी

( पार्वत ) कुओं से सीधी बालेवाली ( जीरक ) सुखी ( भीम ) समतल ( सप्त ) झेपी-जीपी ( विषम ) हर प्रकार की भूमि की प्रचुरता है जिससे यहाँ पर हर प्रकार की पसलें उगाई जा सकती हैं । ये भी जिनके लिए बहुत बानी की आवश्यकता है और ये भी जिनके लिए अधिक जल की आवश्यकता नहीं होती । भारत आज तक मुख्यतः एक कृषि-प्रधान देश बना हुआ है क्योंकि विविध प्रकार की जलवायु के आधार पर उसमें इस बात की समता है कि वह आर्थिक रूप से स्वावलम्बी हो जाए और इस प्रकार भारत 'समस्त संसार का सार-रूप' है । एक दूसरे प्रकरण में [ VII, १ ] कीटिस्थ ने कहा है कि देश बड़ी बच्छा है जो मोडाभा ( सामुबीयप्राम ) कुपकों तथा शिल्पकारों ( जेभीप्रामो ) का देश हो और पर्वतीय कुओं का नदियों या बग प्रवेशों द्वारा पर्याप्त रूप में सुपुष्टित हो । सीमांत प्रदेश का बिबासी होने के कारण कीटिस्थ पर उसके अनेक पर्वतीय कुओं की बहुत गहरी छाप पड़ी थी । उसने एक फल्लो-कृत्यो देश के लिए इन चीजों की भी आवश्यक बताया है (१) दुर्ब (२) कृषि (क्षु) (३) पत्र (४) युद्ध के लिए हथियारों के झोठ के रूप में बानें ( संग्रामोपकरणानां योनिः ) (५) दुर्ग मजिमां तथा रथ-निर्माण में काम आने वाली ( दुर्गकर्मणां यानरथयोरथ ) आवश्यक सामग्री जुटाने के लिए लकड़ी का जगक (६) हाथियों के जंगल और (७) माय छोड़ा गया तथा ऋते ( सीमांत प्रदेश का दोतक ) आदि पशुओं के लिए चरमाह ( वज्र ) [ VII १४ ] । देश में अन्य जो बहुमुख्य गुण होने चाहिएँ ( जनपद सन्धान् ) उनका जलेश्वर कीटिस्थ ने इस प्रकार किया है [ VI, १ ] उनका हर भाग सुरक्षित होना चाहिए । उसमें न केवल वैद्यवासियों ही अतिरिक्त विदेशी के आनेवाले लोभी का भी नरप-नोपच करने ( अन्नधारण पर धारण ) की समता होनी चाहिए । उसमें प्रतिरक्षा के प्राकृतिक तथा कृत्रिम दोनों ही प्रकार के साधन होने चाहिएँ जैसे बरंग बग नदियाँ तथा दुर्ग ( स्वारक ) । उसे आर्थिक रूप से आत्मवलम्ब ( स्वाजीव ) होना चाहिए । देश की जनता देश के प्रति इसी प्रकार होनी चाहिए कि वह विदेशी आक्रमण का विरोध करे ( धनुर्वेदी ) । उसके पड़ाही कमजोर होने चाहिएँ ( धरम-सादन्तः दुर्बल-नामन्तः ) । उसके पान लेनी के लायक बहुत-सी खमीर हानी चाहिए, जिनमें बगन कमलक न हों जो बहुत पकरीली या मुरी या ऊबड़-गाबड़ या जकनी न हों और न ही उसे जंगली आशियों ( कन्दक-ज्येजी ) से भूटमार या गन्तव्य हो । देश की खान्द होना चाहिए, अर्थात् 'उसमें नार्थकृतिक उपयोग तथा सुविधा की सभी चीजों जैसे कर्मों के साधारण नृश खड़ी-कूटियों के उद्यान नदियाँ झील तालाब तथा विद्यालय' ( जिनके लिए अचार की इतनी स्थिति थी ) का प्राचुर्य हो । इनके अतिरिक्त उसमें बहुत-सी उपजाऊ भूमि ( सीता )

घोने तथा हीरे-जवाहरात की घामें ( अनिर्बन्धादिभिषि-सुवर्णादिमारुतः ) तर-कारियों के सेत तथा इमाण्टी लकड़ी के जंगल हाथियों के लिए जंगल पशुओं के चरने के लिए मैदान ( गाय्ध- ) वस्त्रियों के लिए जमीन ( पीण्येय ) त्रिका रियों के लिए संरक्षित वन ( गुप्तमोक्षरो सुम्बकादिरलितभूमिः ) और बहुत प्रचुर पशुपद ( पशुमान ) होना चाहिए । उसमें मणियों से इतने काफ़ी जल की व्यवस्था रहनी चाहिए कि उसे वर्षा पर पूर्वतः निर्भर न रहना पड़े ( देवमातृकः ) । उसमें जल तथा जल द्वारा यातायात के मार्ग होने चाहिए । उसे व्यापार की बहुमुख्य वस्तुओं तथा विभिन्न प्रकार के उत्पादनों ( सारविज्र-अहु-वज्र ) में समृद्ध होना चाहिए । उसकी जनता में राज्ञी बड़ी सेना के कार्य तथा कर का भार सहन करने की समता होनी चाहिए ( बन्धकार-सहः ) । उसमें परिमयी रूपक ( कर्मशील-कर्मक ) तथा योग्य प्रशासक होने चाहिए । उसमें बहुत बड़ी संख्या में निम्न जातियों के या जातिवासी जातियों के लोग होने चाहिए, जो उसकी कला तथा धर्म के विकास में सहायता दे सकें ( अवरजर्ज-श्रावः मयधवज-बहुतः ) । यह बात उल्लेखनीय है कि मनु भी देश में निरूप्य कुछ हाथों वाले धिस्पर्कारों के होने ( निरूप्य कुछः काककहस्तः ) [ मनु० V १२९ ] का स्वागत करते हैं । अंतिम बात यह कि देश की समृद्धि तथा उसका भविष्य वैद्यवासियों के गुणों उनकी वैद्य-मक्ति तथा उनके चरित्र ( मत्त सुचमनुष्य ) पर निर्भर करता है । कौटिल्य ने भारत का जो यह विवरण किया है उससे अच्छा विवरण संभव नहीं है ।

भारत-देश मेवास्थनीय की दृष्टि में : यह बात उल्लेखनीय है कि मेवा-स्थनीय के धर्मों में हमें भारत और उसकी प्राकृतिक तथा आर्थिक सम्पदा का ऐसा वर्णन मिलता है, जो कौटिल्य के वर्णन से बहुत निम्न-बुद्धि है । मेवा-स्थनीय ने लिखा है “भारत में अनेक बड़े-बड़े पर्वत हैं जिन पर हर प्रकार के फलों के अस्तस्य वृक्ष हैं । वहाँ अनेक अति निस्तुत उपजाऊ मैदान हैं, जिनमें अनेक नदियाँ बहती हैं । भूमि के अधिकांश भाग की सिंचाई होती है और उस पर वर्ष में दो फसलें उगती हैं । इसके साथ ही देश में कमबोर और बरुवान छोटे और बड़े सभी प्रकार के जानवर, मैदानों में घूमने वाले पशु और माकाद में भ्रमण करने वाले पक्षी बहुत बड़ी संख्या में पाए जाते हैं । इससे अतिरिक्त यहाँ हाथियों की संख्या बहुत अधिक है । भारतवासी कला-कौशल में बहुत निपुण हैं । वे स्वच्छ वायु में श्वास लेते हैं और श्रेष्ठ जल पीते हैं ।

“एक ओर वहाँ भूमि के ऊपर से सभी फल उगते हैं, जिनसे कृषि परिचित है तो दूसरी ओर भूगर्भ में गामा प्रकार की वायुओं के संसार है । इनसे सोना चांदी और काँजी बड़े परिमाण में लाया तथा और निष्कलता है, जिनसे नागद

प्रकार की उपयोगी वस्तुएँ तथा आभूषण और मुद्र के लिए सत्सात्व तथा अन्य उतकरन बनाए जाते हैं ।”

“आद्याओं के अतिरिक्त सारे भारत में बाजार बहुत होता है जिसके खेतों की अक्षय्य नदियों के जल से सभी माँति सींचा जाता है बहुत बड़ी मात्रा में विभिन्न प्रकार की दालें और आबल तथा अन्य खाद्योपयोगी फ़सलें उगाई जाती हैं । इसलिये यह बात निश्चयपूर्वक नहीं आ सकती है कि भारत में कभी अकाल नहीं पड़ा है और कभी पीछिक भोजन का अभाव नहीं रहा है ।

“इसके अतिरिक्त अपने-आप उगने वाले फलों और हलहली भूमि पर उगने वाली विभिन्न प्रकार की रसदार जड़ों से भी यहाँ के निवासियों को बहुत-सी पीछिक जाय-सामग्री मिलती है । सच तो यह है कि देश के लगभग सभी मैदानों में हर जगह वनस्पति जलता रहती है । चाहे वह नदियों के जल से प्राप्त की जाए या दीप्त जल में होने वाली वर्षा से जो प्रतिवर्ष आश्चर्यजनक हद तक नियमित समय पर होती है ।”

कोश राज्य का दूसरा आधारभूत अंग उसके कोश की दृढ़ता ( कोश-सम्पत् ) है । इसका आधार कर की एक सुस्पष्ट तथा व्याप्य ( धर्माधिकृत ) व्यवस्था सेने-बाँटी हीरे-जवाहरात तथा स्वर्ण-मुद्राओं ( धिरम्भ ) का प्राचुर्य है, ताकि वह दुर्निष्ठ आदि दीर्घकालीन वीर्य विपदाओं के काल में देश का भरण पोषण कर सके ( दीर्घायुप्राप्तमनापति सहतेति कोशसम्पत् ) [ VI १ ] ।

सेना सेना के सम्बन्ध में कौटिल्य का मत यह है कि सेना में ऐसे ही लोगों को भरती करना अच्छा होना जिनके पूर्वज ( पिपितामहो ) भी सेना में रहे हों । उन्हें अच्छा बेटन दिया जाए तथा हर प्रकार से संतुष्ट रखा जाए । उनमें ऐन सुहृत्त्व लोभ ( नृत्पुत्रहारः ) भरती किये जाएँ, जिन्हें अनेक युद्धों का ( बहुयुद्ध ) अनुभव हो जो युद्ध की समस्त कलाओं में निपुण हों जिनका राजा से किसी प्रकार का मतभेद न हो और मुख्यतः वे क्षत्रिय हों [ उपर्युक्त ] ।

कौटिल्य ने अंत में यह मार्मिक बात कही है “यदि किसी राजा के राज्य का विस्तार बहुत छोटा हो ( अल्पदेशोपि ) फिर भी यदि उसके पास सार्ध मीम सत्ता के अन्य युक्त मौजूद हैं, तो वह अजेय हो जाएगा और पूरे संसार पर विजय प्राप्त कर लेगा” [ उपरोक्त ] । कौटिल्य ने अपने ऐतय्य अन्नगुप्त के लिए जिन विषयों की कलाशा की थी उनके पीछे यही प्रेरणा बिधापीत थी ।

राजा के हाथ में सुरक्षित धनितियाँ : यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि राज्य के विभिन्न अंगों में राजा को अर्थात् कोश तथा बल ( जन की रक्षित तथा संयोजन ) पर अपना नियंत्रण रखना या तादृश यदि उनका मंत्री ( मन्त्र्य ) भी छोटी ही जाएँ, तो वह उन्हें दबा नके । मंत्रियों के हाथ का एक

प्रश्न यह है कि राजा को कितने लोगों को अपना विश्वासपात्र बनाना चाहिए और कितने मंत्रियों या परामर्शदाताओं से उसे सलाह लेनी चाहिए ? माछाज का मत था कि नीति युक्त सभी रह सकती है जब केवल एक मंत्री हो । मिश्रा भास्व ने इसके जवाब में यह कहा है कि इससे मंत्रमुक्ति तो हो सकती है पर मंत्र-सिद्धि नहीं हो सकती । नीति की सफलता उसकी गोपनीयता से अधिक महत्व रखती है । यह कहता है "इसलिए राजा को अनेक वशिष्ठानों से परामर्श करना चाहिए ।" परन्तु पराधर के अनुयायियों के अनुसार यह केवल मंत्रज्ञान है मंत्रसरक्षण नहीं अर्थात् इस प्रकार नीति को जाना तो जा सकता है पर उसकी गोपनीयता की रक्षा नहीं की जा सकती । उनका मत यह है कि राजा को किसी कल्पित उदाहरण के द्वारा अपने अमात्य से परामर्श करना चाहिए । पिछुन के मतानुसार ऐसा अमात्य समस्या पर बंसीरक्षापूर्वक विचार नहीं करेगा बल्कि वह भाव से अपना परामर्श देगा । परामर्श बड़ी उत्तरदायित्वपूर्ण होया जो किसी ऐसी समस्या के बारे में दिया जाए, जिसका समाधान असंभूत करना हो । इस प्रकार अन्ध परामर्श ( मंत्रबुद्धि ) भी मिलता है और उसकी गोपनीयता ( गुप्ति ) भी सुनिश्चित रहती है । कौटिल्य ने इस पद्धति को अनिश्चित (अन वस्वा ) ठहराकर उस पर आपत्ति की है । कौटिल्य का यह मुताबक है कि राजा के तीन या चार स्थायी परामर्शदाता नियुक्त किये जाने चाहिए । वह दो परा मर्शदाताओं के पक्ष में नहीं जा क्योंकि उसे यह भय था कि वे कभी राजा के विचारों में एक न हो जाएँ । परन्तु राजा को इस बात का पूरा अधिकार होना चाहिए कि वह आवश्यकतानुसार ( वेदकाल-कार्यवसेन ) अन्ध-अन्ध समस्याओं पर उनमें से केवल एक या दो ही से परामर्श करे ।

मंत्र या नीति के उद्देश्य मंत्र को सम्मान कहा गया है । शासन की नीति का सम्बन्ध निम्नलिखित पाँच बातों पर विचार करने के साथ है । पहली बात है देश की प्रतिरक्षा तथा उचित वैदेशिक सम्बन्धों को सुनिश्चित बनाने के उपाय तथा सामन ( कर्षणामारम्भोपाय ) । दूसरी है मानव-बल तथा भौतिक सम्पदा के सम्बन्ध में राज्य के साधन ( पुण्यधन्य-सम्पत् ) । तीसरी है कोई भी कदम उठाने के लिए उसका समय तथा स्थान निर्धारित करना ( देश कालविज्ञान ) । चौथा विषय है अकस्मात् कोई विपदा या पड़ने पर पहले ही से उसका सामना करने का प्रबन्ध रखना ( विनिपात-व्यतिकार ) । पाँचवीं बात है प्रजासुखतामक उपायों को सफलतापूर्वक सम्पन्न करना ( कार्यसिद्धि ) ।

मंत्रिपरिषद् मंत्रियों जबका परामर्शदाताओं न इस छोटे-से निश्चय के अतिरिक्त राजा की एक नियमित मंत्रि-परिषद् भी होनी चाहिए । मनु न अनुयायियों ने इनकी संख्या १२, बृहस्पति के अनुयायियों ने १६ और उशना के

अनुयायियों ने २ निर्धारित की है परन्तु कौटिल्य के मत से मंत्रियों की संख्या आवश्यकताानुसार ही होनी चाहिए । इससे स्पष्टतः यही पता चलता है कि कौटिल्य बहुत बड़ी मंत्रिपरिषद् के पक्ष में था । उसने अपने मत के पक्ष में इस की १ • अधियों की परिषद् का ब्योप्य दिया है । यद्यपि इस की दो ही शर्तें हैं पर उन्हें हजार शर्तों वाला माना जाता है क्योंकि ये शर्तें उनकी शर्तें हैं ( तस्माद् इमं व्यवर्त्त सहस्राधिकाः ) [ I १५ ] । कौटिल्य ने राजा की मंत्रिपरिषद् में की संख्या को राजत्व का गुण बताया है । उसके मतानुसार जो राजा समुद्रपरिवर्त्त होता है अर्थात् जिसकी मन्त्रिपरिषद् बहुत छोटी होती है वह अपनी शक्ति के एक बहुत महत्वपूर्ण कोट से वंचित रहता है [ VI १ ] । यह बात उल्लेखनीय है कि चन्द्रगुप्त के समय में बहुत पहले पाणिनि ने जिसका जीवनकाल ५ ई पू से पहले ही समाप्त हो गया था परिषद् का उल्लेख राजत्व के अमिश्र षष्ठ के रूप में किया है । पाणिनि ने लिखा है [VI, ४४४] कि परिषद् के सदस्य को 'परिषद्' और वह राजा जिसकी शक्ति अपनी परिषद् के कारण सुदृढ़ होती हो उस 'परिषद्' कहा जाता चाहिए [ V २ ११२ ] ।

मंत्रिपरिषद् की कार्य-प्रणालि : कौटिल्य ने यह भी बताया है कि परिषद् में राजा को किस कार्य-प्रणालि के अनुसार काम करना चाहिए । जैसा कि पहले बताया जा चुका है प्रशासन-सम्बन्धी कुछ ऐसे कार्य होते थे जिन्हें राजा को अपनी पूरी मंत्रिपरिषद् के साथ बैठकर निबटाना पड़ता था । उदाहरण के लिए, जब तक मंत्रिपरिषद् के सदस्य उपस्थित न हों तब तक राजा बिदेसी राजाओं के राजदूतों से भेंट नहीं कर सकता था । सामारकतया उस प्रशासन-सम्बन्धी सात कार्य अपने मंत्रियों के साथ बैठकर ही करना होता था ( अस्तमेस्तह कार्याणि पर्येतु ) । यदि परिषद् का कोई सदस्य उपस्थित न होता था तो वह पत्र भेजकर उसका परामर्श पूछता था ( आत्मैस्तह पत्रसम्प्रेषणेन संप्रेतेत् ) । यदि कोई आवश्यक काम था पड़ता था तो राजा अपने मंत्रियों ( मंत्रिभ्यो ) और अपनी मंत्रिपरिषद् ( मंत्रिपरिषद् ) दोनों ही को अपने सम्मुख बुलाकर वह समस्या उन्हें समझाता था ( श्रूयत ) । सामारकतया वह मंत्रियों तथा मंत्रिपरिषद् के सदस्यों की उन समुक्त मन्त्रा के बहस की रूप के अनुसार ( तत्र यद्भूमिच्छाः ह्यस्मान् कर्मान् ) या जो नगरों की दृष्टि से उपयुक्त समझा जाता था ( कार्यं तिष्ठिरम् ) उसके अनुसार कोई काम उठाता था ।

अगोष्ठ की मंत्रिपरिषद् : अगोष्ठ के स्रोतों में इसकी 'परिषद्' का उल्लेख मिलता है ( निमात्रेण ३ तथा ६ ) । अगोष्ठ ने कहा है कि जब कोई बहरी समस्या ( आचार्यादि या मन्त्रिपरिषदि—कौटिल्य का आचार्यादि ) उठ पड़ी होती थी तो वह उसे अपने मंत्रियों ( गणमान् ) की परिषद् ( परिषद् ) के सम्मुख

प्रस्तुत करता या और वे उस पर (ताप अडाय) विचार-विमर्श या बाद-विचार करते थे ( विचारो निवृत्ति ) ।

यह बात भी ध्यान में रखने योग्य है कि विष्णुवर्धन ( पृष्ठ १७२, नारैस बाल्य संस्करण ) के अनुसार ( अंगुष्ठ के पुंश ) बिंदुसार के ५०० अमास्य थे ।

पतञ्जलि ने अपने महाभाष्य में 'अत्रमुत्त-समा' का उल्लेख किया है ( प जिनि I ११८ पर भाष्य ) ।

परिपद् का सचिव मंत्रिपरिपद् का अपना सचिव होता था जिस पर उसके कार्यालय की वैधानिक का भार होता था । कौटिल्य ने उसे मंत्रिपरिपत्ता व्यवसाय कहा है ( I, १७ ) ।

यूनानी दुतांत अब हम राजा की मंत्रिपरिपद् के विषय पर यूनानी लेखकों की साक्षी पर विचार करेंगे ।

डियोडोरस : डियोडोरस ने मेगास्थनीज की रचनाओं का जो सार-संग्रह तैयार किया है उसमें उसने 'सार्वजनिक समस्याओं पर विचार-विमर्श करनेवाले परिपत्सवस्या' ( कौंसिलरों ) तथा निर्धारकों ( असेसरों ) का उल्लेख किया है । यह सबसे व्यवस्थित पर सबसे सम्मानित वर्ग है । इसके सदस्यों के खरिब तथा उनकी बुद्धिमत्ता का स्तर बहुत ऊँचा है । क्योंकि उन्हीं के बीच से राजा के परामर्शदाता राजकोषाध्यक्ष तथा सगड़ों का फैसला करनेवाले न्यायाधीश चुने जाते हैं । सेनापति और प्रधान वंशाधिकारी भी बहुधा इसी वर्ग के होते हैं ।

हनाबो : राजा के "परिपत्सवस्यों तथा निर्धारकों" का उल्लेख करते हुए हनाबो ने लिखा है कि 'वासन-व्यवस्था न्यायालय तथा सार्वजनिक प्रशासन के सर्वोच्च पदों पर यही लोग आसीन हैं । ( XV I ४६९ )

एरियन : एरियन ने लिखा है "राज्य के कुछ परिपत्सवस्य होते हैं जो जन-साधारण से सम्बन्धित समस्याओं को निबटाने में राजा या स्वशासित नगरों के वंशाधिकारियों को परामर्श देते हैं । सदस्यों की संख्या की दृष्टि से यह बहुत ही छोटा वर्ग है परन्तु अपनी अल्प बुद्धिमत्ता तथा न्यायप्रियता के कारण यह वर्ग विशेष रूप से प्रतिष्ठित है और इसीलिए इस वर्ग को यह श्रेय प्राप्त है कि राज्यपाल प्रांतों के प्रधान उप राज्यपाल राजकोष-निरीक्षक सेना तथा नौसेना के सेनापति कृषि का निरीक्षण करनेवाले नियमक तथा आयुक्त इसी वर्ग में से चुने जाते हैं" ( इंडिका XI, १२ ) ।

गवर्तनों की परिपद् : यह बात उल्लेखनीय है कि एरियन के अनुसार मंत्रिपरिपद् राजनीतिक तथा गणराजिक दोनों ही प्रकार के सचिवानों का वर्ग थी । हम पहले देख चुके हैं कि यौर्मकासीन भारत की राजनीति में प्रमुख रूप से भाग लेने वाली गणराजिक बातियों की संख्या मिलनी अधिक थी ।



ये ही अमार्ग्य हैं। हमें इस बात पर भी ध्यान देना चाहिए, कि मुनानी कृतांतों में परिपत्सवस्यों तथा निर्धारकों का जो विवरण मिलता है वह कौटिल्य द्वारा दिये गए उन पदाधिकारियों के विवरण के ही अनुरूप है। जिन्हें उसने 'अमार्ग्य' कहा है। इन्हीं अमार्ग्यों में से कुछ विशेष परीक्षाओं तथा योग्यताओं के आधार पर मंत्रियन तथा विभागाध्यक्ष चुने जाते थे। इस प्रकार अमार्ग्यों के इस निष्ठाव पर ही वेत की राज-सेवा का अवलम्ब था जिसके लिए सर्वोच्च योग्यता रखनेवाले लोग ही चने जाते थे।

मन्त्री अथवा प्रधान मन्त्री कौटिल्य की प्रशासन-व्यवस्था की पूरी योजना का वर्णन इन रूप में प्रकाश कर सकते हैं। सबसे पहले तो राजा सबसे अधिक अपने मन्त्री पर और अपने पुरोहित पर निर्भर रहता है। प्रशासन में उनका पद सबसे ऊँचा माना जाता था। उनके बाह्य राजा के मंत्रियों अथवा परामर्शदाताओं का स्थान है जो (मन्त्रिय-मंत्रिमण) कहलाते हैं इसी श्रेणी में मंत्रियों का वह दूसरा वर्ग भी आता है जो मंत्रिपरिषद् के सदस्य होते हैं। ये सभी उन पदाधिकारियों की श्रेणी में आते हैं जिन्हें अमार्ग्य कहा जाता है।

मन्त्री का पद भूमि मन्त्री को ४८, ० पण वेतन मिलता था जो सर्वोच्च वेतन था इससे पता चलता है कि मुख्य मन्त्री का पद उन्नीस का होता था। जो मन्त्री मन्त्रिपरिषद् के सदस्य होते थे उन्हें केवल १२ ०० पण वेतन मिलता था।

योग्यताएँ : मुख्य मन्त्री भी योग्यताओं के सम्बन्ध में यह निर्धारित है कि उसे वैद्य का निवामी (ज्ञानपथ) होना चाहिए। उसे वैयाकरण (ग्रन्थम) विद्वान् अथवा (वाग्मी) साधन संपन्न (प्रतिपत्तिमान्) विस्मय ईमानदार तथा स्वस्व दाना चाहिए।

अप्रामात्य यह बात उल्लेखनीय है कि विष्णुवर्धन ने अनुसार अष्टांगसूत्र के पुनर्निर्माण का प्रयास मन्त्री जिसे अप्रामात्य कहते थे गणनादक या और अक्षरों का अप्रामात्य गणनृत्त था।

पुरोहित, प्रथम कौटिल्य या मन्त्री : पुरोहित के बारे में यह कहा गया है कि उगबन्धो तथा छ वेदांगों व्याप्ति (वैद्य) दण्ड-विचार (निमित्त) और शासन तथा (इष्टनीति) तथा अथर्ववेद के प्रयोगों का पठित होना चाहिए। "राजा का उत्तरा ईमे ही आज्ञायारी रहना चाहिए, जैसे प्रिय अपने मूल का पुनर्जन्म निता का और और अपने मासिक का आज्ञायारी होता है। इस प्रकार शासकों के पावन-गोपण में रहकर एक वाच्य मन्त्री से शासन-कला सीखकर और शास्त्र के आदेशों द्वारा अनुगमन द्वारा राजा मन्त्र पर भी विचार प्राप्त कर लेता" (I) ।

पत्र-सेवा आयोग : प्रधान मन्त्री और पुरोहित के पदों का बहुत बड़ा शासि-

यात्रिक महत्त्व होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि राजा स्वयं उन जमाओं को नियुक्त करता था जो (क) प्रधान मंत्री तथा राज-पुरोहित के रूप में या (ख) उन तीन या चार मंत्रियों के समूह के रूप में जो राजा के मंत्रियों अथवा परामर्श-दाताओं के रूप में सर्वत्र उसके पास उपस्थित (अवस्थित) रहें या (ग) मंत्रिपरिषद् के सदस्यों के रूप में उसके मंत्री रहें। इन तीन धर्मियों के मंत्रियों के प्रतिरिक्त अन्य सभी पदाधिकारियों की नियुक्ति का फैसला राजा अपने प्रधान मंत्री तथा राज-पुरोहित के साथ मिलकर (मंत्रिपुरोहित सपर) करता था (I १०)। इस प्रकार इन दो मंत्रियों और राजा की एक अंतर्गम परिषद् होने की जो उच्च प्रशासनिकारियों का जैसे विभागाध्यक्षा को नियुक्त करने के लिए एक जन-सभा आयोग की तरह काम करती थी। इन पदाधिकारियों की नियुक्ति बौद्धिक तथा नैतिक दाना ही प्रकार की योग्यताओं के आधार पर उन लोगों में से की जाती थी जिन्हें जमाओं के पद के लिए योग्य समझा जाता था (I, ८)। उन्हें धर्म (कर्म) अथवा (धर्म) काम (नैतिक आचरण) तथा धर्म के सम्बन्ध में प्रसन्न देखकर उनकी परीक्षा की जाती थी (I, ११)।

यह जान सम्भवनीय है कि मेघास्थनीय ने भी इस बात का उल्लेख किया है कि राज्य के सभी उच्च पदाधिकारियों को प्रांतीय राज्यपालों तक को एक परिषद् ही नियुक्त करती थी।

नियुक्ति के सिद्ध परीक्षाएँ पहली परीक्षा में किसी पुरोहित का झूठमूठ पश्चम्युत करके जमाओं के बीच भेज दिया जाता था और वह उन्हें इस कामार पर राजा के विरुद्ध विशाह करने के लिए उकसाता था कि वह अपायिक है। दूसरी परीक्षा में किसी सेनापति को पैसा या धन का आगेप कनाकर झूठमूठ निकाल दिया जाता था कि वह जाकर जमाओं को राजा की हत्या करने का पक्षधर करने के लिए रुपये-पैसे का प्रसन्न है। तीसरी परीक्षा में एक युद्धकर स्त्री को सामुग्री (वर्तिकात्मिका) के भेष में महामात्रों का पक्षधर करने के लिए नियुक्त किया जाता था वह जाकर बारी-बारी से प्रत्येक से कहती थी कि राजा उससे प्रेम करता है। चौथी परीक्षा में मंत्रियों को राजा की हत्या के पक्षधर में सम्मिलित होने के लिए प्रसन्न किया जाता था (उपर्युक्त)।

पदाधिकारी चुनने का सिद्धांत : ग्यावात्रियों के पदाधिकारियों को नियुक्ति पदाधिकारियों की नियुक्ति के सम्बन्ध में नियम यह था कि जो जमाओं वय-परीक्षा में उतीर हीं उन्हें ग्यावात्रीय नियुक्त किया जाए—बीरानी के धी (धर्म स्त्रीय) और फौजदारी के धी (कष्टकधीयन) (उपर्युक्त)।

राजत्व तथा राज-अधिकार जिन जमाओं के नियम में यह निश्चित हो जाता था कि वे चुन गरी सेते उन्हें राजत्व तथा राज-अधिकार से सम्बन्धित बिनायों

का अध्ययन नियुक्त किया जाता था (समाहृत-समिधातुनिधय-अकर्मसु) [ उप-  
र्युक्त ] ।

रतिबाध जो अमास्य काम-आसनाया के प्रलोभन से परे सिद्ध होते थे वे  
स्त्रियों से सम्बन्धित विचारों का मात्र संश्लेष के लिए सबसे योग्य समझे जाते  
थे । राजधानी और सुदूर-स्थान स्थानों में भी राजा के रतिबाधों की देखभाल  
का काम उनके सुपुत्र किया जाता था (आह्वयाम्यन्तर-विहाररक्षासु) [ उपर्युक्त ] ।  
राजधानी के बाहर राजा के जो रतिबाध होते थे उनमें राजा की रक्षक (भोगिन्य)  
और राजमांस के रतिबाध में रतिदायी रक्षक भी जिन्हें 'वेदी' कहा जाता था  
(टीकाकार) ।

अथर्ववेद के रतिबाध इस प्रसंग में यह बात उल्लेखनीय है कि अथर्ववेद ने  
अपने एक स्तर में (मिताक्षेप ५) अपने और अपने माह्वय के रतिबाधों (ओपे-  
धन) का और अपनी बहनों के निवास-रक्षकों का उल्लेख किया है जो पाटलिपुत्र  
में भी थे (हिं पटलिपुत्रे च) और बाहर के नगरो में भी (बहिरेषु च नगरेषु) ।  
अथर्ववेद ने अपनी दूसरी रानी (दुतीयाये बेबीये) का भी उल्लेख किया है जिसका  
नाम बारबाकी था और जो राजकुमार तीवर की माँ थी । अथर्ववेद ने कौरावनी  
के बाहिर नगर में उसके निवास-स्थान का भी उल्लेख किया है । अपने आठवें  
स्तर में अथर्ववेद ने एक जगह फिर अपनी रानिया का और पाटलिपुत्र में  
उषा प्राता में (विमासु) अपने रतिबाधों का उल्लेख किया है और उसने अपने  
पुत्रों का भी उल्लेख किया है इनमें उनकी रानिया के पुत्र (बेबीकुमार) और  
दूसरी पत्नियाँ के पुत्र (बारक) का उल्लेख भी । कौरावनी के आदेशों का पालन  
करते हुए अथर्ववेद ने भी इन रतिबाधों की देखभाल के लिए 'धर्ममहामात्र' नामक  
विशेष पदाधिकारी नियुक्त किए थे । वरन् यह विचार मन में उठता है कि  
इन पदाधिकारियों की उपाधि 'धर्ममहामात्र' ही इस बात की द्योतक है की इनकी  
परीक्षा कौरावनी की धर्म-उपवा अथवा काम-उपवा द्वारा की गई होगी (धर्म-  
परीक्षा में काम का भी समावेश मानकर) । अपने १२वें मिताक्षेप में भी अथर्ववेद  
ने इस विषय पदाधिकारियों की नियुक्ति की बातचीत की है जो स्त्रियों के हितों  
का ध्यान रखते और उनमें उच्च स्त्री-अध्यक्ष-महामात्र की उपाधि से विभूषित  
किया है । अथर्ववेद के अनेक रतिबाधों का उल्लेख करमबाधे 'न धिक्काहेतो' के  
अतिरिक्त हमें महसूस है यह बात चलना है कि जिस समय अथर्ववेद उद्भूत में  
उप-राजा के पद पर नियुक्त था उस समय उसने अदिवा-महादेवि-वास्यदुमारि  
नामक एक महिला से विवाह किया था । जब अथर्ववेद राजा बनकर पाटलिपुत्र  
गया वहाँ वह अपनी पटरानी (अथर्ववेद) अगन्विनिधा के साथ रहना था  
तो वह उनके साथ नदी किनारे भी बसित वह दरिना में ही रही इस प्रकार

बसिना एक और सुदूर स्थान या जहाँ अपोष्ठ का रहनास था (V ८५ तथा ८६) ।

राजा ने अंगरक्षकों की नियुक्ति अथ में वे पदाधिकारी के त्रिगुह भय छु भी नहीं गया था और जिन्हें किसी भी उपाय में राजा के प्रति स्वामिमक्ति के पक्ष से विश्वास नहीं किया जा सकता था । ये पक्ष स्वामिमक्ति भाग अपने प्राणा की परबाह न करनेबास और हर समय सर में कष्टन बाँधे रहनाबास लोग राजा के अपरान्तक चुने जाने थे (आसन्न-बाँधे) ।

सुदूर स्थित चौकियाँ या पदाधिकारी उपर्युक्त परीक्षाओं में से किसी में उत्तीर्ण नहीं हो पाते थे वे कहीं दूर लाना उच्छ्वा की जगहों हाथिया के जगहों या कारवाणा (कर्मन्त) के निरीक्षक नियुक्त किए जाते थे ।

मंत्री जो असाध्य उपर्युक्त चारा परीक्षाओं में उत्तीर्ण होते थे वे उपर्युक्त तीन धर्मियों में से किसी भी धर्म के मंत्री के सम्मानित पक्ष पर नियुक्त किए जाने के योग्य समझे जाते थे ।

साधारण कर्मकारी यह भी निश्चित कर दिया गया था कि जो लोग असाध्य बनने की साम्यता रखते होंगे पर जिनकी परीक्षा नहीं की गई होगी और जिन्हें परना नहीं गया होगा वे सामान्य विभागों (सामान्य-अधिकरण) में नियुक्त किए जाएँगे ।

राजदूत सचिव तथा विभागाध्यक्ष असाध्य राजदूत (नितुष्टाक) के पक्ष पर भी नियुक्त किए जा सकते थे । जिस असाध्य में राजदूत बनने की पूरी योग्यताएँ नहीं होती थी उस विशेष शिष्टमंडला में (परिमितार्थ) या राजाओं के बाह्यक कक्ष में (सात्तनहर) नियुक्त किया जाता था [I १६] । असाध्यों को लेखक अर्थात् राजा के पक्ष-अधिकार सचिव के पक्ष पर [II १०] और विभागाध्यक्ष के पक्ष पर [II, ९] भी नियुक्त किया जाता था ।

गुप्तचर विभाग : कौटिल्य ने यह भी लिखा है [I ११] कि राजा अपने मंत्रियों के सहयोग से प्रशासन के गुप्तचर विभाग के पदाधिकारियों की नियुक्ति करता । इस विभाग में जिसका काम बाह्य कठिन माना जाता था नियुक्ति के लिए कर्मचारियों को चुनने का काम असाध्यवर्ग के ऐसे लोगों को ही सौंपा जाता था जो अपनी योग्यताएँ भिन्न कर चुके हों (उपपाधिकार) । इसका मत यह तो यह है कि उन्हें चुनने का कार्य मंत्रियों के एक वर्ग के सुपुत्र या जिनमें प्रधान मंत्री पुरोहित और राजा के परामर्शदाता उपर्युक्त मंत्रिण ही होते थे । क्योंकि कौटिल्य ने यह निश्चित कर दिया था [I १] कि जो असाध्य सभी समय परीक्षाओं में सरे उतरेसे उन्हें मंत्री नियुक्त किया जाएगा (सर्वोपपाधुडान मंत्रिण कर्मन्त) ।

राजा की असाधारण दक्षिणता : यह बात ध्यान देने योग्य है कि मंत्रियों गुप्तचरो तथा विभागाध्यक्षों जैसे उच्च पदाधिकारियों का नियन्त्रण करने का अधिकार अपने हाथ में रखने के अतिरिक्त राजा की भीतरी (अन्तर) अथवा बाहरी (बाह्य) संकटों (क्रोध) से उत्पन्न होनेवाली आपातक परिस्थितिया का सामना करने के लिए भी अपने हाथ में कुछ असाधारण दक्षिणता रखनी पड़ती थी। आन्तरिक उत्पात राज्य के लिए अधिक गम्भीर होता है और उसे सस्ती से कबल दबा आवश्यक होता है। यह कहा गया है कि इस प्रकार का उत्पात राजा के निम्नलिखित सर्वोच्च पदाधिकारियों के विद्रोहवादा अथवा झोड़ के कारण उत्पन्न होता है (१) मंत्री (प्रधान मंत्री) (२) पुरोहित (३) सेनापति, (४) मुखराज। यदि दोष राजा का हो तो स्वीकार करके उस दोष त्याग देना चाहिए (अपराधोप-त्यागेन)। यदि दोष उसका न हों तो उसके धामने केबल यही चारा रह जाता है कि वह या तो उन्हें बर्बाद बना के (संशोधन) या उन्हें बेगनिनामा (अवलाकन) करे। यदि मुखराज राजद्रोह करे, तो उसे अधिकतम दंड (निषह) दिया जाना चाहिए। अन्य पदाधिकारियों (अन्यत्यों) को राजद्रोह के लिए दण्डित दंड दिया जाना चाहिए (यथाशुपायान प्रापुञ्जित)।

बाहरी उत्पात के अन्तों की उत्पत्ति का कारण निम्नलिखित पदाधिकारियों के विद्रोह का बनाया गया है (१) राज्यमुख्य ( ) अन्तपाल (३) आठबिड़ (४) पराधीन राजा (इच्छोपलन)। इन वर्गों को दूर करने का उपाय यह बताया गया है कि एक को दूसरे से भिड़ा दो (तम योऽन्नावप्राह्येत) [I. १]।

प्रशासन तथा सभा के नियम कौटिल्य ने दो नियम भी द्दिष्ट कर दिए हैं जिनसे अनुसार विभागाध्यक्षों को अपने विभागा का प्रशासन चलाता चाहिए [II]। प्रत्येक विभाग के अध्यक्ष का अनिवार्य वर्तव्य हम बात को देखना है कि वह अपने विभाग के आय-व्यय को 'म प्रचार' समुचित करे कि आय का जो अनुमान लगाया जाए वह अनुत्त हो जाए। कौटिल्य ने विभागा के अध्यक्ष का अध्यक्ष की मन्त्रा भी दी है और उनका लिए उपयुक्त अथवा उच्च पदाधिकारियों की व्यापक सभा का प्रयोग भी किया है (युक्तानां उपरि नियुक्तः)। विभागाध्यक्ष की नियुक्ति उन वर्ग के लिए उनकी उपयुक्तता के आधार पर (धर्मेण) की जानी चाहिए। उस आदेशों के अनुसार (यथा संवेगम्) नाम करना चाहिए और 'आप तम जाने या बाढ़ आ जाए' जैसी आपातक परिस्थितियों को छोड़कर उसे पहले से अनुमान लिए बिना कोई ऐसी योजना नहीं आरंभ करनी चाहिए, जिसमें बहुत धन व्यय होने वाला हो। यदि कोई अपना नाम निम्नलिखित आदेशों के अनुसार चुन करे या आदेशों में अन्धता नाम करे तो उसे बरीजति तथा अमान्य शास (स्यामनामी) पुरस्कार दिया जाना चाहिए। अनुमान

से अधिक राजस्व नहीं बसूल किया जाना चाहिए। क्योंकि ऐसा करना 'देम को सा जान' के समान होगा (जनपद भण्डार)। विभागाध्यक्ष का मुख्य काम यह है कि वह सामान्य रूप से भी और विस्तृत परीक्षण द्वारा भी धान तथा अन्य के हिसाब की जाँच करे।

हम देखते हैं कि अधिकतर विभागाध्यक्षों को मुखमिस्त्र कैंबों में और देम के पीठरी भाग में काम करना पड़ता था। वहाँ विभागाध्यक्ष को उन खेपों पर कड़ी नज़र रखनी पड़ती थी जो अपनी पैतृक सम्पत्ति से अपम्य्य करके विवाहिमेधन की ओर बढ़ रहे हों (मूलहृद) या जो पञ्चगव्य हों और कुछ न बचाते हूँ बल्कि एक हाथ से जो मित्ता हो उससे दूसरे हाथ से उड़ा देत हों (लाहात्मिक) या जो घोर बज्रस (कर्म) हों और कुछ मुखे खूँकर तथा अपने परिवार वालों को नुका रखकर धन जोड़ते हों (धाम्म्यतमपीडाध्यामुपविनो र्त्थम्)। उस कृपण तथा धनवान् पूजोपस्थियों की धन-धन्य की छेम-देन पर विशेष धन से कड़ी नज़र रखनी चाहिए और यह देखना चाहिए कि वे अपने घरों में जमीन में पाहकर या ओसके ढोंगों में छिपाकर किस प्रकार धन जमा करते हैं (स्वधेस्मनि भूधर्तस्तमकौटरादिषु) या किस प्रकार वे छद्मों या पाँवों के ओलों के पास अपना धन जमा करते हैं (अवधिषत्ते वीरजानपदेव) या किस प्रकार वे उसे जोरी से विदेशों को भेज देते हैं (अवज्ञावपत्ति परिधिषये)। इस प्रकार के लीम लागे बसकर देस के लिए सत्तरनाक छिड़ हो सकते हैं क्योंकि वे तरह-तरह के उपायों से कर देने से बचते हैं और राज्य की समृद्धि में बड़ा उचित योग नहीं देते।

चूँकि विभागाध्यक्ष का काम मुख्यतः रुपये-पैसे का और इस बात का ध्यान रखना होता है कि उसके विभाग का काम बनावान के कारण टप न हो जाए, इसलिए उसके काम में सहायता देने के लिए उसके साथ कई जाब दबक पदाधिकारी होने चाहिए। इन पदाधिकारियों के नाम ये हैं : हिसाब-किताब रखनेवाला (संख्यामक) सिकने वाला (लेखक) गुआ की परतनेवाला (बचवसंक) कोषाध्यक्ष (नीबीपतृक) और हम सबके ऊपर एक उच्च पदाधिकारी (उत्तराध्याय = बीपरिक)। इस उच्च अधिकारी के पद पर सेवा निवृत्त सेनिक अधिकारियों को नियुक्त किया जाना चाहिए (बृद्धभावादिना बुडालनत्थ)।

यह भी कहा गया है कि हर विभाग में कम से कम विभागाध्यक्ष (धुमुत्थ) होने चाहिए, परंतु उनकी नियुक्ति स्थायी रूप से नहीं बल्कि थोड़े समय के लिए (अन्विष) ही की जानी चाहिए। 'स्थायी' नीकरी के कारण जो सुरक्षा प्राप्त हो जाती है उससे कर्मचारी के स्वतंत्र तथा कुष्ट हो जाने का खतरा पैदा

हा जाता है और देसवासियों (बाणपदाः) को उसके शेरों की सिफायत करने का कोई उत्साह नहीं रह जाता ।

प्राधिकारियों को यह भी आदेश दिया गया है कि वे यवन के शिक्षाक सठक रहें क्योंकि जिन राज-कर्मचारियों का हाथ में बहुत पैसा आता है उनकी ओर से इस बात का मनरा रहता है । यवन को पकड़ना उसी प्रकार कठिन होता है जैसे इस बात का पना समाना कि पानी में तैरनेवाली मछली जब पानी पी करती है । जो राज-कर्मचारी अष्टाचार अथवा यवन के अपराधी हा उनके निम्नाक्त कार्रवाई की जानी चाहिए और सार्वजनिक दोष का जो वन उन्होंने गवन किया हों वह उनमें बागम करा सेना चाहिए (आत्मावपकचोपक्षितान्) । इसके अतिरिक्त उन्हें अपने पद हैं हटाकर नीचे पद पर नियुक्त करके बड़ दिया जाना चाहिए (विपयस्य कर्मसु "कर्मसु विपयस्य व्यस्यसेन निवेदयेत् पञ्च कर्मस्थानेभ्यो-वरोप्य नीचकर्मस्थानेषु नियुञ्जीत्") । इस प्रकार यवन के लिए दो बड़ विहित हैं (१) आत्मावप (यवन किया हुआ वन बागम कराना) और (२) विपयस्य (पद पगाना) । दूसरी ओर उन पदाधिकारियों को जो न केवल सार्वजनिक दोष से वन का रवन न करें, बल्कि व्याप के अनुसार (म्यापत) उनमें बुद्धि भी करें, उन्हें उनके पद पर स्थायी रूप से नियुक्त कर दिया जाना चाहिए (निर्यापिकारः) ।

राजसेवा के नियमों में पता चलता है कि कुछ समय तक प्रत्येक राज-कर्मचारी का नाम रक्ता जाता था और यदि उसका काम अच्छा होता था तो उसकी नीकरी पक्की कर दी जाती थी ।

बेतन तथा सेवा की शर्तियाँ : पूरी राजसेवा विभिन्न कौटिल्यों में विभाजित थी और हर कौटिल्य के लिए अलग-अलग बेतन निश्चिन्त थे । कौटिल्य ने इन कौटिल्यों का विवरण दिया है (१३) जिससे यही शक्ति पता चलता है कि हम के विविध हिना तथा उनकी बहुमुखी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए जो प्रणामन-व्यवस्था स्थापित की गई थी वह कितनी व्यापक तथा अटल थी । परन्तु कौटिल्य ने प्रणामन के सम्बन्ध में एक नियम यह भी बना दिया था कि उन पर प्रणामन राजस्व के चौथा भाग है अधिक व्यय नहीं किया जाना चाहिए (कुम् जनपदास्था भूत्यकर्म समुहप्राप्तेन स्थापयेत्) [१३] । बेतन के हिसाब ने कौटिल्य ने इन पदों की जो शर्तियाँ बनाई हैं वे इस प्रकार हैं—

४८००० पत्र बेतन पानवाने

१ मंत्री (प्रणाममन्त्री) ।

२ पुण्डित ।

३ सेनापति ।

#### ४ युवराज ।

राज-परिवार के निम्नलिखित सभ्यो तथा घरवालों को भी इतना ही गुबारा मिलना वा राजपुत्र (भाचार्य) या करनेवाला पुरोहित (ब्रह्मचर), यानी (राज-महिषी) और राजमाता ।

२५००० पण बेतल पानेवाले

- १ राज-प्रासाद का रक्षक (बीवारिक) ।
- २ रतिबाम का निरोधक (अंतर्द्वारिक) ।
- ३ अस्त्रास्त्रों का प्रधान अधिकारी (प्रणास्तु) ।
- ४ प्रधान कर्मचारी (समाहृत) ।
- ५ प्रधान कोषाध्यक्ष (समिपस्तु) ।

१२,००० पण बेतल पानेवाले

- १ नगर का मुख्य (वीर-व्यावहारिक) ।
- २ द्वार तथा बर-प्रवेशों का निरीक्षक (कामांतिक) ।
- ३ मंत्रि-परिषद् के सचिव ।
- ४ प्रांतों के सासक (राष्ट्रपाल) ।
- ५ सीमांत प्रदेशों के रक्षक (अंतपाल) ।
- ६ अस्त्रधरा का सेनापति (कुमार-अभ्यानुषंग)
- ७ अस्त्री सैनिकों के रिमाळे का सेनापति (कुमार-माता अग्नीविजय-सेता) ।
- ८ पैदल सेना का सेनापति (सायक-परास्तिसेता)

८,००० पण बेतल पानेवाले

- १ घोड़ियों के सभ्य (घोषी-मुख्या) ।
- २ हाथियों रत्नों तथा जोड़ों की देखभाल करनेवाले प्रधान अधिकारी (हस्त्यधरचमुख्या) ।
- ३ आवासीय (प्रवेष्टा) ।

४,००० पण बेतल पानेवाले

- १ पैदल सैनिकों जोड़ों रत्नों तथा हाथियों के निरीक्षक (पस्याधरच-हस्त्याध्यक्षा) ।
- २ हाथियों के जंगलों तथा ककड़ी के जंगलों के निरीक्षक (अव्य-हस्ति-चरपाला) ।

२,००० पण बेतल पाने वाले

- १ रथ-विद्या सिखानेवाला (रथिक) ।
- २ विधिरक्षक ।



१ सभा के घोड़ों को सभानेवाला (अश्वबन्धक)

४ सभा का बर्हू या गिरमी (बर्हूति) ।

५ पशु पालनेवाले (योगिपोषका) ।

९ हाथियों को सभानेवाला (अनीकरक) ।

१,००० पशु बेतन पानेवाले

१ मन्त्रिय विचारनेवाला (कस्तान्तिक) ।

२ राष्ट्रिक बतानेवाला (नेमिस्तिक) ।

३ व्योमिपी (मीर्यस्तिक) ।

४ पुराणों की व्याख्या करनेवाला (वीराविक) ।—

५ सारथी (सूत) ।

६ भारण बंधन गरीबे (मायव) ।

७. पुरोहित के कर्मचारियों (पुरोहितपुण्यव) ।

८. सभी विभागों के अध्यक्ष (सर्वाध्यक्ष) ।

५००—१,००० पशु बेतन पाने वाला

१ किसी वर्ग का प्रधान (अध्यक्ष) ।

२ अंग्रेजी घोड़ों तथा हाथियों को सभानेवाला (मुस्तारोहक) ।

३ अनुमती प्राप्त (मायवक) । (इन्हें अपराध-जीवी पशुओं में से भरत लिया जाता था)।—

४ पत्थर का नाम करनेवाला (दीप्तजनक) या राज-मूर्तिहार ।

५ संवीर के अध्यापकों शिक्षकों और समसास्त्र तथा अर्थशास्त्र के विद्वानों को उपर्युक्त पशु बेतन के रूप में नहीं बल्कि सम्मानार्थ दिया जाएगा क्योंकि उनकी सभाएँ सर्वसाधारण का निःशुल्क उपलब्ध रहनी हैं (सर्वोपलब्ध विद्वान् आचार्य विद्यावन्तश्च पूजायतनानि) ।

५०० पशु बेतन पानेवाले

१ वेदिक संनिक (वाचक) ।

२ हिमाच-विचार करनेवाले (संस्थापक) ।

३ बन्धक (सेवक) ।

४ गिराधार (गिरावन्त) ।

५. संगीत-निर्देशक (सूर्य-करक) ।

२५० पशु बेतन पानेवाले

मन्त्रिय (अनीकरक) ।

१२० पशु बेतन पानेवाले

अन्त गिराधार (काक-गिरमी) ।

### १० पग बेतन पाने वाले

१ परामों तथा पलियों आदि की सेवा करने वाले गौकर-बाकर (परि-  
चारक) तथा उनके प्रधान (पारिकर्मिक) ।

२ राजा के निजी सेवक (जीपस्याधिकारी-परिचारक) ।

३ माय पाकनेवाले (गोपातक) ।

४ घमिक (विष्टि) ।

५ पट्ट-पत्नी आदि पकड़नेवाले (बन्धक) ।

सहिप्रवाहकों (हुत) को वस योजन एवं सहेस के जाने के लिए १० पग  
और मी योजन की दूरी तक सहेस के जाने के लिए २ पग देने का नियम था ।

राजसूय यज्ञ के अवसर पर मंत्री तथा पुरोहित को उनके सामान्य  
बेतन का तीन गुना बिशेष बेतन दिया जाता था । उस अवसर पर राजा के  
सारथी को १ ०० पग दिये जाते थे ।

विभिन्न वर्गों के मृत्पत्रों को १ पग देने का विधान है ।

माँव के कर्मचारियों को (जैसे बोधिया तथा मृत्पत्रों को) ५ पग  
मिलते थे ।

मृत्पत्रों के मीकरों को उनके काम के हिसाब से (प्रयास-बुद्धबेतन वा)

२५ पग या उससे अधिक बेतन मिलता था ।

१ ० से १ पग तक बेतन पानेवाले राजकर्मचारियों को व्यम्हकों के  
अधीन रखा जाता था जो उनके बुजारे पारिकर्मिक पुरस्कार, आदेश तथा  
उन्हें सीपे जाने वाले काम (विशेष) का निश्चय करते थे ।

जब किसी कर्मचारी के लिए कोई काम नहीं रह जाता था (अविशेष),  
तो उन्हें सरकारी इमारतों (राजपरिग्रह) किछों (हुत) तथा राज्य की रक्षा  
के साधनों (राष्ट्ररक्षा) की देखभाल करने के काम पर नियुक्त कर दिया  
जाता था ।

पैशन : सार्वजनिक सेवा के सम्बन्ध में कुछ ऐसे उधार नियम थे जिनके  
कारण इस सेवा का आकर्षण बहुत बढ़ जाता था । जब कोई पदाधिकारी अपना  
काम करते हुए मर जाता था तो उसके पुत्रों तथा उसकी पत्नियाँ को राज्य  
की ओर से मरण-शोषण के लिए भत्ता (मस्त-बतन) मिलता था । मृत पदाधि-  
कारी पर आश्रित उसके उन परिवारवालों का भी ध्यान रखा जाता था जो  
अपनी जीविका नहीं कमा सकते थे जैसे छोटे बच्चे बूढ़ तथा रोगी ।

मकड़ जबवा उपयोग की वस्तुओं के रूप में बेतन की अवस्थायी बेतन  
मकड़ दिया जाता था और उपयोग की वस्तुओं के रूप में भी । जब राजा के  
पास धन की कमी होती थी तब वह जन की पैशावार पशुओं या सेती के लिए भूमि

के रूप में बैठन देता था और साथ में कुछ नकल भी देता था। परन्तु जब नयी अस्थियाँ बसाने की योजना होती थी तो बैठन द्रव्य में ही देने का नियम था [V ३]।

यह बात भी ध्यान में रखने योग्य है कि निम्नलिखित पराधिकारियों को भी भूमि के अनुदान दिए जाते थे परन्तु उन्हें यह भूमि बेचने या किसी और को देने (विष्णुप्राप्तनर्जम्) का अधिकार नहीं होता था (१) अश्वपुत्र (२) सत्पापक (हिमाव-विताव रखने वाला) (३) योग (४) स्वामिक (५) अनीकस्य (हानियों का क्षयने वाला) (६) विविधस्तु (७) अश्वदमक (घोड़ों को क्षयनवाला) और (८) औद्योगिक (आर्थिक सहायक) [II, १]।

साम्यताओं तथा प्रदासनात्मक समताओं के अनुसार विशेष बैठन-मान की भी व्यवस्था थी। (विद्याकर्मभ्यां भस्त्रबैतनविशेषं च कुर्यात्)

सेवा में नियुक्ति बैठन पत्राप्ति बैठन-मान के ये नियम थे जो नागरिक सेवा में काम करने वाले कर्मचारियों की सेवाओं का नियमन करते थे।

## अध्याय ६

### प्रशासन विभाग तथा उनके पदाधिकारी

विभाग तथा पदाधिकारी यूनानी कृतांत चंद्रकुप्त मीन के शासनकाल में मेगास्थनीज ने भारतीय प्रशासन की जो व्यवस्था स्वयं देखी थी उसके आधार पर डसम हज़ विभागों तथा उनके पदाधिकारियों का एक रोचक तथा बहमूल्य विवरण दिया है। ई० आर० बेबन ने जिन्होंने यूनानी कृतांतों के मूलपाठ की बालोचनान्मक परीक्षा की है लिखा है (हेन्डबुक हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया, खंड १ अध्याय १६) "मेगास्थनीज ने विभिन्न पदाधिकारियों का जो विवरण दिया है उसमें पता चलता है कि उस समय एक अत्यधिक सुसंगठित अधिकारी वर्ग (क्यूरोमैट्रो) था। मेगास्थनीज के अनुसार ये अधिकारी तीन प्रकार के थे (१) एप्रोमोमीई 'मिले के अधिकारी' (२) एस्किमोमीई, नगर के अधिकारी' और (३) बडविभाग के कर्मचारी।

मिले के अधिकारी (एप्रोमोमीई) "इनमें से पहले प्रकार के अधिकारियों के क्रम में थे (१) सिचाई तथा भूमि की पैदाइश का निरीक्षण करना, (२) मिकार का निरीक्षण करना, (३) हथि तथा बल-सम्पदा से सम्बन्धित विभिन्न उद्योगों और तकड़ों के काम। मातृ की रखाई के वाग्दानी तथा बालों का निरीक्षण करना और (४) तकड़ों की बेखमाक करना तथा उनकी बरम्भत

कमाना और इस बात का प्रबंध करना कि 'हर बस स्टेडिया' (१½ मील) पर दूरी को इंगित करने वाला पत्थर जगनाया जाए" (इस उद्देश्य से विष्ट होता है कि मेगास्थनीज का मत यह नहीं था कि भारत में कोय भिन्न-भिन्न की वजह से आम तौर पर अपरिचित थे । )

नगर के अधिकारी (एस्टिनोमोर्ह) "दूसरे प्रकार के अधिकारी अर्थात् नगर के अधिकारी पाँच-पाँच सदस्यों के छ मंडलों में विभाजित थे । इनके काम करना था ये (१) कारखानों का निरीक्षण (२) विदेश से आनेवालों की रेलमार्ग जिसमें सरायों पर पूर्ण नियंत्रण सहायक अधिकारियों की व्यवस्था रोगियों की रेलमार्ग तथा मृत लोगों की अंतिम विद्या शामिल थी (३) आम तथा नग्न का हिसाब रखना (४) बाजार पर नियंत्रण रखना (५) नाप तथा तौल का निरीक्षण करना रैवार मार्ग का निरीक्षण करना नदी तथा पुगनी वस्तुओं की अत्यन्त-अत्यन्त विषयी का प्रबंध करना यो" (६) मार्ग की विषयी पर १० प्रतिशत कर वसूल करना ।

"ये छ मंडल सामूहिक रूप से जन-निर्माण-कार्यों कीमतों संवरवाहों तथा मंदिरों की आम देखभाल करते थे ।

इन अधिकारियों में हम मेगास्थनीज द्वारा उल्लिखित निम्नलिखित अधिकारियों को और जोड़ सकते हैं ।

पुरोहित : "आम देववासी जीवन-नाम के लिए निर्विष्ट भूमि को सम्पन्न करने के लिए और मृत्तारामा को पिंड-दान आदि करने के लिए दिन दारिद्र्य निका भी सहायता लेते थे । इन सेवासो के बचने उन्हें बहुमूल्य उपहार तथा विनोदप्रकार दिए जाने थे ।" वास्तव में यह संकेत धर्म-अधिकारियों अर्थात् पुरोहितों की ओर है, जो जनता के धार्मिक हितों का ध्यान रखते थे ।

गुप्तबर्मा 'वे निरीक्षक तिनरा नाम यह है कि भारत में जो कुछ भी हा रहा हो उसकी जाँच-पड़ताल करें तथा उन पर दृष्टि एवं और राजा को उसकी सूचना दें और जहाँ राजा न हों' (अर्थात् उन गणतंत्रों में जिन्हें मेगास्थनीज ने अपने समय में राजपशा जितना ही व्यापक पाया था) "बहुत उच्चनी सूचना दशापीयों (अर्थात् गणतंत्र के प्रमुख अधिकारियों को) दें ।" राजा को ने इससे अनिश्चित यह भी मिला है [११ १, ४६०] : "बहुत लोगों के विषये नगर का निरीक्षण होता था और यह के विषये मेरा का । नगर का निरीक्षण करने वाले नगर की बेरजाओं की ओर सजा का निरीक्षण करनेवाले छावनी की

१ १ योजन = ८ मील १० स्टेडिया = २ २२½ योजन = योजन का छाना भाग = १½ [रीडर डेविड्स बुडिन्ग स्टेडिया पुस्त २६५ पैमिन्स रिमू] । १८५] । पैमिन्स ने १ स्टेडिया को एक भारतीय गंगा अर्थात् कोस के बराबर माना है ।

बेस्याओं की सहायता सेते थे । इस पर पर सबसे योग्य तथा सबसे विश्वस्त लोग नियुक्त किए जाते हैं ।" एरियन ने यह भी लिखा है 'भूटी सूचना देना उनके लिए बर्जित है पर वास्तव में किसी भी भारतवासी पर भूठ बोझने का आरोप नहीं लगाया गया है ।"

परामर्शदाता (कौन्सिलर) राजा के परामर्शदाता राज्य के कोषाध्यक्ष सगुनों का प्रेक्षा करनेवाले पंच" (अर्थात् दीवानों तथा कौन्सिलर के स्वायाधीश) सेना के सेनापति और मुख्य दंडाधीश" (अर्थात् विभागाध्यक्ष जिन्हें कौन्सिल ने नियुक्त कहा है ) ।

मेगास्थनीस ने यह भी कहा है कि राज्य के ये उच्च अधिकारी अधिकारियों के उच्च वर्ग में से भरती किए जाते थे जिन्हें उसने परामर्शदाताओं (कौन्सिलर) तथा जेसेतरी की व्यापक संज्ञा दी है । यह बात उल्लेखनीय है कि अधिकारियों के इसी व्यापक समूह को कौन्सिल ने अग्रज कहा है । वैसे कि हम पहले बठा चुके हैं, कौन्सिल ने भी विभिन्न कौन्सिलरों के अधिकारों और राज्य के अन्य उच्च पदाधिकारियों को इन्हीं अमात्यों में से भरती करने की व्यवस्था की थी जैसे सन्निपता (मेगास्थनीस का कोषाध्यक्ष) स्वायाधीश विभागाध्यक्ष (मेगास्थनीस का मुख्य दंडाधीश कहा है) और अन्य आजीव पदाधिकारी ।

अन्य पदाधिकारी : "पशुपालक तथा चिकारी केवल इन्हीं को पशु पालने और चिकार करने का अधिकार था और वे ही भारवाहक पशु बेच सकते थे या उन्हें किराए पर ले सकते थे । भूमि को उन अन्य पशुओं तथा पक्षियों से मुक्त करने के बदले में जो लोगों में बोले गए बीज या जाते हैं, उन्हें राजा की ओर से कुछ भत्ता दिया जाता है ।

"घस्नात्म तथा कब्र आदि और बहाव बगानेवाले केवल राजा के लिए ही काम करते हैं और उनका पारिवारिक तथा भोजन राजा देता है ।"

इनमें से कुछ केवल घस्नात्म बनाते हैं और बाकी किरानों तथा अन्य घसों के लोगों के उपयोग के बीजार बनाते हैं । इस वर्ग के लोगों को कोई कर नहीं देना पड़ता है, बल्कि उनके भरण-पोषण का प्रबंध भी राज्यकोष से ही किया जाता है ।"

"य पदाधिकारी जो नदियों पर निगरानी रखते हैं जमीन की पैमाइश करों हैं, वैसे कि मिस्र में होता है और उन बस-द्वारों का निरीक्षण करते हैं, जिनके रास्ते मुख्य नहरों से उनकी छायाओं में पानी भेजा जाता है, ताकि हर आदमी को बचकर-बचकर पानी मिल सके ।"

"दैनिक जिनके भरण-पोषण का खर्च राजा देता है और इसलिए बचकर पड़ने पर वे सर्वत्र रजलेन में उतरने के लिए तत्पर रहते हैं, क्योंकि उनके पास

अपने धरीर को छोड़कर स्वयं अपना कुछ नहीं होता ।

“हर बमूल करनेवाले तथा भूमि से सम्बन्धित पेशों पर, जैसे लम्बकहारों बड़इर्यों संहारों तथा कमिका पर नियन्त्री रखनेवाले पराधिकारी ।

“वे पराधिकारी जो सड़कों का निर्माण करते थे और हर इस स्टेडिया की दूरी पर उप-भागों तथा विभिन्न स्थानों की दूरी को इच्छित करने वाले फरार सगवाते थे ।

“राजा की अस्मिताका तथा हस्तिशाला और अस्त्रशाला पर नियन्त्री रखने वाले पराधिकारी ।

इसके अतिरिक्त यह भी किता गया है ‘किसी भी साधारण नागरिक को योग्य या हावी रखने की अनुमति नहीं है । ये पशु राजा की विधिष्ठ सम्पत्ति समझे जाते हैं और उनकी देखभाल करने के लिए लोग नियुक्त किए जाते हैं । बौद्धों को सजानेवाले पेशेवर लोग होते हैं और जब वे किसी बौद्ध को उद्बुध पाते हैं, तो वे एक बत्तक में बीड़ा-बीड़ाकर उस बग में करते हैं । जो लोग इस काम का मार संभालते हैं उनके लिए यह आवश्यक होता है कि वे बलवान हों तथा उन्हें धोड़ों का कुछ ज्ञान हो । जो लोग इस काम में बहुत निपुण होते हैं, वे रथ को बत्तक में बीड़ाकर अपनी निपुणता का परिचय देते हैं और सचमुच मार उद्बुध बौद्धों को एक बत्तक में बीड़ते समयकाशू में रखना कोई आसान काम नहीं है ।

पराधिकारियों की सूची : भारतीय प्रशासन-व्यवस्था के इन यूनानी कृत्ताओं का अध्ययन करने से पता चलता है कि उनमें बहुत बड़ी सख्या में घहरों तथा देहानों सेना ही जगह के प्रशासनात्मक हितों की ओर तथा विभिन्न प्रशासन विभागों में इन हितों की पूर्ति की व्यवस्था करने वाले अधिकारियों की ओर ध्यान दिया गया है । इन कृत्ताओं में विभिन्न विभागों का उल्लेख किया गया है, उनमें से कुछ ये हैं

- १ मंत्री परामर्शदाता तथा मंत्रि-परिषद् के सदस्य ।
- २ मुख्य बंधापीन (विभागाध्यक्ष तथा नगर बंधापीन)
- ३ राजस्व तथा कर ।
- ४ निर्धार ।
- ५ कर्तव्य तथा बरोबन्ध (मु-राबस्व प्रशासन) ।
- ६ इच्छि ।
७. वन उत्पन्न ।
८. न्याय के कारणाने ।
९. पानु की वार्ड के कारणाने ।

- १० घाने ।
- ११ घहणे क कारनाने ।
- १२ नहर में जानेवाले बिन्धी ।
- १३ सराये (नहर की) ।
- १४ बाबरक ठम्प-आकड़े ।
- १५ रोयवा की बेलनाल ।
- १६ बाजार का नियन्त्रण ।
- १७ माप-तौल ।
- १८ जन-निर्वाण कार्य के नियन्त्रक ।
- १ पुरोहित ।
- २० निरीक्षक ।
- २१ कोषाध्यक्ष ।
- २२ न्यायाधीश ।
- २३ पशुपालक तथा सिकारी ।
- २४ धन्नाल बनानेवाले ।
- २५ जहाज बनानेवाले ।
- २६ लोही-बाटी के औजार बनाने वाले ।
- २७ नवियों तथा सिचाई की नहरों के निरीक्षक ।
- २८ हाथी चोड़े रज ।

उपर्युक्त विवरण से हमें पता चलता है कि यूनानी लेखकों ने तो केवल विभिन्न प्रधानमन्त्रिकारियों का उल्लेख मात्र कर दिया था और मोटे-टीरे पर उनके काम बता दिए थे पर कौटिल्य ने विस्तारपूर्वक बताया है कि उनके काम क्या थे और ये विभिन्न विभाग उन्हें छोटे बड़े विभिन्न हितों की व्यवस्था किस प्रकार चलाते थे ।

कौटिल्य की प्रशासन-व्यवस्था जनसब (ग्राम) कौटिल्य की योजना के अनुसार (II १) प्रशासन की "कई जनसब अथवा ग्राम या विममें आम तीर पर कम से कम ८०० गाँव होते हैं और प्रत्येक गाँव में १ ०-५०० परिवार होते हैं (कलकताकरे बङ्गलसतकलपरम्) । यदि एक साधारण परिवार में दो संयुक्त परिवार (कुल) होता था हम तब सक्षम ग्राम में तीन मार्ग और उनके माध्यम्य से हुए प्रांतीय प्रशासन के माधीन ४० लाख लोगों का हिसाब बैठता है । अर्जुन के एक कल [ सर्तमलेख ५ ] में कहा गया है कि प्रांतीय शासक (राजकु) "कई लाख लोगों पर शासन करता था ।

गौर एक-दूसरे से सुनिवाजनक दूरी पर स्थित होते थे ताकि वे सुपक्षित



रह सके (चोस-द्विषीय सीमानामयोप्यारत्तम्) इन दोनों को एक-दूसरे से अलग रखने के लिए यथासंभव प्राकृतिक सीमाओं का काम उठाना जाता था जैसे नदी पर्वत बल आदि (नदीसंलग्नम्) ।

प्रतिरक्षा-व्यवस्था प्राचीन प्रतिरक्षा की व्यवस्था अत्यंत सुसंगठित होती थी । प्रांत में प्रवेश के मार्गों की सुरक्षा के लिए सीमांत बंधिपत्नी होती थी जिनकी निगरानी अठपासों अर्थात् सीमांतसरक्षकों के बिम्बे रहती थी (अनपह-हाराभ्यंतपामादिपित्तानि स्थापयेत्) जब कि प्रांत के अंतःप्रवेश की रक्षा का भार हिलन पकड़नेवाला राजा ('गुरु पिता तथा भीम माता की संतान') पुमिद ('निष्ठि म्बेष्ठ पिता तथा किरात माता की संतान') बगल (समग्रान भूमि के रत्नवाले सम्राजपाला) तथा बन-रक्षकों आदि कोषा में से भरती किये गए विशेष कर्मचारियों पर हुआ था (तयोर्मंतरानि चापुरिक-प्रवर-पुमिद-वज्रान्-रथ्यवरान् रसेयुः) । प्रांत के चार चिरां पर (II ३) (अनुविगम् जनपदभक्त साम्प्रामिकं दैवदत्तं कुर्वाणोऽस्मिन्) और (II १) अन्तरत्तपाम-गुर्गानि) चार कुर्वा बनवाए जाते थे जो एक या पर्वत परस्पर या बन जैसे सुरक्षा के प्राकृतिक शक्ति का काम उठाने थे (नदी-वहतकुर्वा अनपहारत्तपामं धाम्बन वनगुर्गान्) ।

प्रशासन के केंद्र : प्रशासन के प्रधान केंद्र ८००४०० २०० तथा १० बीघा के बीच में स्थित होने थे और इन्हें नमय (१) स्थानीय (२) क्षेत्रीय (३) कार्यक्षेत्र तथा (४) संग्रह्य कहा जाता था । इनमें से 'स्थानीय' उस प्रदेश की व्यवस्था का केंद्र होता था (समुद्रस्थानं धनोत्पत्तिस्त्वानमत्तं) (II ३) जिसे हम उस समय की प्राचीन राजधानी बतू सकते हैं ।

प्रांत का प्रशासन (समाहर्ता) जिसका कलेक्टर (स्थानिक) : प्राचीन प्रशासन का प्रधान समझाई होता था जिसके आधीन अपने प्रांत के सभी जिलों के स्थानिक वल्लभर होंगे थे (I १) । वास्तव में हर प्रांत चार जिलों में विभाजित होता था (II १५) (समाहर्ता अनुर्वा अनपह विभाज्य) जिसमें से प्रत्येक जिला स्थानिक नामक एक पदाधिकारी के आधीन होता था जिस पर उक्त जिले की पूरी व्यवस्था का भार होता था (एवं च अनपह-अनुर्वा स्थानिकः विनयेत्) ।

राज्य के तोत समाहर्ता पर अपने प्रांत के राजस्व संग्रह करने का भार होता था । राजस्व बर्त साठा न बनूँ सिद्ध जाना था इसमें से प्रत्येक चीज का बुरा-भूरा काम उठाने तथा उठा बहाने के लिए एक विशेष प्रशासन-विभाग की आवश्यकता होती थी । इस प्रकार राज्य के शासन का अध्ययन करने में इस बात का पता चल सकता है कि उस समय प्रशासन की व्यवस्था क्या थी तथा उसका संगठन किस प्रकार किया गया था ?

समाहर्ता का काम (अवेबेत) कि निम्नलिखित स्रोतों से पूरे राजस्व की बसूली कराना था (१) नगर (गुर्ग) (२) गाँव या बेहत्त (राष्ट्र) (३) पार्ने (जमि) (४) बागान (सेतु) (५) वन (६) पशु (पन्न) और (७) संचार के माध्यम (वकिरपन्न यातायात के मार्ग) ।

दुर्ग नगरों या राहरी इलाको (दुर्ग) से जो राजस्व बसूल किया जाता था वह अनेक स्रोतों से बसूल किया जाता था जिनम से प्रत्येक का प्रशासन अलग एक विभाग के हाथों में होता था और हर विभाग का अपना एक अध्यक्ष तथा उसकी सहायता के लिए उचित कर्मचारी होते थे । ये प्रशासन विभाग निम्नलिखित थे (१) सीमा-कर (धुलक) (२) धुकिस (बण्ड) (३) नाप चौक (पौतब) (४) नगरपाकिाई (नापरिक) (५) सीमाई (मस्तब) (६) पासनोई (महा) (७) जावकारी (सुरा) (८) पशु-बबसाका (सूना) (९) कपास उद्योग (सूम) (१०) तेल उद्योग (तैल) (११) दुग्धपाकाई (धूल) (१२) जौली उद्योग (जार) (१३) सोना (स्वर्ण) (१४) मासपौदान (बण्डस्तंबा) (१५) बेह्याई (१६) जुआ (सून) (१७) इमारतें (बास्तुक) (१८) धिस्व (१९) बस्तकारी (काव) (२०) धार्मिक संस्कारें (देवता) (२१) बुंदी (इरादेयम्) और (२२) मनोरंजन (बाहिरिकादेय अभिनय नृत्य जैसे जानोव-अमोह) (II १) ।

इन बाईस विभागों का प्रशासन बाईस अध्यक्षों के हाथों में था और इन्हीं को मिजाकर नगर की आम प्रशासन-व्यवस्था का निर्माण होता था ।

राष्ट्र राज्य की आम का बहुत बड़ा भाग गाँवों से आता था क्योंकि राजस्व के स्रोत इन्हीं गाँवों में बिखरे हुए थे । इनमें से प्रत्येक स्रोत का ही सावधानी के साथ उपयोग किया जाता था और हर स्रोत का प्रशासन अलग एक विभाग के आधीन होता था जिसका अध्यक्ष अपना अध्यक्ष तथा उसकी सहायता के लिए विशेष कर्मचारी होते थे । राजस्व के दो स्रोत निम्नलिखित हैं (१) सीता राजा की भूमि । (२) भाग भू-राजस्व के रूप में राज्य को लिया जानेवाला कृषि-उत्पादन का भाग ।

(३) बलि सामान्य भू-कर ।

मेगास्थनीज के अनुसार (अंश I) "कृषकयण भूमि की चौलाई पैदावार (भाग) के अतिरिक्त राजा को भूमि-कर भी देते हैं ।" संस्कृत में 'बलि' शब्द का सामान्य अर्थ किसी धार्मिक संस्कार के अवसर पर देवता को चढ़ाई जाने वाली वस्तु या स्वीकृत योगदान होता है । यह बात उक्तेश्वरीय है कि अधीक ने भगवान् बुद्ध का जन्मस्थान होने के

नाये (हिव नवर्ब जाते ति) कुम्बिनी यौध (कुम्बिनि-गामे) के प्रति अपनी भद्रा प्रकट करने के लिए उस 'उबलिने' तथा 'अग्निगामे' (उबलिन्क तथा अग्नि-गामिक) बाधित कर दिया था यह बात शम्भिनदेव के स्मृतिलेख में लिखी है। इस प्रकार अशोक के शासनकाल में राज्य की ओर से इपि भी पैदावार में नियमानुसूक्त हिस्से के अतिरिक्त जिस 'भाग' कहने से समस्त भूमि पर एक कर भी लगाया जाता था जिस 'बलि' कहते थे 'कुम्बिनी यौध' से 'भाग' भाषा ही बसूक्त किया जाता था अर्थात् चौथाई के बजाय आठवाँ भाग। कौटिल्य के ग्रन्थों में (II १५) कुम्बिनी परिहारक यौध था।

(४) कर पत्तों के बागों पर कर (अग्निगामाविसम्पन्नं राजदेयम्)।

(५) वार्षिक व्यापार-आयशी पर उसके उत्पत्ति स्थान पर ही लगाया जानेवाला कर (वणिग्गारेणारयम्)।

(६) महीवाल तीर्थस्नानों के बाटो पर नदियों के निरीसकों को दिया जानेवाला कर (तीर्थ-रक्षक-द्वारेणारयम्)।

यूनानी लेखक क यहाँ भी नदियों के इन निरीसकों का उल्लेख मिलता है।

(७) तर बाग के पार उभरने व भाड़ा (महीतरणवेतनम्)।

(८) नाव नीका-मयन के निरीसक का दिया जानेवाला कर (नावम्यन-द्वारलभ्यम्)।

(९) पत्तन बाजारों वाले घुहर्ग में दिया जानेवाला कर।

(१०) विधीत करमात्रों पर कर।

(११) वर्तनी सड़क का महुसूज जो अंतपालों को देना किया जाता था (अन्तपालद्वारलभ्यम्)।

(१२) रज्जु भूमि के बंशवस्तु के लिए दिया जानेवाला कर, जो विपय पात्र नाम देहान-अधिकारी का दिया जाता था।

(१३) खोर-रज्जु बीनीहारी या पुस्तिक-कर या गाँवों में जमा किया जाता था और बाग परचने पर लुब्ध किया जाता था (खोरपाह्वय प्राप्तयेयम्)।

अग्निः ताली का निरीसक "बाँदी हौरा मणि माटी मूँगा राज्य पातु लय्य और भूमि पत्थर या लौ-लोहों से निचाने जानेवाले पत्थर जिस अन्य यन्त्र पचावों (रस)" (मुक्क-रज्जु वय-मणि-मुक्ता प्रवाल-सिल-लोह-लवण भूमि-अस्तर-रस-धारकः लज्जि) की रचना से सङ्गुप्त जमा करता था। ये

सैन्धु यह सब उन सेनायाबासा परलगाव का कर का मूलक है जिनमें (१) बीर उमाई जानी हा (२) लूज (लुब्ध) के वन्य (३) लज्जिवा (रस-धार धार्मिक-उच्चारणार्थ) जैसे 'बीजल गीरा आदि' (४) ईन (बाद-

इन्सु-बाट) (ब) केले और सुपारी (पण्ड) (ब) चाबल जैसी फसलें (केबाण पाण्यनेयम्) (छ) 'अदरक हल्दी आदि' जैसे मसाले (मूलबाय) ।

बन पदार्थों पर लगाया जाने वाला कर, जिनकी चार कोटियाँ बताई गई हैं (१) पशुओं के (२) हिरणों के (३) रुकड़ी तथा खर जैसी बाघ गिरफ वस्तुओं (इय्य) के और (४) हाथियों के ।

बन पशु-मालाओं या 'गाय भैस बकरी भड़ पवड़ा ढं' बोझ तथा खज्वर' जैसे पाछतू जानवरों की प्रजननघाताओं पर लगाया जानेवाला कर, जो इन मापों के आन्ध में या अंत में बसूछ किया जाता था ।

अधिकपद कर या थक ठाण यातायात के भागों पर लगाया जानेवाला कर, जो इन मापों के आन्ध में या अंत में बसूछ किया जाता था ।

इतने बहुत-से तथा विविध प्रकार के श्रोतों से प्रांतीय राजस्व जमा करने के लिए एक अत्यंत सुविस्तृत प्रशासन-व्यवस्था आवश्यक थी उसके लिए छोटे बड़े अनेक पदाधिकारियों की आवश्यकता थी जिनमें सबसे बड़ा समाहर्ता होता था जिसे हम राजस्व मंत्री कह सकते हैं फिर विभिन्न विभागों के अध्यक्ष होते थे और हर विभाग में फिर अंतर्गत छोटे-मोटे कर्मचारी होते थे जिन सबको मिलाकर हम प्रांतीय राजसेवा कह सकते हैं ।

कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र के दूसरे खंड में निम्नलिखित विभागों की कार्य-मंडलि का विवरण दिया है

- (१) महासेनाकार (अनपदनाय्यस) ।
- (२) खार्ने (जाकर) ।
- (३) सेना (सुवर्भ) ।
- (४) भंडार (कौट्यागार) ।
- (५) बागिग्य (बय्य) ।
- (६) बन-सम्पदा (कुप्य) ।
- (७) अस्त्रशाला (अम्बुबागार) ।
- (८) नाप-तौल (मुलानानपीतब) ।
- (९) सीमा-कर (मुल्क)
- (१०) कतारि तथा बुनाई उद्योग (सूत्र) ।
- (११) छपि (सीता) ।
- (१२) बाबकारी (सुरा) ।
- (१३) पशु-बनधासा (सूना) ।
- (१४) वेध्याए (गधिका) ।
- (१५) पी-परिचरम (पी) ।
- (१६) पस (पो) ।

- (१७) घोड़े (अश्व) ।
- (१८) हाथी (हस्ति) ।
- (१) रथ ।
- (२०) वैद्यक सेवा (पति) ।
- ( १) पामपीन (मुद्रा) ।
- (२२) बरपाइ (विधीत) ।
- (२३) पाण्डु (जोड़) ।
- ( ४) टकटास (लक्षण) ।
- (२५) लज्जाला (कोष) ।
- (२६) हाथियों के बंधन (नाल-बन) ।
- (२७) सामान्य व्यापार (वैश्या) ।
- (२८) धार्मिक संस्थाएँ (वेत्ता) ।
- (२९) जुमा (सूत)
- ( ३ ) धन (बंधनापार) ।
- (३१) बहरपाइ (पत्तन) ।

विभागों की उपर्युक्त सूची की देखने में पता चलता है कि हममें सभी राज्य जमा करने या उसके प्रशासन के लिए आवश्यक नहीं है जबकि कुछ विभागों का संबंध तो मौर्यों के प्रशासन अथवा नगरपालिकाओं से है । (१०) (१२) (१३) (१४) (२९) (३०) तथा (३१) मौर्यों के विभागों की सूची में ही विभागों में की जा सकती है । फिर कुछ विभाग ऐसे हैं जिसका संबंध राजधानी अथवा राज-महल से है जैसे उपर्युक्त सूची में नं० (१) (३) (४) (७) (८) (२४) तथा (२५) । फिर हममें से कुछ विभाग ऐसे भी हैं—जैसे नं० (४) (९) (२५)—की राज्य तथा महार मंत्री (समिप्रकता) के आधीन रख दिए गए हैं, जिसका काम राज्य जमा करनेवाले मंत्री (कषाहर्ता) द्वारा जमा किया गया राजस्व प्राप्त करना है । इस प्रकार सूची राज्यता में से ही पर सबसे महत्वपूर्ण होते हैं और वेच मंत्री पदों में से अधिकतर मंत्री आधीन होते हैं । एक और अधिकारी का पर हमना ही कहा होता है और वह है 'अल्लकलाम्यस अर्थात् प्रधान हिमाक-विभाग रणनेश्वर' जिसके नाम से सभी विभागों का आगत हिमाक वेच करना पड़ता है । इसी प्रकार (१७) (१८) (१९) (२०) नं० के विभाग और साथ ही (७) नं० का विभाग भी मेमार्तिन के आधीन होते थे ।

यह बात ध्यान देने की आवश्यकता नहीं कि हममें से अधिकतर विभागों तथा वसाविरारिया का उद्देश्य मूर्खानी संग्रहों में किया है और उन्होंने जो

जाते नहीं हैं, वे कौटिल्य के विवरण से इसकी मिलती-जुलती है कि इन दोमा ही की विचसनीयता सिद्ध हो जाती है।

समाहर्ता इसे समाहृता दसकिए कहा जाता था कि वह विभिन्न स्थानों से राज्य का राजस्व जमा करता था और कोई शकाबा नहीं रखने देता था (सर्वापाचानेभ्यः राजाघातो सम्भक्त समप्तात् वा आहृता)। उसका कर्तव्य इसके अतिरिक्त 'समुद्रय प्रस्थापनम्' (I १) भी बताया गया है अर्थात् राज्य प्राप्त करने और उसे बढ़ाने के उपाय तथा साधन माफूम करना (समुद्रयो धनोत्थानं तस्य प्रस्थापनं मार्गपरिष्करणं समाहर्ता कया कया विधया समुद्रय प्रस्थापयेत् इत्येतत्)। इस प्रकार हम देखते हैं कि समाहर्ता को वर्तमान वित्त-मन्त्री की तरह कर छवाने की कई योजनाएं चालू करने और राज्यस्व में वृद्धि करने के लिए नए कर लगाने का अधिकार था।

समिवाता समाहर्ता का पूरक पराधिकारी समिवाता होता था जो राज्य के बन्ना होने पर राज्यक्षेत्र में उसके जाने पर उसकी जिम्मेदारी समाहर्ता का। समाहर्ता तो कार्यकर्ता तथा पैसा खर्च करनेवाला अधिकारी होता था पर समिवाता का काम था पैसा बचाना और राज्यस्व जमा करके रखना। राज्यस्व बिना वस्तुओं के रूप में प्राप्त होता था उनके अनुकूल उसे उचित इमारतों तथा कम बनवाने पड़ते थे जिसमें राज्यस्व जमा करके रखा था सके (निष्पन्न-कर्म इत्येतत्-रक्षण-कर्म)। इस उद्देश्य से उसे इन इमारतों का निर्माण करवाना पड़ता था (१) कोषगृह जिसमें राज्यस्व के रूप में प्राप्त होनेवाले बहुमूल्य रत्न सोना आदि जमा किया जाता था (२) पण्यगृह, जहाँ बिस्वी का मास (विषय इत्य) रखा जाता था (३) कोष्ठागार, राज्य का भण्डार-खाना, जिसमें 'जाने-पीने की चीजें, अन्न सेल आदि' जमा किया जाता था (४) कर्मगृह, जहाँ राज्यस्व के रूप में आनेवाली हर प्रकार की वन-उत्पत्ति जमा की जाती थी (५) अमुष्यार राजा की अस्वघाता।

कोषगृह कोषगृह दो भागों में बंटाया जाता था (१) भूमि के नीचे वाला भाग भूमिगृह जिसमें तीन मंजिलें (मिस्तर) होती थीं और ऊपर तथा बीमारों पत्थर की होती थीं उसमें लकड़ी के ढाँचे पर बने हुए कई कमरे होते थे (अनेकविधानं सारवाक्यम्) एक सीढ़ी होती थी जिसे संक द्वारा लिफाफा या लकड़ा था (संयुक्त तोषागम्) बीमारा पर लगी हुई लकड़ी पर देवताओं की मूर्तियाँ लुदी होती थी (विषतापिधानम्) और उसमें केवल एक ही द्वार होता था (२) ऊपरी भाग, जो अटक में कोषगृह होता था एक महीन बरबा प्रासाद के रूप का बना होता था, उसके बाहरी तथा भीतरी दरबारों में शोकलें लगी होती थी (उपपत्तीनिवेनं अद्विष्टावर्गात्म-युक्तं) और उसमें एक प्रवेश

कल होता था (सप्रधीर्बं मुखजालम्या सहितम्) और उसमें बहुमुख्य वस्तुएँ रखने व सिंग कई पक्षियों में अनेक पाख रने होते थे (भाण्डवाहिनीपरिकल्पितम्) ।

धामन-भेद म कोनागूह के अतिरिक्त सप्रिवाता को बेस के सीमान्त प्रदेशों में (जनपदान्ते) आपातकाल के लिए महत्त्व दीनी हूँकेसिया बनबानी पकड़ी थी इनके निर्माण के लिए मृत्युह पाण हुए अपराधियों से काम लिया जाता था (अभित्यक्तीं पुष्पैः चर्प्यैः) या भवन का निर्माण पुरा होते ही मार दिए जाते थे ताकि इनकी निर्माणयोजना और इनमें निधि-संग्रह की योजना गुप्त रहे ।

अल्प इमारत बिकाऊ माल रखने की इमारत एक चौक के चारों ओर बनी हुई चार इमारतों (चतुष्पालम्) में से एक होती थी जिसमें अनेक कमरे होते थे (अनेकस्वान्ततलम्) । इसे पण्यगूह कहते थे ।

अन्न भरण का कोष्ठागार भी इसी प्रकार की बनी हुई इमारत होती थी । बन-अम्बरा का भण्डार रखने का कृष्यगूह ज्यादा बड़ा होता था जिसमें कई लम्बी-चौड़ी न्माग्न होती थी जिसमें बीबारों के किनारे किनारे कमरों की कई पल्लियाँ हानी थी ।

अन्न-गाला (आयुधागार) भी इसी प्रकार बनाई जाती थी पर उसमें एक तहाना (भूमिवृह) भी होता था ।

स्वापात्म्य लक्षिवात्म्य तथा कारागार सप्रिवाता का यह भी कर्तव्य होता था कि बड़ लीन और महत्त्वपूर्ण सरकारी इमारतें बनवाम् (१) स्वापात्म्य जिसमें मुखदमा कडनबामा के लिए उचित स्थान और अभियुक्तों के लिए इवागाले हां (धमस्वीयं तत्र वर्मस्वा व्यवहार निर्भेतर- तत्सम्बन्धी वर्मस्वीयं व्यवहारार्थ आगडाला अवस्थित्यर्थ व्यवहार-पराजित-निरोधार्थ च स्थानम्) (२) मक्षिवात्म्य अन्न जिसमें इनके लिए स्थान हो (क) उन अमायों के बापाय्य जो विमागाप्यस्य हों उसे समाहर्ता तथा सप्रिवाता (घ) राजदूत और (ग) उन लोगों के लिए जो युद्ध के दौरान में पड़े गए हों (विस्वाता-विन्नेन गृहीतातां यद्ध-परिग्रहीतावीनाम्) (३) कारागार (बंधनागार) जिसमें श्रिषा तथा पुरषों के लिए अलग-अलग प्रकष हा और जिसमें ऐसी कोठरियाँ (कक्ष) हा जिसके द्वारों पर कन पहरा हा (विनस्त-स्त्रीपुष्परक्षार्थ अपनारताः सुगुप्तकक्ष्य) ।

यह बात ध्यान देने योग्य है कि इनमें से कुछ अचना में एक ध्यापार-विरोध में सम्बन्धित दबो-देवताओं की धूमियाँ स्थापित की जाती थी । उदाहरण के लिए कोनागूह में धनद देवता की मूर्ति बाजिग्य अन्न तथा काप्यागार में दबी थी वी मूर्ति आयुधागार में धमदेव की और कारागार में बाण की (दीक्षागार) ।

इन प्रकार सप्रिवाता विस्वागाल वर्मवारियों की स्थापना में (जाप्त-

पुरदाबिच्छित) राज्य के राजस्व के सम्बन्ध में अपने शक्ति को पूरा करता था। यह आवश्यक था कि उस राज्य के साधनों का दाहूँ तथा बेहाना दोनों जगह से होनेवासी भाव के सातों (आह्वय-अम्यत्तर आयम्) भी पिटसे १ यहाँ की पूरी-पूरी जानकारी हो ताकि वह इससे सम्बन्धित प्रश्नों का निरा करी कठिनाई के उत्तर दे सक। उसे हर समय यह भी मालूम रहना चाहिए कि राजकोष में राज्य का कितना राजस्व बचा है।

अजपदकाप्यज समाहर्ता तथा सभिषाता की तरह का वैश्वीय प्रशासन में एक और अधिकारी हुआ था जिसका काम विभिन्न विभागों तथा बिना के अ-सरा पर नियंत्रण रखना होता था। वह हिसाब-किताब रखनेवाला सबसे बड़ा अधिकारी होता था जिसके बिम्बे दो विभाग होते थे—बल-मुद्रा (अजपदक) और सेवा (मनना)। अजपदक का अर्थ होता है वह पटल या कार्यालय जहाँ बिनाईदेनेवासी भीजे बीजे बिकके गिनी जाती है (अज गजन-योपयानिदध्य-कानीनि सेवा पदक स्थाने अज-पदकम्) (I १)। उनका पहलू कर्तव्य है विभिन्न बिनाप्राप्यलों का एक जगह लाता (तत्तदध्यक्षानां सन्धुमस्वस्व-कर्मो नुष्ठानादेष्टं कारयेत्) (II ७ की टीका) और फिर उन्हें उनके कार्यालयों के लिए उचित स्थान का प्रबंध करना। उसे अलग-अलग बिनाओं के लिए अलग-अलग कमरों का और फिर उनके अध्यक्षों के लिए उनके पद के अनुबल स्थान का प्रबंध करना पड़ता था (विभक्तोपस्थानोविभक्तानि उत्तम-मध्यम-अधमाना मध्यमालायां पृथक-स्थित्यनुकूलतया विभाज्य)। उसे उन कमरों में हिसाब-किताब के बहीखाते तथा अन्य कागजात रखने के लिए उचित स्थान का प्रबंध करना पड़ता था (विभक्त-मुस्तकस्थानम्)।

वह विभिन्न बिनाओं की कम-संख्या तथा उनके नाम (अधिकारवानां संख्या नावतः परिगणनम्) उनका कार्य-क्षेत्र (प्रचारो जनपद) और किसने अपने प्रशासन-क्षेत्र से कूल अग्रम) कितना राजस्व जमा किया जाहि उनके अलग-अलग सातों में बड़ा करता था।

उसे इन सातों में यह बातें भी बजें करनी पड़ती थी कि विभिन्न बिनाओं ने अपने बिम्बे जो काम किए थे (कर्मणि: 'बीजे खाते' यावक के सेत, बाणि त्रियक उत्पादन मुद्रा आदि) उनके प्रसंग में वे अपने साधनों का उपयोग (इव्य प्रयोभे) निम्नलिखित बातों की दृष्टि से किस प्रकार करते हैं (१) काम (वृत्ति) (२) वैयक्तिक अधिकार का काम पर लगाना (अथ द्युम्यपुरवधिनियोप) (३) अन्न तथा गन्ध के हिसाब से कीमत (व्यय-धाम्यहिरण्य-विनियोप) (४) कितना माल पैदा हुआ या उसकी कितनी माँग है (धमाप्य) (५) कितनी प्याजी (नगर या वन्युओं के रूप में सूख) बभूक की गई (६) मिछा



जट (योगो ब्रह्मसहस्रनामम्) (७) उत्पन्न का स्थान (८) मज्जुली (९) मज्जुली देहरादून से मण्डलिक (बिष्टि, जिससे अमिन्नाय टन मणिकों से है जो मज्जुली पर काम नहीं करते बल्कि जिन्हें मुजारा बेकर परेणू मीकरो की तरह रखा जाना है) ।

अमरगुप्तकाव्य का अपने छात्रों में निम्नलिखित व्योम भी रज करना होता था ।

(१) विभिन्न शब्दों (वैद्य) मीनों (ग्राम) वातियों तथा परिवारों (कुल) में किन वातिका प्रजाजा (धन) कालूना (व्यवहार) और रीति-रिवाज (चरित संस्थानम्) का पालन किया जाता है ।

(२) राज्य के विभिन्न पराधिकारियों (राजोपजीवि) जैसे मंत्री पुरोहित आदि क क्या विशेषाधिकार (प्रणह) हैं वे कहाँ रहते हैं (प्रदेशों वास्तव्यम्) उन्हें क्या-क्या उपहार मिलते हैं (योग-उपायम्) उन्हें किन-किन करों से छूट मिली हुई है (परिहार) उनके लिए भाइयों तथा सैनिकों का क्या प्रबंध है (भक्त-अर्थ-यज्ञ-व्यवसाय-व्यवहार) और उन्हें क्या भेजना मिलता था ।

(३) राजा राजी और राजकुमारों को लिए जानेवाले विशेष मत्ते (निर्देश) उत्पन्न क लिए विशेष मत्ते (अतिवादिकत्तमं उत्तवादिकत्तमं वनत्तमं) और रोग आदि व्याधियों को दूर करने के लिए किए जानेवाले कर्तव्यों के द्वारा की जानेवाली विशेष धन राशि (प्रतिकारत्तमं) ।

वह अपने छात्रों में विभिन्न विद्यायाध्ययनों द्वारा (सर्वाधिकारपालाम्) दिया गया निम्नलिखित व्योम भी रज करवाता था (१) क्या काम करना था (२) विनया काय किया था चुका है (३) योग धन (४) आय तथा व्यय (५) हिमाज वा केन्द्र-जाला (नीली) (६) केन्द्रों द्वारा अपने काम की रिपोर्ट वातिल करने का समय (उपस्थानं कायस्थानी स्वस्थकार्यवर्तमानार्थसमि पालकात्मम्) और (७) सम्मिलित स्थान का नाम वहाँ क रीति-रिवाज और वहाँ पढ़ने किन प्रणामियों का अनुसरण किया जाता था ।

वह उत्तम मध्यम तथा अवर कोटि के अध्ययन को उनकी योग्यता के अनुसार काम दिलाता था । अथवास्तव के टीकाकार ने निर्माण-कार्य के अध्ययनों की तीन श्रेणियाँ बताई हैं जिसका मुख्य दन विभागा ये थे (१) काण्डम् (२) अग्र-मध्यम तथा अन्तर्गता और (३) महिष तथा मान । अधिकांशियों से इन मन्त्रों में (साधनाधिकृत्य) ऐसे विद्वत् कथन उपपन्न मान निपुण विद्वान् थे जिन्हें बड़ देन में राजा का बड़ा पारवातायन मिला । इस प्रकार इन कोटि में से नाम मंत्री नियुक्त किए जा सकने थे जो ब्राह्मण या राजा के मित्र अपना निजट अध्ययनी हों ।

विभिन्न विभागों के प्रधान लेखाकार (गणनाधिकारी गणना: सट्टरबर्गका: अभ्यस्तः) को अपना हिसाब देने जापाङ के महीने में राजधानी जाना पड़ता था जापाङ वित्तिय वर्ष का अन्तिम महीना होता था ।

वे सब अक्षपटलाध्यक्ष के कार्यालय में एक स्थान पर मुहरबद बक्सों में अपने बहीकाते (समुद्रपुस्तकमात्र) और आय में से घटा हुआ कल छेप बन केकर एकत्रित होते थे । उस भवन में उन्हें एक-दूसरे से बात किए बिना बैठे रहना पड़ता था (एकत्रासम्भाषावरोध कारयेत्) । राजस्व का कल तथा हुआ बन राजकोष में जमा करने से पहले उन्हें आय व्यय तथा बल राजस्व का हिसाब (सीबी) ज्ञानी देना पड़ता था । ज्ञानी जो हिसाब दिया जाता था उस लिखित हिसाब से मिलाकर देखा जाता था । यदि ज्ञानी बताई गई आय लिखित हिसाब में वर्ष आय से कम होती थी या यदि ज्ञानी बताई गई व्यय-राशि लिखित हिसाब की राशि से कम होती थी या यदि ज्ञानी बताया गया छेप-बन (सीबी) लिखित राशि से अधिक होता था तो उस गणनाधिकारी को बिना अन्तर होता था उसकी आठ गुनी राशि बंड के रूप में देनी पड़ती थी । दूसरी ओर यदि केंद्रीय प्लांटों में और प्रदेशों के प्लांटों में आय व्यय तथा छेप-बन के बारे में कोई अन्तर होता था तो यह अन्तर पूरा नहीं किया जाता था ।

जो प्रधान के आकार ठीक समय पर (अर्थात् जापाङ के महीने में अपने बही काते और छेप बन केकर राजधानी में उपस्थित नहीं होते थे उन्हें बंड भरना पड़ता था ।

इसी प्रकार, यदि वे जोय ठीक समय पर उपस्थित हों (आमिके अभ्यस्तो उपस्थिते) और केंद्रीय कार्यालय के गणनाधिकारी (कारणिक गणनाधिकृत) उनका काम न निबटाए तो केंद्रीय कार्यालय के अधिकारियों को बंड दिया जाता था ।

संशोधनों को सामूहिक रूप से (समष्टा: सहाभाषा:) प्रदेशों के विभागाध्यक्षों को समा करके उन्हें प्रांतों की आम राजस्वसम्बन्धी स्थिति आय व्यय तथा प्रत्यापित छेप बन के प्रश्न में समझानी पड़ती थी (प्रचारस्तम् सहाभाषा: समष्टा: भावयेत्: अविषममात्रा प्रचारो जनपद: जनपदान् सरसि मेलेयित्वा बोधयेत्: इत्यर्थः) । जो मंत्री इस काम से दूर रहता था या जो गलत हिसाब पेश करता था उसे बंड दिया जाता था ।

हिसाब रोख किया जाना आवश्यक था (अहोदयहृः) ।

लखाकारों द्वारा प्रतिदिन जो हिसाब तथा रोकड़-बाकी पेश की थी उसकी प्रधान लखाकार को जांच करनी पड़ती थी । उसे यह बेलना पड़ता था कि यह हिसाब किस हद तक निम्नलिखित बातों के अनुकूल है (१) अमन्त्रि (पन्)

(२) कानून (व्यवहार) (३) रीति-रिवाज (चरित्र) (४) पूव परम्परा (तत्त्वात्मक) (५) राजस्व से होनेवाली कल आय (संकलन सर्वजनिकीकरण) (६) कितना काम हुआ (निर्वर्तन) (७) राजस्व का अनुमान और (८) राजस्व की बसुंधी के मध्य में मूल्य का रीपोट (वारप्रयोग) ।

हर पाँचवें दिन हर पक्ष के बाँट हर महीने हर बार महीने बार तथा हर वर्ष के बाँट का सार तैयार किया जाता था (प्रतिममासम्) ।

परि कोई कारणात्मक समझ की गयी राजस्व की कोई राशि धाने में न लिख (राजार्थ अप्रतिबन्धात् राजार्थ पुस्तकेषु अलिखतः) या बाँटों का पाठ्य न कर (अप्राप्ति प्रतिषेधतो) या आय तथा व्यय का हिमाज निर्धारित बिधि (निबन्ध) से न लिखे तो उस बह दिया का मकाना था ।

हिमाज की उचित बच से न लिखना (अमहज्ज्हीनं अवलिखत) हिमाज उचित बच से लिखना (उत्कर्षं अवलिखत) अर्थात् ऐसे दण्ड न हिमाज लिखना कि वह आसानी से समझ में न आए (अविज्ञातं अवलिखत) देखितुं अवहर्षा रीत्या लिखतः) या एक ही मद्र की बुझाव लिखना (बुझावतः) हिमाज में दो सब मद्रियाँ (अवलिखतं) दण्डीय थी ।

गन्ध राजद्वारा की लिखना (नीचीमवलिखतो) पवन करना (अपवतो) या राजस्व को नष्ट करना (नाशयतः) ये सब दण्डीय अपराध थे (II ७) ।

प्रदेशों के विभागाध्यक्ष जब हम इस विषय पर विचार करेंगे कि प्रदेशों में विभिन्न विभागाध्यक्षों या राज्य की आय के स्वात्ता के रूप में उत्पादन शील तथा लाभदायक कार्यों तथा प्रतिष्ठाता के अध्यक्षों को क्या काम होते गए थे ?

उसका वेतन तथा बर्ष बीना कि उपर बनाया जा चुका है अध्यक्ष बच के अधिकारिता का वेतन १०० पण था । १ से १०० पण तक वेतन के बर्षों के राज-वसुधारी अध्यक्ष का आजीव रज्य जाने से और उन्हें उनका मरणाधिकार का दाँव (अन्न) बतन भले (लाभ) आरज तथा काम (विशेष) ही करने का अधिकार होता था । यदि उनके लिए कोई काम न हो तो अध्यक्ष अपने अपने कर्मचारीगण की राज-वसुधारी (राजपरिग्रह) तथा दुर्गा की रज्य भांड करने और रज्य में धानि तथा व्यवस्था स्थापित करने (राजद्वारावस्था) के काम पर लगा बैठे थे । आधीन कर्मचारीगण का गरीब अपने-अपने विभागाध्यक्षों (विधायक) के आधीन काम करना पड़ता था और वे उनके उक्त के अनेक अध्यक्षों के भी आधीन होते थे (यजमन्युतः) (८३) ।

उसीमें का राष्ट्रीयकरण यह भी ध्यान में रखने की बात है कि राष्ट्रीय का राजनीति बना जाती है यह एक समाजवाद और उदात्तता के राजनीतिक पर

आधारित थी। प्रशासन के संरक्षण का बहुत बड़ा भाग राज्य की विभिन्न प्रकार की सम्पत्ति की व्यवस्था बचाने तथा उसका उपयोग करने में लगा रहता था और इस सम्पत्ति का प्रशासन व्यापारिक संस्थानों के हंग पर बचामा जाता था। राजा के पास विद्यालय भू-सेव तथा नव-सेव थे। धानों पर राज्य का एकाधिकार था। निर्यात तथा आयात दोनों ही का व्यापार राज्य स्वयं करता था और इस प्रकार दलानों का मुनाफ़ा स्वयं के होता था। विभिन्न प्रकार के कच्चे माल से नाना प्रकार की वस्तुएँ तैयार करने के लिए राज्य की ओर से कारखाने स्थापित किये गए थे। इसके अतिरिक्त जूँ के राजस्व जंगल के रूप में बड़ा किया जा सकता था इसलिए पूरे देश में बड़े-बड़े कारखाने कायम रखने पड़ते थे जहाँ कर के रूप में विपुल परिवारा में प्राप्त होनेवाली कृषि की पैदावार का तथा राजा की जमीनों की पैदावार का उपयोग किया जा सके। इनके अतिरिक्त राजधानी में कई कारखानों से एक केंद्रीय भण्डार-मठार का होना भी आवश्यक था जकाल के समय में उपयोग के लिए, राज-परिवार के उपयोग के लिए, छाही कारखानों में कच्चे माल के रूप में इस्तेमाल के लिए और अंत में राज-कर्मचारियों को वेतन के रूप में देने के लिए।

कृषि विभाग : अब हम प्रशासन के मुख्य-मुख्य विभागों के कामों का वर्णन करेंगे।

हृषि निदेशक (सीताध्याय) : हृषि निदेशक (सीताध्याय) (IL.२४) के बिम्बे राजा की जमीनों पर या सरकारी कृषि कर्मों पर खेती का काम होता था।

बीजों का भंडार उसका कर्तव्य यह होता था कि वह विभिन्न फसलों के बीजों का भंडार अपने पास रखे—जैसे जनाव (बाग्य) कूय फल सध्मी (घास) बड़ी-बूटी (कंद) सम आदि (सीम) तथा कपास (कपास)।

खेत-मजदूर वह खेती-बारी के काम के लिए निम्नलिखित क्रोटियों के मजदूर रहता था (१) वास (२) मजदूरी पर काम करनेवाले मजदूर (कर्म कर) और (३) समय कारावास का बंध पाए हुए अपराधी (बन्धप्रतिभर्ता)।

खेती के बीजार : उसे इन मजदूरों को खेती के लिए आवश्यक सभी चीजें दनी पड़ती थीं जैसे 'हुक रस्सी हथिया' जैसे बीजार (कर्षक-यंत्र) और 'साध में बीज भी। किसानों की सहायता के लिए धिस्वकारों (काब) का भी प्रबंध किया जाता था जैसे लोहार (कर्मारः अपस्कारः) बन्धी (गुट्टाकः तथा) लोहनेवाला (मेहक अथवा जालक अथवा मेहक) रस्सी बनानेवाला (रज्जुबन्धकः) और हृषि को हानि पहुँचानेवाले जन्तुओं (सर्वप्राह्वारि) को नष्ट करनेवाला। वर्षा का निगरान : ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय विभिन्न प्रदेशों के

करल पण्डित थे। ये कर निम्नलिखित थे (१) पिण्डकर, गाँव का कर, (२) घटभाग इपि की पैदावार में राज्य का छठवाँ भाग (३) सेनाभक्त, किसी इलाके में हाकर गजरणी हुई सना की रसव के लिए लगाया जानेवाला सैनिक कर (४) यक्ति, हर गाँव पर लगाया जानवाला १ व २० पण तक का अतिरिक्त कर (५) कर, फटा की पैदावार में राज्य का हिस्सा (६) उत्तम वृक्ष के अन्न आदि धीरा सुपी के मोको पर राजा को दिए जाने वाला उपहार, (७) पार्श्व आपलरासीन कर, (८) परिहीनक पणजों द्वारा पनसा को होनेवाली हानि की क्षतिपूर्ति (९) औपचारिक राजा को उपहार, (१०) बीछेयक राज्य के लालाबा द्वारा सीधी जानबासी भूमि का कर।

बन्नुत्रा के रूप में अथ पिया पान वाला उपपुत्र सभी काटियों का राजस्व राज्य बढ़ाना का क्योंकि वह बेहानों या गाँवों के इलाका से जानेवाला राजस्व होता था। अथवा का राज्य की इपि की पैदावार की बिन्नी की सरकार का मिलनेवाली रकम भी वसूल करनी होती थी।

इस प्रकार जो भंडार जमा होता था उसका आधा भाग सरकार के खर्च में लगाया जाता था और आधा बग पर जाने वाली बिपदानों (जैसे बुनिस) के लिए बचाकर रखा जाता था (तत्तो अर्थे आनपदानां स्थापयेत्)। यह भंडार जैसे जैसे लक्ष होता जाता था जैसे-जैसे हमकी पुति होती रहती थी।

काश्रयाराध्यत का यह भी बर्तव्य होता था कि वह स्वयं इस बात की निगरानी रखे कि कटने (शुष्क) घिसने (पुष्ट) पीमने (पिष्ट) या भूजने (मृष्ट) या पानी में भिगोरन लगाने में उसमें कितनी कमी या बढ़ती होती है।

बीटिय न न्न बाण का भी हिमाय बनाया है कि विभिन्न प्रकार के अन्ना की एक निश्चित मात्रा का पगाने आदि पर सम रितना भोजन बन उठता है विभिन्न प्रकार के निम्नमा में से रितना लेव निरचना है और बराम (का-पास) और लन या जट (दोष) की निश्चित मात्रा में से रितना लन बाठा जा सकता है।

विभिन्न वाग्यां व साना मनी जीमों और यक्षा मिताहिया सेनागायकों (बसोना मय्यामाय) गनिया तथा गजकमाग (देविमाराणा) मयके लिए भोजन का माका निर्धारित थी। विभिन्न पान्शू पणधा के लिए भी यह माका निर्धारित था।

एन निरमा तथा ध्यौर का बाता व बजड यी दाता बताया है कि इनके प्रकार की राज्य की रणनीति की व्यवस्था का नार समाननवाने क्षमता की इस दात का निर्दिष्ट यमाने के लिए कि राज्य की इन रणनीति के विविध

अपनों के दौरान में राज्य को आय की कोई हानि न होने पाए किन्ता निय-  
यन रखना पड़ता था ।

अतः में हमें इस बात का भी विवरण मिलता है कि कोषागार के भीतर  
आग पर बहुत सख्त नियमों देता था । वहाँ अन्न के ऊपर ऊपर डेर लग हात से  
पर उसका कोई भाग भूमि के सम्पर्क में नहीं रहता था । गृह की भेजिया बाय  
की रस्सियाँ सब बीधकर रखी जाती थी । एक मिट्टी या लकड़ी के पापों में  
रखा जाता था , और नमक के डेर भूमि पर छने रहते थे ।

ज्ञानों का अध्ययन (आकराम्यस) [II, १२] आकराम्यस को अपने विषय  
का वैज्ञानिक विशेषज्ञ होना चाहिए, और उसे निम्नलिखित विभागों का ज्ञान  
होना चाहिए (१) धूम्र-सामान (२) धातु-सामान, (३) रक्त-वाक (४) मणि-  
रत्न, ज्ञानों की जानकारी कच्ची धातुओं की परतों तथा पिघला का ज्ञान (मू-  
मिराविज्ञान) आतिथी और पारद, मणियों तथा बहुमुख्य रत्नों का ज्ञान ।  
उसका काम था नई खाना की खोज करना धातु-मल राख आदि की सहायता  
से पुरानी धातु का पता लगाना और उनके आकार-वकार तथा रासायनिक  
गुणों से कच्ची धातुओं का मुख्य जानना । उस समय में विभिन्न प्रकार की  
धातुएँ ज्ञानों से निकाली तथा इस्तेमाल की जाती थी जैसे सोना चाँदी ताँबा  
सीसा (सीस) टीन (जड़) लोहा (लोह) और धातुजल । कच्ची धातुओं  
को साठ करने और हाथ उनमें डुपित कर लक्षण करने और धातुओं को  
मुद्र बनाने के लिए अनेक प्रक्रियाएँ इस्तेमाल की जाती थीं ।

अनेक पदार्थों से टीनार की जानेवाली वस्तुओं का व्यापार एक ही क्षेत्र  
के हाथों में (एकमुक्ताम्) था । जो माल टीनार करनेवाले परीवार तथा बिक्रेता  
इन चीजों का व्यापार निविष्ट क्षेत्र की सीमानों से बाहर (अन्तर) करते थे  
वे दंड के भागी थे । इस प्रकार ज्ञानों से धातु निकालने और उनसे टीनार की  
जानेवाली वस्तुओं के व्यापार पर राज्य का एकाधिकार था । परन्तु जिन धातुओं  
में बहुत अधिक पूँजी लगाने की या बहुत ज्यादा काम करने की आवश्यकता होती  
थी (ध्वस कियामारिकमाकरम्) के उत्पादन में एक भाग के आधार पर या  
एक निश्चित राजस्व के आधार पर निजी व्यापार करनेवालों को दे दी जाती  
थी (प्रक्येय अस्वमाकरस्य स्तात्तु शुचर्मिकं राज्यायै वैधिमिति परिपश्य) ।  
जिन ज्ञानों में कम पूँजी लगाने की आवश्यकता होती थी, उन्हें राज्य स्वयं  
अपने हाथ में रखता था (आपयिक अज्ञाना कारणैः) ।

अपने काम के विवरणों में धातु की अध्ययन का सर्वत्र कुछ अन्य पदाधि-  
कारियों के साथ रहता था जो इसी से सम्बन्धित काम करते थे ।

धातुओं का अध्ययन (लोहाध्ययन) : उसके विषये ताँबा सीसा टीन,

पीतल तथा पीसा आदि बालुओं के बरतन बनाने (कर्मस्तान् तन्मास्ययम कर्मणि) और इन चीजों के व्यापार (व्यवहार) करने का काम होता था।

हस्तकर्म का अध्ययन (कर्मशास्त्रस्य रंजनाद्यध्यायः) : यह निम्नलिखित प्रकार के मिश्रकर्म ब्रह्मज्ञान था (१) व्यापार (बाँधी के सके जितने ११ हिस्से बाँधी ४ हिस्से लोहा और एक हिस्सा लोह, तीन चीसा या सुरमा होनी थी (२) व्यापार (बाँधी के सिक्के) जिनमें ४ हिस्सा बाँधी ११ हिस्सा लोहा और एक हिस्सा लोह (कोहा या कोई बूझी धातु) होता था। दोनों ही प्रकार के सिक्के चार मुद्रों के होते थे अर्थात् बाँधी के १ ३ ३ तथा ३ ३ ३ के और लोहा के १ ३ ३ तथा ३ ३ ३ पाप के। लोहा के ३ तथा ३ पाप के सिक्के को काकानी तथा अर्धकाकाणी भी कहते थे।

अर्धकाकाणी के टीकाकार के अनुसार व्यापार और व्यापक एक ही सिक्के को कहते थे। यह एक मिश्र-धातु का बना होता था जिसमें अधिकांश बाँधी होती थी और राजकोष उसे स्वीकार करता था (कोलापर्वण्य)।

व्यापक एक ऐसी मिश्रधातु का बनाया जाता था जिसमें मुख्य भाग लोहा का होता था और वह व्यापक व्यवहार की (व्यावहारिक) मुद्रा थी।

इस प्रसंग में यह बात ध्यान देने योग्य है कि भारत के प्राचीनतम प्रामाणिक सिक्के ये थे (१) लोहे के जिन्हें मुद्रा कहते थे (२) बाँधी के जिन्हें बुराक या बरक कहते थे और (३) लोहे के जिन्हें व्यापक कहते थे। ये सिक्के मनु द्वारा ब्रह्मर्षि गौ (VIII १३२ तथा उसके अंश के पृष्ठ) लोक की व्यापक पद्धति के अनुसार बनाए जाते थे। इस पद्धति में बुनियादी लोक रति (रतिक) होती थी जो मुद्रापत्र (धमकी) के बराबर होती थी इसका वजन १८३ ग्राम था ११/ पाप के बराबर होता था। लोहा के ८० रति = १४६ ४ ग्राम = ४८ पाप का होता था। लोहा के ४० रति = ५८ ५६ ग्राम = ३७९ पाप का होता था और व्यापक का वजन लोहा के बराबर होता था। बाँधी तथा लोहा के विभिन्न मूल्या ५ से मिश्रकर्मारे धातु में कई अंग्रे पाये गए हैं। ये पुराने मिश्रकर्म लोहा या व्यापक हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि बाँधी के सिक्के धातु की कट्टी बाहर से और लोहा के सिक्के धातु में से काटकर बनाए जाते थे। वे मुख्यतः केवल धातु के टुकड़े ही होने के लिए पर धातु-धर्म उनके कारण तथा गुणों पर निर्भरानी गणनेवाले अधिकांश भी मुख्यतः ही पायी थी।

इसके निर्धारण एवं अधिकांश और होता था जिन्हें सिक्के के अनुसार का निर्धारण होता था ये व्यापक कहते थे। ये व्यापक के लोहे के सिक्के जिन्हें निर्धारण के अनुसार बनाए जाते थे। ये व्यापक के लोहे के सिक्के जिन्हें निर्धारण के अनुसार बनाए जाते थे। ये व्यापक के लोहे के सिक्के जिन्हें निर्धारण के अनुसार बनाए जाते थे।

के लिए बनाए गये नाण-नास व विशेष आपत्तियों के प्रयोग के बावजूद में सरकार को लाभ के रूप में ५ प्रतिशत व्याजी १/२ पण प्रतिशत का परीक्षण-मुद्रक जारी किए ।

इन महत्वपूर्ण शासन-विभागों पर टीका करते हुए कौटिल्य ने लिखा है, "यन्निव-उद्योग राज्य के लिए सम्पदा (कोश) का स्रोत है सम्पदा राज्य की सैनिक शक्ति का आधार है इन दोनों के संगीन से पूरी पुष्टी पर अधिकार प्राप्त होता है" (आकरग्रन्थ कोश कीधत्त इण्ड प्रकाशित) ।

सालों का दूसरा अध्याय (अध्याय्यत) : लोगों का एक वृत्त अध्याय होता था जिसे अध्याय्यत कहते थे उसका अधिकार-क्षेत्र अधिक सीमित होता था । उसका काम था छत मोती तथा मूने हीरे और धनुष्य रत्नों तथा नमक से सम्बन्धित काम (कर्मात्मन्) और इन चीजों के व्यापार की देखभाल करना ।

कर्मध्याय्यत : नमक के उत्पादन पर राज्य का एकधिकार था और उस व्यवस्था का भार जिस अधिकारी पर होता था उसे कर्मध्याय्यत कहते थे । यह काम आइसल डेकरेटे के पर कपाया जाता था और टेरेदार से था तो निश्चित शुल्क लिया जाता था या उसे उत्पादन का एक भाग दे दिया जाता था । जिन लोगों को नमक-खेती का ठेका दिया जाता था उन्हें उसका किराया (प्रभ्य) और नमक के कुछ उत्पादन का छटा भाग (कर्मध्याय्य) देना पड़ता था । अध्याय यह नमक बाजार के पूरे भाग पर बेचता था और व्याजी वसूल करता था (जो इस प्रकार वसूल की जाती थी कि सर्वसाधारण के उपयोग के और सरकार के उपयोग के दोहरे बट्टों में बाँध प्रतिशत का अंतर होता था इसका अन्तर्गत वह ८ प्रतिशत का अतिरिक्त कर (वृत्त) और १/२ पण (कर्म) प्रतिशत परीक्षण कर भी वसूल करता था ।

बाहर से आनेवाले (आगन्तु) नमक पर इससे भी अधिक कर कपाया जाता था । इसका छटा भाग न लिया जाता था और जब वह भाग बेचा जाता था तब उस पर ५ प्रतिशत व्याजी और ८ प्रतिशत अधिक वसूल किया जाता था । इसके अतिरिक्त कुछ चुनी (शुल्क) और कुछ अति-मूर्ति (दीर्घक) भी इसलिये वसूल की जाती थी कि जिसका नमक बेच में न पैसा हाकर बाहर से मँगाया जाता था सत्तरी राज्य की राजस्व की हानि होती थी (कोश शुल्क राजस्वभाष्येवागुर्ध्व व दीर्घक वदन्तु) ।

जब कोई नमक में निष्ठावट करता था या माधुमी (वागप्रस्थ) के अतिरिक्त कोई भी बिना काइसेस के नमक बनाता था तो उसे बंद दिया जाता था । बर्दईयों के अध्याय में संलग्न खुलेबासे लोगों (थोकिव) उपरिक्तों और बिना अधिकारी पर काम करनेवाले मजदूरों (मिथि) के अतिरिक्त अन्य सभी



यमिकों को नमक मुक्त मिलना था केवल खाने के लिए, व्यापार के लिए नहीं। इस प्रकार नमक-कण का नार मरीचो पर बहुत अधिक नहीं पड़ता था।

**सुवर्णाभ्यासः** एक अधिकारी सुवर्णाभ्यास नाम का होना था जिसपर सोने और चांदी की बीजें विष्कृत असंग-वस्तु बनवाने की जिम्मेदारी होती थी उसका न्यायिक एक विशेष भवम में होना था जिस अलक्षणा कहते थे [II, १३]। यही सोने तथा चांदी की वस्तुत्मक वस्तुओं बनाई जाती थी। पर सब-साधारण के लिए एक मान्यता-शास्त्र सुनार की नियतनी में यही मरुद पर (विशिष्टाभ्यासे) बहुत एक हुकूम होती थी। अर्थशास्त्र के टीकाकार के अनुसार 'उसका काम माना चांदी तथा रत्न-आभूषण बेचने तथा मरीदन में जन-साधारण की सहायता करना होता था। अर्थशास्त्र के इस अध्याय में विभिन्न कोटियों का खाना पकाने तथा असंग-वस्तु पहचानने के तरीके सोने तथा चांदी की बीजें बनाने और रत्न की जाँच करने की विभिन्न प्रणियाँ और कारखाने में काम करनेवाले कारीगरों की योगेबाजी तथा भारी स बचने के विष्कृत उपाय बताये गए हैं। नियम यह था कि जो कोटि भी अनायास का कर्मकारी नहीं होता था वह उसमें घुस नहीं सकता था। यदि कोटि चांदी में घुसे तो उसका सर काट दिया जाता था (अनायासमनायुनो नैषमच्छत् अभिषच्छन् उच्छ्रय)। कारखाने में घुसने या कारखाने में बाहर निकलने में पहले हर आदमी की उमारी की गी जानी थी (विहित-आमृत-गृह्यः प्रसिषोयु)।

**राज-स्वर्णकार (सौवर्णिक)** अर्थशास्त्र में एक अध्याय [II १४] है जिसका मीमांसक है "विनिगताया मौननिरप्रचारः अर्वात् 'बड़ी सन्त पर बासा सुनार। इस अध्याय में यह बताया गया है कि राज-स्वर्णकार (सौवर्णिक) नगरवासियों तथा ग्रामवासियों का खाने तथा चांदी का काम करने के लिए नियोजित नियुक्त करेगा (आचक्षत्रिभिः सिद्धिगतासीकैः सुवर्णरत्नविभिः)। यह हम बात का विमर्शनी खाना था कि शाहूचों में खेगा और खिलना मान मिला उन्हें खाना और उनका ही मान बाँट दिया जाता है कि नहीं।

गिरा राजने के बारे में एक नियम बताया गया है कि खाने में एक मुहूर्त (१६ मासों का) दरखान में पर चांदी (३ मास) खाने की गुवायत खाने समय मरुद फाँसनी घानु के लिए खनी जानी चाहिये। किसी ऐसी हुकूम पर जिस मरुद में सामान शासक न हा खान तथा चांदी की बीजें नहीं बनाने दी जाती था (सौवर्णिकनिरप्रचारः का प्रयोग करणो)।

**बन का सराफ (व्याप्य)** [II १७] : राज्य के बाँट तथा उन की खेबाद की खेबाद करने के लिए एक अध्यास होता था जिस अध्यायस बरत थे। अथक के खेबादों (व्यवसाय) की गणना में इसानी तथा अथ

द्वि. ५ में) कुछ पशुओं तथा पक्षियों के संरक्षण की घोषणा की है। यह सूची कौटिल्य की सूची से बहुत मिलती-जुलती है। अणुन का जीव-रक्षा का सिद्धान्त यह था कि किसी जीव का दूसरे जीव को अपना आहार नहीं बनाया चाहिए (अपेन जीवे नो पूसिताविये) परन्तु वास्तव में उसका अध्यारोह कौटिल्य के इस सिद्धान्त पर आधारित है कि यह संरक्षण केवल श-हानिरारक तथा अहिंसक पशुओं तक सीमित रखा जाए। आम तौर पर अधोक्त ने “उन सभी जीवों” के संरक्षण की बात कही है “जो न तो किसी काम आते हैं और न जिनका नाश खाया जाता है” (पटिभोने नो एति न च खादियति)। दोनों ने ही जिन प्राणिमों की रक्षा का उल्लेख किया है वे हैं—हंस, मुक, सारिका, कबूतर, तथा बस्तरी (पेंडा)। कौटिल्य का संरक्षण का एक और सिद्धान्त था कि उन सभी प्राणिमों का संरक्षण किया जाए जिन्हें पुत्र माना जाता है (धनक्या)।

मन्त्रियों का अध्ययन (गोप्यस्य) [II १९] देश के मन्त्रियों अथवा पशुओं की देखभाल करने का भार राज्य के कर्षों पर था क्योंकि कृषि का आधारभूत राष्ट्रीय उद्योग बहुत हद तक इस पर निर्भर था। गोप्यस्य जिन पशुओं की देखभाल करता था उनमें वे पशु शामिल थे गाँवों में रहकरियाँ गधे, खच्चर, भैंसें, सड़र तथा कुत्ते। यह केवल उन पशुओं की ही देखभाल नहीं करता था जो राज्य की सम्पत्ति होते थे। बल्कि उन लोगों के निजी पशुओं की भी देखभाल करता था जो पशु पुरानेवालों से रक्षा चाहते थे और इसके बदल में इन पशुओं से प्राप्त होने वाले घुम-वही आदि का एक भाग राज्य को देते थे।

यह विभाग निम्नलिखित प्रकार के पशुओं की देखभाल करता था

(१) सौ-सौ पशुओं के गले जिनकी देखभाल पाँच प्रकार के कर्मचारियों का समूह करता था अर्थात् (क) गाँवों का चरवाहा (गोपासक) (ख) भैंसों का चरवाहा (पिम्बारक), (ग) बूब दुहनेवाला (पोहक) (घ) बूब मचनेवाला (जो बही आदि बनाता था; इतिमचनकर्मा) और (च) चिकारी (मुम्बरक) जो बगैरी जानवरों से पशुओं की रक्षा करता था। कौटिल्य ने इस बात का भी उल्लेख किया है [XIV ३] कि कुत्ते (घुनका) गाँवों की रक्षायी करते थे (ग्रामे कुतुहलाः)। इन सब कार्यों को निश्चित भत्ता के आधार पर नौकर रखा जाता था और यह भत्ता वस्तुओं के रूप में दिया जाता था (हिरण्यभूता)। उन्हें बूब या मचान का कोई भाग भत्ता के रूप में नहीं दिया जाता था क्योंकि इससे भय था कि कहीं यहाँ उस बूब से बचन न रह पाई जिस के सहारे उनका पोषण होता था।

(२) सौ-सौ पशुओं के ऐसे गधे (अपशान्) होते थे जिनमें शराब

बराबर संख्या में बूझी मायें दब देनी बाकी मायें गामिन मायें बछड़े तथा बछियाँ हाँती थी जिनकी देखभाल एक ही बरबात्ता कर सकता था। उसे बूझ-रही माँ के का एक भाग पारिवर्त्मिक के रूप में मिलता था। इस प्रणाली को करप्रतिकर कहते थे।

(३) सौ-नी पशुआ के ऐसे घस्से जिनमें रागी या अर्पण मरेली होते थे या ऐसे मरेली सिंह कबक बही माँ की वह सकता हो जो उनसे ममी भाति परिचित हो या जिन मरेलियों को आमाओ में न दुहा जा सकता हो (कुर्बोह) या ऐसे मरेली जो मर हुए बच्चा को जन्म लेते हैं (पुनर्जन्म)। ऐसे बेकार और पशुवन्द पशुआ के घस्से (ममोस्कुट) की देखभाल एक ही माँ की करता था जिन पारिवर्त्मिक के रूप में बूझ-रही का एक भाग दे दिया जाता था।

(४) ऐसे पशु-मनुष्य या पशु से बचाने के लिए राजकीय पशुआला की निगरानी में छाँटा जाते थे जिनके बदन में रुख्य उनसे प्राप्त होनेवाले कुछ शरीर दाहि का बसकी भाग बसक कर भेजा था। इस प्रणाली को भेषाणु प्रविष्टक कहते थे।

मर्निगा का सम्बन्ध अपनी निगरानी में गये गए पशुआ का वर्गीकरण इन धर्मिता में कर देना था छाँटे बछड़े का से बार वर्ष तक के बछड़े पासतू मरेली बँल (बाहिल) साठ (बुप) पानी में जाने जाने वाले दैल से मैसे जिनका मान व्यापक जाना था और बोस गलेवाले मैसे।

मर्निगा १। मारने या बुराने पर बढोत्तम दह दिया जाता था।

माता-पिता से आधा की जानी थी कि वे मर्निगो के रोमों की बिक्रिस्ता करेंगे।

वे बच्चा (आमन्) या पहाया हुआ या गुगाया हुआ माँ से बच सकते थे।

वे शान्ति बछा तथा मुमरा को छाँटा (अविवित) दिखाते थे।

बारी पशु तथा हमस बनुआ में दिन में दो बार बूझ हुआ जाना था और गिनार पशु तथा बीप्य पशुआ में केवल एक बार।

उ मर्निगे में एक बार भेदा तथा भररिया का रूप (अर्पण) उताग जाता था।

ममी पशुआ के लिए 'प्रचर भाजा में जाने तथा पानी का प्रत्यक्ष करना' आवश्यक था।

बराबरों का सम्बन्ध (त्रिबीताप्यन्) : मर्निगो के अन्त्य के गाँव परा गाँव का भी एक अन्त्य होता था जिसे त्रिबीताप्यन् कहते थे [II, १४]। यह अधिपति पशुआ के करने का प्रत्यक्ष बताया था। बह पशुओं के करने के लिए पशुआ का प्रत्यक्ष ऐसी जगहों पर करना था जहाँ पशुओं के चारा तथा

घाँसों से सुरक्षित हों। निम्नो मृमि पर स्थित बनो में से विनोय रूप से पाए जाते हैं।

बिग इन्फार्मों में पानी नदी होता था वहाँ 'क्यों' सामान्य तथा बाँया (सेतु बाय) का और फूलों तथा फल की बाटियाँ के लिए बस ४ छोट-छाटे स्रोतों (उत्स) का प्रबंध करके नए चरागाह स्थापित करता था। यह अल्पतः कई अधिकारियों (मुद्राध्यक्ष) को भीकर रखा था कि वे जंगल की रखवानी करने के लिए अपने अधिकारी पत्तों (स्वाय) सेकर उनमें काम कर। कुम्भको के बार में यह भी कहा गया है कि वे अपने निकरी कतों की महामता से छेर पकड़ते थे [IV १]।

अंत में उसका काम यह होता थाकि इनारती लकड़ी तथा हाथिया के फगलों (अध-हस्त-वन) की जो वैवाचार बच जाए (बाजीव) उसका उपयोग निम्नलिखित कामों के लिए कर (१) परिवहन की सुविधाएँ प्रदान करने के लिए (घरनी) (२) चोरा से रक्षा के लिए (चोर रसचम्) (३) काष्ठों की रक्षा के लिए (साधनितवाध्यम्) (४) मन्त्रियों की रक्षके लिए (गौरदम्) और (५) इन वस्तुओं की सेम-वन तथा रूप विषय भादि (व्यवहार)। पासपोर्ट का अध्यक्ष (मुद्राध्यक्ष) पासपोर्ट के लिए एक अध्यक्ष होता था जिसे मुद्राध्यक्ष कहते थे। यह एक माय का धूलक लेकर हर यात्री को घाना का अनुमति-पत्र देता था। इस अनुमति-पत्र के बिना यात्रा करनेवाले को १२ पस बंड देना पड़ता था।

लौकिकपन का अध्यक्ष (माध्यक्ष) [II १८] उसे जल-मापों से होनेवाले हर प्रकार के घानायात्र पर नियंत्रण रखना पड़ता था—नदियों में भी और समुद्रों में भी समुद्र से उसके छट तक (समुद्र-संघान) या नदी के मुहाने पर (नदीमुख) या छीको (क्षेत्र) तथा ठाकाओं (वितर) में से मार्ग जहाँ भी हों प्रशासन के क्षेत्र में था स्थानीय मार्ग—माध्यक्ष उनका निरीक्षण करता था। नदियों तथा समुद्रतट पर चौकमी भी वही करता था राज्य की ओर से नावों तथा जहाज का प्रबन्ध करता था समान यात्रियों से भाड़ा (भाषायेतम्) बसूक करता था बंदरगाह के प्रचलित नियमों (पसमानुपसम) के अनुसार घाट पर बदा किये जानेवाले छार मद्रमूल (मुद्रमाय) और नदी के किनारे तथा समुद्र के किनारे बसे हुए गाँवों से कर (वसुपम्) जमा करता था और जितनी पकड़ियाँ पकड़ी जाती थीं उनकी किसी की रकम का छटा भाग नावों के भाड़े (नौकामात्र) के रूप में जगल करता था।

मोटी तथा घंटा निकालने पर भी कर लगता था पर यदि कोई इस काम के लिए अपनी नाव इस्तेमाल कर तो इस पर बह कर नहीं लगता था।

या कोई भी बिना अनुमति के नदी पार करता था (धनितृप्युत्तारिणः) या समुद्र द्वारा निर्दिष्ट किये गए स्थानों अथवा समयों के अतिरिक्त अन्य किसी स्थान से या अन्य किसी समय पर नदी पार करता था (अद्यापि अतीर्णं च तरनम्) ता उक्त पर अर्माना किया जाता था। अपराधी संश्लेष चरित्र के साथ कर भुगत करने से बचने की कोशिश करनेवाले या बिप (विपहस्तम्) मुक्त हथियार (मुक्तहस्तम्) और शिष्टाचार वर्णार्थ (अग्नियोगम्) लेकर बचनेवाले लोग गिरफ्तार कर लिए जाते थे।

इन लोगों में नदी पार करने का कोई भाड़ा नहीं लिया जाता था। मछुप (कवर्त) ; धन तथा वास से जाने वाले (काष्ठ वृक्षमार) पृथ्वी की वाटिकाया (पुष्पपट्ट-वाटिका) के रउछाने पाण्डित्य की नियमनी करनेवाले परवाह (पट-यो-वाहक) ; अपराधियों का पीछा करनेवाले पुलिसवाले गुप्तचर और तथा को रम्य पहुँचानेवाले बीच धर्मिकों के लिए मात्रम (मस्त) पीषा में प्राप्त हानकारी चीजें जैसे फल फल लकड़ी आदि (इष्टं पुष्प-वाटिका-वाटिका) में जानेवाले साथ दलसबाने दलके में रहने वाले साथ (लनू-वामाणात्) और बाह्य साथ, बच्चे बूढ़ तथा गोपी और धर्मबन्धी विधवा ।

अप्यक्त का यह कर्मस्थ होगा था कि यदि कोई जहाज मूठान में पंजर दूट दूट जाए (जाताहत) या रास्ता भटक जाए (मुक्त) तो बहुत पित्त के समान समझी गया करे (पित्त अनुगृहीयमान) और यदि किसी व्यापार करनेवाले जहाज को रक्त से कोई हानि पहुँची हो (उदर-प्राप्त) तो उससे जाया शुल्क (अध-प्राप्त) या बिप्यक्त ही शुल्क न हो (अप्रक्त) ।

या जहाज अपनी यात्रा के दौरान में (अप्योत्तारिक) किसी बंदरगाह पर रुकने से उक्त बंदरगाह पर रुकने का भाग देना पड़ता था ।

मृत्यु कर ले जाते (निगता) या दण्ड के रूप की धार देनेवाले (अग्नि विपयानि) या बन्धन २ नियमों का उल्लंघन करने वाले (अध-वस्तन धार्त्रि-वस्तनिक) जहाज पर लिए जाते थे ।

उत्तरा-का मधी मरिया के घाटे पर राज्य का भाग ले जहाज और इनका बचनेवाले बमपानिया का हर समय भूमिका प्रत्यक्ष रहता था। हर जहाज पर एक बन्धन (दण्ड) मरिया का भाग लेनेवाला (विपयक्त) जहाज के अंशों की दण्डमान बन्धनार्थ (दण्ड-वस्तनिक) पात्र की रक्षिका की रक्षाना बन्धनवाले (दण्ड-वस्तनिक) तथा पानी उल्लंघन (उल्लंघन) करने से ।

या का मर्यादित नियम था और जो नियम जहाज का तथा नियम जारी

रोम के जाता था जैसे ऊट जैसे बैकगाड़ियाँ आदि उससे उतना ही महसूस किया जाता था ।

बहरगाहों का अध्यास (पसनाध्यस) [II १८] : उसका काम होता था बहरगाहों पर नियंत्रण रखने के लिए (पथ्य-यत्न-वारिजम्) नियम (मिर्घ) बनाना नावाध्यस इन नियमों को मानने पर बाध्य था ।

बाणिज्य-अध्यस (पथ्याध्यस) [II १९] : उसके जिम्मे माल की पूर्ति उसकी कीमतों और उसके क्रय-विक्रय पर नियंत्रण रखने का काम होता था । देश के भीतर तैयार होनेवाला वह माल जिस पर राज्य का स्वामित्व होता था (स्व-भूमिज-राक्षपथ्य) एक ही मंडी में बेचा जाता था (एक मुद्रम्) और उसकी बिक्री केंद्रीकृत होती थी और विदेशों से आनेवाला माल कई मंडियों में बेचा जाता था (अन्य-मुद्रम्) ।

पथ्याध्यस के अधिकार-क्षेत्र में बीजों के क्रय-विक्रय तथा उनकी कीमतों पर राज्य की ओर से नियंत्रण रखने की भी व्यवस्था थी । बीजों की प्रचलित कीमतों (अर्घवित) की पूरी जानकारी रखना उसके लिए आवश्यक था । वह व्यापारियों को लाइसेंस लेकर (अनुमत्याः) जल तथा जंगल बिकाऊ माल के भंडारों पर नियंत्रण रखता था ।

अनधिकृत भंडार जप्त कर लिये जाते थे । जब व्यापारियों के किसी एक विशेष समूह को व्यापार करने का लाइसेंस दे दिया जाता था तो जब तक उनका छाप माल बिक न जाए तब तक किसी दूसरे व्यापारी को लाइसेंस नहीं दिया जा सकता था ।

यह नियम इसलिए बनाया गया था कि प्रतिद्वंद्विता के कारण कोई व्यापारी कीमतें न गिराने पाए ।

अध्यस अपना सब माल बिक जाने के समय तक के लिए केवल एक ही केंद्रीय मंडी के लिए बिक्री को नियमित करा सकता था (एकमुख व्यवहारं स्वापयेत्) । उस समय तक किसी दूसरे को वही माल बेचने की इजाजत नहीं होती थी ।

मुनाप्रबोरी को रोककर भी अध्यस कीमतों पर नियंत्रण रखता था । ऐसा करने के लिए वह लोक कीमत निश्चित कर देता था और उस पर बोड़े से मुनाफ़े (अन्वीज) की घुंभाइस रख कर फूटकर कीमत तै कर देता था । इस मुनाफ़े की दर देश के भीतर बजनेवाली बीजों के लिए (स्वदेशीयानां पथ्यानाम्) ५ प्रतिशत और विदेशी माल के लिए १० प्रतिशत होती थी ।

यदि कोई व्यापारी कीमतों की नियत दर से अधिक मुनाफ़ा कमाने की

कोषित करना तो उस कम से कम २० पण अर्जना देना पड़ता था और यह अर्जना उससे अपराध के अनपात से बचा जाता था ।

इस हितकर नियम का उद्देश्य काम की जात्रा का व्यापारी की उचित दैनिक आय (विशेषतः तन्म) के हिसाब से सीमित करके अन्न उपभोक्ताओं को रान देने वाला था (अनुष्ठेय प्रजातान्) [II १६ IV २] ।

दीपको के बाद में यह नियम था कि वे दानी नहीं हानी चाहिए, कि जनता उनका माग सहन न कर सके (अनुष्ठेय अनप्रीडया) और न राज्य को जनता पर भार डालकर मलाका ही सामान चाहिए (स्वकृतमपि च ताम्रं प्रजाता औपचारिकं धारयेत्) ।

बिना वस्तुओं की मरणा बीपन की निम्न आवश्यकताओं में होती है बिनाकी मीर्य तथा वृत्ति की कोई सीमा निर्धारित नहीं की जा सकती (अन्नस्य चैते ब्रूय तथा वरकारिणी) वे हर समय हर स्थान पर बची जाती थी ।

राज्य अपने माग की बिनी के लिए व्यक्तिगत व्यापारियों को अपना एजेंट नियुक्त कर सकता था लेकिन गर्त यह थी कि यदि हानि हावी तो वह व्यापारी उस पूरा करेगा (छेदानुत्पन्नं वीवर्यं) । यन्तु हम प्रकार की बिनी एक ही केंपीय मंडी में न हाकर कई मंडिया (अनुमन्त्रम्) में करने की इजाजत होती चाहिए ।

राज्य को बुविचारों के घर (अनुष्ठेय) जैसे हम बाग का आस्वागत देकर कि सीमास्त पुत्रिस बनवास आदि व्यापारियों को परेधान नहीं करेंगे और व्यापारी भागि सम्मूहों से छत्र लेकर जायाग व्यापार को प्रस्तावित देना चाहिए । समस्त के गान जायाग-व्यापार (गविन्द-सार्वधाय) को विधाय गविचारों की जानी चाहिए ।

बिना न आनेवा व्यापारियों पर (जागमूनान्) रूप के लिए मुद्रमा नहीं बनाया जा सक्त था (अन्नमित्रीगन्धाय) पर जा माग व्यापार में उनकी भावना करने तक प्रति उन भाग वांशित पूरे करने चाहिए (अन्वय सम्मोष वादिम्भ तनुपचारि-वर्ध-करानु-प्रणाय) । )

अन्वयस माग का निर्धार भी करना था कि विभिन्न कर जैसे बुनी (गन्ध) सार्व वा घर (बर्नी) गान-वर (गविचारिण) मला कर (मुम्भ-देय) पात्र कर (सरय्य) या गान के माग गम राज्य की मरणा हो (उत्तं वनेत्) ।

यह माग का निर्धार में बिना दण्ड गान नीति भी नहीं बिनी दण्ड का जोर पर । यह बिना निर्धार माग में गान के नयून भेजा था अन्वयस दण्ड पर यह दण्ड बिना दण्ड निर्धार तथा गान गम पर माग दण्ड

अहर्बहिता में मिलता है, जो भारतवर्ष के पश्चिम या कर्नाटिक् उत्तर-पश्चिम के इलाके में रहते थे।

यह बात ध्यान देने योग्य है कि वे मरिचएँ इससे पहले भी इस्तेमाल की जाती थीं। पापिमि ने कापिषायन तथा कापिषायनी के नाम से उनका उल्लेख इस वर्ष में किया है, कि वे कापिषी नामक देश 'बनाई जाती' थीं (IV, २, १९)। कपिषा (ॐ आपुनिका कापिषिस्तान) उस प्रदेश को कहते थे जो कृमर नदी तथा हिंदुकुश के बीच में स्थित था जिसके बाद बाह्लीक प्रदेश था।

इसी प्रकार जैसा कि हमर बताया था चुका है हारहुरक उस मरिच को कहते थे जो इरुएँति (अबेस्तन) नामक नदी की बाटी में बनाई जाती थी पुरानी इंग्रजी में इस नदी का नाम हरहुबरी था और आजकल इसे हेम्वद कहते हैं।

आज भी इनके के लिए हरहुर नाम का प्रयोग किया जाता है और जैसा कि मट्टोबी कीमत में बतलाया है कापिषायन एक प्रकार की मजबूत अचिप होती थी (जो आजकल हरे जंगलों से बनती जाती थी) और कापिषायनी एक प्रकार का जाल होता था।

यह बात भी ध्यान में रखनी चाहिए कि चंद्रमुष्ट मौर्य के शासनकाल में वे प्रदेश जहाँ से मरिचएँ बनाई जाती थी भारतीय साम्राज्य के अंतर्गत थे।

उन्मुक्त मरिचालन : राज्यों के अबसरों पर (उत्सव वसन्तारि-वसन्तेषु) सामाजिक समारोहों के अवसर पर (समाजसंजुजन-नेसन्तेषु) और धार्मिक उपासना के अवसर पर (आज इच्छेकस्तान्वा) चार दिन तक बिना किसी 'रोक-टोक' के और प्रभावित मरिचालनों के बाहर भी मरिचालन की छूट होती थी। परन्तु यदि कोई इस छूट की सीमा का उल्लंघन करता था तो सुरुष्यस्य सप्त सोमों पर, जो इस अवधि के बाद भी मरिचालन करते हुए पाए जाते थे प्रतिदिन कुछ जुर्माना लगाया जा (जिससे कि 'वे अपने काम का हर्ष न करें')।

इस प्रकार ऐसा प्रतीत होता है कि आधकारी कं से छारे दियास मजबूत को सरकार का अधिकार कबल जानकर बनाये गए थे।

मेवातपनीक : हम यह बात भी ध्यान में रखें कि मेवातपनीक ने लिखा है कि भारतवासी राज्यों के अबसर पर मरिचालन करते थे और यह कबल उस बात के सर्वथा अनुकूल है, जो कीटिश्य ने इन अवसरों पर मरिच के विधेय काइसेट दिए जाने के बारे में कहा है।

(बीतवाभ्यस्य (नाप-सोक के आपरों का अभ्यास) [II, १९] नाप-टीक के मापसंब बीतवाभ्यस्य बनवाता था। बाट जीहू के या सक्क तथा मेकल के पत्त



के या अन्य किसी ऐसी चीज के बनावे जाते थे जो गरम होने पर न तो बढ़ें न छंटे होने पर सिकुड़ें। छ मंथुक या उससे अधिक लंबी छड़ियों वाली पकड़ेदार तुलाएँ बनाई जाती थी। निजी व्यापार करनेवाले लोग नाप-तोळ के जो मापबंद इस्तेमाल करते थे उन पर अभ्यस मुहर लगाता था और इस काम के लिए उनसे चार माप का शुल्क लेता था। हर चार महीने बाह्य नाप-तोळ के माप-बंदों की जाँच-पड़ताल की जाती थी और इसका दर्ज पुरा करने के लिए, 'एक कारुषी' प्रतिदिन का बिरोध कर वसूल किया जाता था। सरकार ने कम्बोई तथा दोब्रछ नापने और समम नापने के मापबंद भी निर्धारित कर दिए थे।

सूत्राभ्यस (बुनाई तथा कटाई का अभ्यस) [II २३] सूत कपड़ा, कज्ज (बर्त) तथा रस्सियाँ बनाने के लिए सरकारी कारखाने थे।

धार्मिक स्थियाँ इन कारखानों में ऊन (ऊर्षा) छाल (पफक) कपास रेशमी कपास (तुल) सन (राज) तथा शीम का धागा कातने के लिए (वर्तयेत्) औरतों को काम पर रखा जाता था।

नाम पर ऐसी ही औरतों को रखा जाता था जिसका घर-बोपण करने-वाला कोई न हो जैसे विधवाएँ, अपन औरतें (स्वया) छड़कियाँ छाबुनियाँ बंदिश स्थियाँ बूढ़ ब्रह्मचरियाँ आदि।

परदा करनेवाली औरतें जो कारखाने में काम करने नहीं आ सकती थीं उनके लिए कारखाने में काम करनेवाली बूमरी औरतों के हाथ (स्वराविनि) उनके घर काम भिजवा दिया जाता था। कटा हुआ सूत सूत्राला में देना होता था।

मजदूरी श्रमिका और जिस बोटि का काम किया जाता था उसी के अनुसार मजदूरी मिलती थी। पारिवारिक देने में विरम्य करने पर दंड दिया जाता था (केतनकाष्ठानिषान्ते भयम् सहस्ररथः)।

उत्पादित वस्तुएँ लौह (लग या गूह) कुशुक (रेद्यम) इस्तिता (सीढ़े हैं प्राप्त होने वाला रेशम) रज्ज (हिरण का रज्ज) और कार्पास (कपास) आदि विभिन्न चीजों का मूल जाता जाता था (सूत्रबाल-कर्म)।

नए-नए नमूनों के (उत्पापयेन् अपूर्वनि निर्धारयेत्) बने-बनाए अन्य कम्बोय (आतरथ) और परदे (प्रावरथ) भी बनाए जाते थे।

सूत की रस्मियाँ और रेश तथा शीम की छाल की बुनी हुई नेटियाँ (बग्गा) भी कारखाना में बनाई जाती थीं जिनसे भारवाहक वस्तुओं को बाँधा तथा मपाया जाता था।

बूझना तथा शक्ति का गुणित का विभाग (I ११ १२; II ४५) इन विभाग का काम कुल्लरी (बग-गुरवा) के हाथ में होता था जो एक बिरोध

किसी गाँव में से जाते से और वहाँ पहुँचे से ठीक किये हुए किसी घर में घुसते से और वहाँ उन्हें से सब अपराध करने देते से । चोरा को पकड़वाने के लिए वे चोरों का भेष धारण करके चारों के साथ हो जाते से ।

हमें ऐसे कामुक्तों का भी जस्सेस मिलता है, जो सट्टरी का घप बनाकर अपराधी बन्ध-जातियों के बीच जाते से और उन्हें किसी काठिके पर या किसी ऐसे गाँव पर हमला करने के लिए उकसाते से जिसमें पहुँचे के सन्ने पताने के लिए नकली सोना तथा और सामान भर दिया जाता था । जब योजना के अनुसार आक्रमण होता था तो या तो आक्रमणकर्ता वहाँ पर उनकी ताक में पहुँचे से निवृत्त किये गए सैनिकों द्वारा भीत के बाट उतार दिए जाते से या जब वे विशेष रूप से उनके लिए तैयार किया गया विपास्त भोजन करके मरे में से जाते से तब उन्हें गिरफ्तार कर लिया जाता था (I V, ४, ५) ।

राजदूत विभाग (I १५) सरकार का एक राजदूत विभाग भी था जो देश के वैदेशिक सम्बन्धों का काम देखता था । राजदूत पूर्वतः योग्य जमातों में से भर्ती किए जाते से और वे विभिन्न सेनिकों के होते से (१) निवृत्त्यार्थ सर्वाधिकार-सम्पन्न राजदूत (२) प्रतिनिधित्व ऐसा राजदूत जो केवल एक सीमित उद्देश्य को लेकर भेजा जाता था और (३) वास्तव-हृदय वह राजदूत जो कोई संदेश लेकर भेजा जाता था अर्थात् राजाशा के जानेबाने राजदूत ।

जब किसी राजदूत को किसी दूसरे देश भेजा जाता था तो उसे बड़ी धूमधाम के साथ हर प्रकार की मानसिक सामग्री से पूरी तरह सैज करके ही भेजा जाता था उसके लिए गाड़ी (यान) सवारी (वाहन) के लिए घोड़ों तथा अन्य पशुओं गीकरों-वाकरों (पुरुष) और बाना के लिए समुचित भोजन तथा विभाग (परिचार) का प्रबन्ध कर दिया जाता था । राजदूत को राजा का प्रवक्ता (दूतपुत्रः राजानः) कहा गया है । उसे इस बात का पूरा ज्ञान होना चाहिए कि विशेषों में उसका आचरण किस प्रकार का होना चाहिए । उसे बपीर नहीं होना चाहिए और जब तक उसका लक्ष्य प्राप्त न हो जाए और उससे वहाँ से चले जाने को कह न दिया जाए (वैतथिमुक्तः) तब तक उसे वहीं रहना चाहिए । उसके प्रति जो सम्मान अपना आवश्यक आचरण प्रकट किया जाए (पूजाया मोदितकः) उससे उसे प्रभावित नहीं होना चाहिए । उसे पूर्ण नैतिक संनम से जीवन व्यतीत करना चाहिए और नारी तथा महिला से दूर रहना चाहिए (विशयः बालम्बः वर्जयेत्) । उसे सर्वप्रथम महत्त्वपूर्ण कार्य सीधे जाते से जैसे राजा का संदेश पहुँचाना संधियों का पाठ्य करना (संविवाक्यम्) अंतिम बैठकनी (प्रत्यय) देना दिव्य बनाना (मित्र-संघट्) राजनीतिक पर्यवेक्षण (अप जाय) करना राजा के मित्रों को ठीकना (सुहृद-भेद) आदि ।

वैद्यताप्यस्य (धार्मिक संस्थाओं का अध्ययन) इस पदाधिकारी का नाम वैद्यताप्यस्य सर्वथा उचित ही था (V, २) । यहूतों तथा बाबों के सभी मंदिरों तथा उनही सम्पत्ति की जिम्मेदारी उस पर होती थी । वह किसी भी मुराने मंदिर, नई मूर्तियों अथवा चित्र-चित्रों की स्थापना कर सकता था और इस पुनः व्यवस्था पर धार्मिक जगत्वा तथा समाजोद्धार का आयोजन कर सकता था जिनमें वह इन संस्थाओं के लिए तीर्थ-यात्रियों द्वारा चढ़ाया जानेवाला दान जमा करता था (यात्रा-समाजार्थी आजीवेत्) ।

मुख्य पदाधिकारियों की सूची कौटिल्य ने इन मुख्य पदाधिकारियों की एक सूची दी है (I १२) जिनमें से शामिल हैं (१) बंधी, (२) पुरोहित, (३) सेनापति (४) युवराज, (५) वीरपति (६) अंतर्गतिक, (७) प्रसास्ता जिस पर सैनिक पदाधिकारों की व्यवस्था का भार रहना था (८) सभाहर्ता (९) सन्नि-यस्त। (१०) प्रदेष्टा (११) नायक, (सेनानायक) (१२) पौरध्यावहारिक (१३) कार्यनिष्ठ (प्रतिष्ठ-उद्योग का अध्ययन) (१४) धर्म-परिपाल-अध्ययन (१५) वृद्धपाल (मुख्य सेनानायक, जो सेनापति से विभक्त होता था; सेनापति अस्तौहिषी घना का प्रधान अथवा ईश्वर होता था—इस सेना में २१,८७० रथ इनमें ही हाथी १५,६१० घोड़े और १०९,१५ बैरक बिपत्ती होते थे) (१६) युवपाल (१७) अन्तपाल और (१८) आरक्षिक (अन्तर्गतिकयाधिपति 'अर्पण् बन्-राज्य का स्वामी') । कौटिल्य ने इन अन्तर्य मुख्य पदा को अध्यावस्तोर्ध भी कहा है ।

## अध्याय ७

### भू-व्यवस्था तथा ग्राम-प्रशासन

वैमाहस : सेनी की जमीन रज्जु के पैमाने से नापी जाती थी (१ रज्जु = १० धण्ड = ४० हाथ १ हाथ = ५४ अंगुल होता था) । असम-जलम प्रकार की जमीनों के लिए अलग-अलग मापदंड प्रयोग में आते थे—जैसे धनिक पड़ाव की भूमि इमारती कच्ची के बराबर सड़कें तथा कुएँ, माछी की जमीन जिसका उपयोग नहीं किया जाता था आदि ।

वैमान्ध तथा बन्धीवस्त का खर्च जमीन के मालिक से लिया जाता था, जिसे इससे साम होता था ।

बन्धीवस्त जमींदार के रूप में राज्य के कलखों के सम्बन्ध में कुछ मनी रकम बावेंस दिये गए हैं । सबसे पहले तो ऐसे गाँवों की स्थापना की जाती थी जिनमें कम से कम १० और अधिक से अधिक ५०० परिवार हों । राज्य कुठरे प्रवेशों के लोगों को उद्घाटन देकर इन गाँवों में लाकर बसाता था (परवेश-बसाहनेन) या वह स्वयं अपने देश के अधिक जाने वाले हुए इलाकों के लोगों को इन क्षेत्रों में लाकर बसा देता था (स्वदेशाभिप्यवसनेन) ।

ये गाँवों के बीच में कोई सुनिश्चित सीमा-रेखा होती थी जैसे नदी पहाड़ी जंगल, झाड़ियाँ (गुट्टि) काटी (बरी) घटबच (सेगुबच) और सामान्य जमीन या बट के वृक्ष । यह भी आवेष्ट था कि गाँव एक-दूसरे से बहुत दूर न हों । उन्हें एक-दूसरे से हट से हट एक या दो कोस (कोस) दूर होना चाहिए ताकि समय

पड़ने पर वे एक-दूसरे की रक्षा कर सकें। (अधोपहारम्) [II १]।

गाँवों में सामूहिक जीवन को प्रोत्साहन देने के लिए १०-१० गाँवों को एक ही प्रशासन-क्षेत्र के रूप में संगठित कर दिया जाता था जिसे सप्तराष्ट्र कहते थे २ १०० गाँवों के सामूहिक प्रशासन-क्षेत्र को कारवर्तिक और ४००-४०० गाँवों के सामूहिक प्रशासन क्षेत्र को डीणमुख कहते थे। इस प्रकार अंत में ८०० गाँवों का सम बन जाता था जिसे महाग्राम कहते थे। और इसके प्रशासन क्षेत्र की स्थापना करने से जो संस्कृति वाणिज्य व्यापार तथा जीवनोपार्जन के साधन का क्षेत्र होता था वहाँ उस पूरे इलाके के सामवासी एकत्रित होकर सामूहिक जीवन का निर्वाह करते थे [II, १]।

जिन लोग की सेवाओं की गाँव को उबरता होनी थी उन्हें राज्य की ओर से भूमि दी जाती थी और उस पर कोई कर या कर भी नहीं वसूल दिया जाता था। ऐसे लोगों में इनकी गणना की जाती थी—(१) जो लोग धार्मिक संस्काररूप करतब थे (२) अध्यापक (३) पुरोहित तथा (४) विद्वान [II १]।

इन प्रकार की माथी भूमि गाँव के राजकर्मचारियों को भी वन के बरतने दी जाती थी जिसे बेचना या देना करना था (विक्रयामानवर्षम्)। भूमि के अनुदान के रूप में विभिन्न बोटिया के पराम्भिकारियों या बेतन अनुसूति (II, १९) तथा महाभारत (III, ८० २-८) बताता है कि इस प्रकार निर्धारित किया गया है १० गाँवों के घासक को १ बल भूमि २ गाँवों के घासक को ५ बल और १०० गाँवों के घासक को एक पूरा गाँव और १००० गाँवों के घासक को एक पूरा नगर। बल की व्याख्या यह की गयी है कि "जितनी भूमि १२ बैलों से जोनी जा सके"

जो भूमि कुछ घोष न हो उस कीई गनी के घोष बनाये हो (उस का पट्टा उस के जीवन भर के लिए उनको कर दिया जाता था। जो भूमि खेती लायक न हो वह उनमें न ली जाए जो उस खेती के घोष बना रहे हो।

यदि किसी खेती पर खेती न ली जाए, तो वह खेती की जा सकती थी। इस प्रकार जो भूमि गानी होती वह सबसे पहले खेती गाँव के अन्य वृत्तों की ही जाती। यदि वह नहीं सके तो फिर राज्य उस पर अधिक लाभकों के लगाने लोगों को बसाएगा जो उसे उपोषी बना लें और उनका समान भरा कर लें। इस लागी को स्वयं गाँव की ओर से बेतन कर भी रखा जाना था [धामकृतक]। ग्यामीर ग्यामीर (बेदेक) भी इसी धर्म पर प्रविष्ट था जैसे थे। इनमें यह सिद्ध होता है कि कुछ की उन्नति के लिए पूर्णतः उस लाभा का निर्भर करने के बजाय जो खेती जानने या या उस पर खेती करना वे तैयारी-निर्णय की भी गतिवत्ता ली जाती थी या स्वयं खेती की जानते थे।

बीज पट्ट तथा पैसा (हिरण्य) किसानों को उधार देकर कृषि को प्रोत्साहन देना राज्य का कर्तव्य है ताकि किसान भूमि को लाभप्रद बना सकें और बाग में (अनु) यह ऋण तथा देय-भन राज्य को बिना किसी कठिनाई के बराबर मर्के (सुखेन बदात्) ।

राज्य स्वयं हानि उठाकर किसानों का अनाग में छूट (अनुपहपरिहार) नहीं ले सकता (महाभारत XII ८७, ६, ८) ।

कौटिल्य के मतानुसार [VII, ११] जिस देश की अधिकांश जनसंख्या निम्न वर्गों के लोगों की (अवरवर्ण-प्राय) हो वह आर्थिक दृष्टि से देश की अपेक्षा अच्छा (बेवसी) होता है जिसकी जनसंख्या का अधिकांश भाग चार वर्गों में से उच्चतम वर्गों के लोगों (चातुर्वर्ण्यमिनिवैसे) का हो । निम्न वर्गों के काम कृषिकों आवश्यकताओं के अनुसार हर प्रकार का काम कर सकते हैं तथा हर प्रकार की कठिनाईयाँ सहन कर सकते हैं (सर्व-नोपसह्यत्) । इसके अतिरिक्त कृषि पशुओं पर निर्भर रहती है और शूद्र चरबाड़े होते हैं और पशुपालन द्वारा अपनी जीविका कमाते हैं (पशुपात्य) । इसके अतिरिक्त वैश्यों की भी आवश्यकता होती है, जो अन्न के भंडार जमा करके रखते हैं और फसलों के व्यापार पर लेवी वारी के लिए ऋण देते हैं (पण्य-निचयव्यपानुपहृण्) । कौटिल्य ने कृषि को सबसे अच्छा उद्योग माना है क्योंकि इस बहुत-से स्थानों पर (बाहुस्यत्) बकाया जा सकता है और इसके परिणाम निश्चित होते हैं (घ वस्यत्) । अतएव कौटिल्य का मत यह है कि सबसे अच्छी भूमि वह होती है जो (१) कर्ष्यवती अर्थात् खेती के लिए उपयुक्त (२) योराजक्यती अर्थात् वहाँ चरबाड़े बहुत बड़ी संख्या में हों और (३) जो वणिज्यती हो अर्थात् वहाँ कृषि में पैसा कमानेवाले व्यापारी बहुत बड़ी संख्या में हों । निम्न जातियों के उचित महत्त्व का समझना और भारतीय वर्णव्यवस्था का पूर्वतम ज्ञान कौटिल्य जीने कट्टर ब्राह्मण के लिए सम्भव उल्लेखनीय बात है ।

ग्राम-नियोजन हर मास में लेती की जमीन के अतिरिक्त निम्नलिखित कामों के लिए कुछ ऐसी जमीन भी होनी चाहिए जिस पर खेती न होती हो (अकृष्या भूमि) : (१) पशुओं के चरने के लिए चरगाह (विबीत) (२) पानिक अभयन तथा पूजा-उपासना के लिए धान्य वन (बृह-सोमारण्य) तथा उपस्थियों के लिए उपोवना (३) राजा के शिकार खेलने के लिए एक संरक्षित वन जिसमें 'हरण तथा हाथी जैसे पालतू (पाल्य) जानवर और घेर जैसे हिनक पशु हों पर उनके दांत और नाखून निकाल दिये गए हों' (४) सभी प्रकार के पशुओं के रहने के लिए साधारण वन (सर्वातिथिमुगम्-मुय-वनम्) (५) विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ पैदा करने के लिए विशेष रूप से मयाए जाने वाले

विभिन्न प्रकार के वन जैसे हवारली लकड़ी के जंगल बांस के जंगल या उन  
पुष्पों के वन जिनकी छाल उपयोगी होती है (१) वन-सम्पदा का उपयोग  
करने के लिए कारखाने (इण्ड-वन कर्मास्थान) (७) बागबातियों की बस्तियाँ  
और (८) मनुष्यों की बस्ती के परे हाथी पालने के वन [II, २] ।

ग्राम-विकास राज्य को एक ऐसे कार्यक्रम के अनुसार ग्राम-विकास का  
काम करने हाथों में लेना चाहिए जिसमें ये बातें शामिल हों (१) ग्रामिक तथा  
ग्राम उद्योग के कारखाने (साकर-कर्मास्थ) खोलना (२) इमारती लकड़ी और  
बंदन की लकड़ी तथा अन्य सुपरिशिष्ट लकड़ियों जैसी बहुमूल्य तथा औद्योगिकों के  
लिए उपयोगी लकड़ियाँ पैदा करने के लिए वन लगवाना (३) हाथियों के  
लिए जंगल लगवाना (४) पशुओं के चरागाह (घस) बनवाना (५) मातामय  
के लिए सड़के बनवाना (बनिक-वसप्रकारान्) (६) जल-मार्ग तथा बस-मार्ग  
(बारिस्वतपथ) बनवाना और (७) माक की बिक्री के लिए बाजार (पण्य-  
पत्तन) बनवाना [VII १] ।

राज्य को ऐसे पलायन (सिधु) बनवाकर जिनमें नदी न पानी जाता हो या  
नदी का जल भर जाता हो गाँवों के लिए जल का भी उचित प्रबंध करना  
चाहिए । राज्य को भूमि जल जाने के लिए मार्ग लकड़ी तथा अन्य बांध  
द्वारा सामग्री मफल देकर लोया को निजी रूप से तालाब बनवाने में भी  
सहायता देनी चाहिए ।

जो सीमा निजी छोर पर पड़ा के स्थान (कुप्य-स्थान) तथा सार्वजनिक  
बाटिकारों तथा उद्यान (आराध) बनवाना चाहें उन्हें भी इसी प्रकार भूमि तथा  
अन्य सामग्री मफल देकर राज्य की उनकी सहायता करनी चाहिए ।

यदि कोई गाँव निजी सहकारी योजना का बीड़ा उठाए, तो राज्य को  
निहित योजना में धन तथा वस्तुओं के रूप में सहायता । उसमें शामिल करवाना  
चाहिए । यदि कोई व्यक्ति निहित योजना न करे, तो उसे उसके बराबर  
मूल्य तथा उन योजना में अपने हिस्से का मूल्य (व्यय-कर्मणि या भागी स्थान्)  
देना चाहिए ।

बाप हाथ (सिधु) बनाए गए तालाबों में जा बछ भी उत्पन्न होता था  
जैसे मछलियाँ बताने तथा जल के पोये उन पर राजा का स्वामित्व होता था ।

गाँव में ऐसी बिहार-बाटिकारों या माटन मूल्य नवीन बारन तथा ममगरी  
और भारा के लिए समझ नहीं बनवाए जाने चाहिए, जिससे निम्नहाथ रूपका  
के काम में बाधा पड़नी हो ।

राज्य का अनुरूप नुर्दानों बेमार तथा अल्पविक्रम समान अथवा कर से  
मुक्त हो रखा करनी चाहिए ।

हर पाँच में पुष्प बाटिकाएँ तथा फलों के बाग (पुष्प-कलबाट) कमलों : सरोवर, बसि के झुरमुट (सण्ड) तथा बान के दोत (केदार) हलते थे [II १ ६]। स्वल्प धान्य जीवन के विकास के लिए कुछ अन्य हितकर नियम भी बनाए थे। परिवार में अनुशासन के उत्कर्षण को रोकना राज्य का कर्तव्य था का यह भी कर्तव्य था कि वह परिवार के सदस्यों के मनमोषी नीतियों-एँ (आहितियों) तथा दासों को कृत्र स्वामी की आज्ञा का पालन करने पर बाध्य करें। दास पाँच प्रकार के होते थे गर्म-जात जो जन्मत दास होते थे गृह-जा जो स्वामी के घर में जन्म लेने के कारण दास होते थे औत दास जो बटीर किए जाते थे लम्ब को दूसरे से प्राप्त कर लिए जाते थे औत दासोपपन्न जो लम्ब के बदले में प्राप्त किए जाते थे।

दास के निम्नहाय लोगों बच्चों बूढ़ों रोमियाँ तथा कर्माओं और निः-सत्तान स्त्रियों का भरण-पोषण करने का दायित्व भी राज्य पर ही था। पाँच के बड़े-बूढ़ों (ग्राम-बृद्ध) को इस बात का दायित्व सौंपा गया था कि वे नाबाकियों की सम्पत्ति की रक्षा करें और जब तक वे बाकिय न हो जाएँ तब तक उनकी सम्पत्ति की उचित देखभाल करें और इसी प्रकार मंत्रियों की सम्पत्ति के संरक्षण का भार भी जन्हीं को सौंपा गया था (बाक-ग्रन्थ तथा ऐक-ग्रन्थ)।

यदि कोई व्यक्ति सामर्थ्य रखते हुए भी अपने बच्चों अपनी पत्नी अपने माता-पिता नाबाकिय भाइयों बेटियों बहनों तथा विधवा बेटियों के भरण पोषण की व्यवस्था नहीं करता था तो उसे बंद किया जाता था यदि इनमें से कोई नैतिक आचरण से विमुख हो जाए, तो उसके भरण-पोषण का दायित्व उस व्यक्ति पर नहीं रह जाता था पर माता का भरण-पोषण हर हाजत में करना पड़ता था।

यदि कोई व्यक्ति अपने पुत्र तथा पत्नी के भरण-पोषण का उचित प्रबन्ध किए बिना सम्प्राप्ति हो जाता था और घर-बार छोड़ देता था तो उसे बंद किया जाता था। इसी प्रकार यदि कोई व्यक्ति किसी स्त्री को सम्प्राप्त का पत्र बह्य करने पर बाध्य करता था तो उसे भी बंद किया जाता था।

साक्ष्यों में बताई गई अवस्था से पहले कोई भी व्यक्ति संसार को त्याग नहीं सकता था यदि कोई ऐसा करता था तो उसे बंद किया जाता था (नियम-व्य) [II १]।

भू-राजस्व : भू-राजस्व विभाग का प्रशासन समाहर्ता नामक एक पदाधि-कारी के नियंत्रण में चलता था जिसके कार्यों का संक्षेप पहले किया जा चुका है।



म-राजस्व के लीला जैसा कि हम पहले देख चुके हैं मू-राजस्व में जिन मदा का उल्लेख किया गया है उनके झोठ अनेक हैं जिनका वर्जन राज्य अर्थात् देहात के अन्तर्गत किया गया है। कुर्ब की छाड़कर घेप चारे क्षेत्र को राज्य कहने से। इन झोठों के विविष्ट नाम ये बताए गए हैं (१) लीला (राजा की भूमि) (२) घाव हृषि-उत्पादन का छठा भाग जो राज्य को दिया जाता था (३) कर, दका के बायो की पैदावार पर लगाया जानेवाला कर (४) बिबील अर्थात् चरागाहों से बहुत किया जानेवाला कर (५) बर्तनी सड़क इस्तेमाल करने का कर (६) रज्जु मृमि की पैदाइश का कर (७) चोर रज्जु अर्थात् चौकीदारों अथवा पुलिस का कर (८) सेतु, ठिबाई वाली मृमि तथा टाकाव (९) कम अर्थात् जंगल (१०) ब्रह्म पशुपालन तथा पशु प्रजनन क्षेत्र (११) बलि राजा को दिए जानेवाले उपहार, एक प्रकार का नकलना (१२) जामे जैसे "सोना चंदी हीरे-जवाहरात मणि-मुक्ता मृगा राज मानु गमक तथा पुष्पी से ओढ़कर निकाले जानेवाले अन्य लमिज पदार्थों तथा पत्थर की पार्श्व या पारव जैसे तथा के लेन-देन (रत) [II, १]

प्रयासन राजस्व अधिकारी: राजस्व विभाग में तीन श्रेणियों के अधिकारी होते थे (१) ललाहर्ता राजस्व जमा करनेवाला मुख्य अधिकारी जो इस विभाग का प्रधान होता था (२) स्थानिक और (३) गोप। प्रान्त (जब यह) चार मंडलों अथवा विभागों में बाँट दिया जाता था जिनमें से प्रत्येक एक स्थानिक के आधीन होता था। इस प्रकार के प्रत्येक मंडल को फिर ५-५ या १०-१० पाँचा के समूहों अथवा तर्षों में विभाजित कर दिया जाता था जिनमें से प्रत्येक एक गोप के आधीन होता था। गोप तथा स्थानिक के अतिरिक्त तर्षों में काम करनेवाले कर्मचारियों में से साब होते थे (१) अप्यल जैसे माने तथा रत्न-आमूषकों से बाज पर निगरानी रखनेवाला अधिकारी (सुबर्बा प्यल) (२) संस्थापक गाँव का मुनीम (३) अनीदस्व हाथिया को (जो आल-गात के हाथियों के बजलों से पकड़े जाते थे) लहानेवाला (४) बिबि-ल्लक गाँव का बीघ (५) जगदभक्त पीढ़ों को लहानेवाला (६) जंपा-वरिक (जाँविक) हुरबाय तथा सरेसहार (दूरदंष्ट्रास्तगतजीवी) आदि [II १]।

जनपद के चार पञ्चों में से प्रत्येक मंडल के गाँव अपनी आबादी तथा अपनी आय के अनुसार तीन श्रेणियों में बाँट दिए जाते थे (टीकाकार)।

इलाके में विभिन्न प्रकार के निगिनु दलावज (निबंध) तैयार किए जाने से जिनमें विभिन्न प्रकार के गाँवों की सूची होती थी। जैसे (१) जिन गाँवों का रानान मान हो (बहिहारक) (२) जो गाँव जगान के बड़े ऐतिहासिक तथा

करते थे (आयुषीयं वृष्यकरद्वयकं ग्रामापम्) या (१) जहाँ नियमित रूप  
बाँका नामवाला समान (प्रतिहाराः प्रतिनिमातः कटः) धान्य (अनाज अथवा  
बुसरी फसलों) की निश्चित मात्रा के रूप में भरा करते थे इनमें निम्न प्रकार  
के पशुओं की सख्या तथा यह विवरण कि वे भारवाहक पशु हैं, या दूध अथवा  
ऊँट देनेवाले पशु (बाहू-बौहू-लोमादि-उपकम्) नि पशून् इति पशुकटः) सिक्के  
बमाने में इस्तेमाल की जानेवाली (कीसप्रवेश) मोला ज़ादी तथा ठाँवे जैसी  
बहुमुख्य सामग्री (हिरण्य) कच्चे माल (द्रव्य) की अनुमानित मात्रा तथा  
अभिष्टो (निष्टि कर्मकरपुण्या) की अनुमानित सख्या का हिसाब दिया जाता  
था [II १५] ।

इन प्रकार गाँवों के ध्योरे में हर गाँव का पूरा सार-तत्व (ग्रामार्थ) उसका  
आधिक मूल्य तथा साधन (प्रतिविक्रमम्) तथा पूरे देश के हित में यह किस  
प्रकार का योग देता है यह सब कुछ दर्ज रहता था साथ ही इन वस्तुओं में  
में किसी भी मंडल के सभी गाँवों का सामूहिक सार-तत्व (सामूहिकं च मरि  
माणम्) भी दर्ज रहता था ।

ध्योरा राज्य की आय तथा उसके साधनों में हर गाँव का योग देने वाले  
बाँके योग के अनुसार सभी गाँवों को इस प्रकार अलग-अलग भूमियों में बाँट  
देने के बाद निम्नलिखित बातों की दृष्टि से हर गाँव का अलग-अलग अध्ययन  
भी किया जाता था और योग अपने गाँव से संबंधित सभी आवश्यक बातें अपने  
निर्बंध में दर्ज कर लेता था । हर गाँव का अलग-अलग अध्ययन इन बातों की  
दृष्टि से किया जाता था

(१) नदियों या चट्टानों आदि जैसी सुनिश्चित सीमाओं द्वारा हर गाँव  
की सीमा-रेखा का निर्धारण और इस सीमाबद्ध गाँव (सीमाचरोयेन ग्रामा-  
ग्रम्) का क्षेत्र-विस्तार मापन करना

(२) भूमि के निम्नलिखित हिस्सों (क्षेत्र) को निम्नलिखित भूमियों में विभा-  
जित करना तथा उनको मापना (क) खेती की भूमि (ख) बंजर तथा पर्वती  
क्षेत्र (ग) ऊँड़-सावड़ तथा सूखी क्षेपणी (घ) पान के खेत (कोशर)  
(च) उद्यान (आरान) फलों के बाग (वण्ड) (ज) ईँट आदि के खेत (बाग)  
(झ) ग्रामवासियों की ईँट की सुविधा के लिए जंगल (बन) (ड) आबादी  
का इलाका जिस पर घर बने हों (वासु) (ढ) पूजा के मूल (क्षेत्र) (ण)  
मंदिर, (त) सिंचाई की व्यवस्था (सिन्धु) (ड) वसतिगृह भूमि (ठ) मिछापूर  
(न) पशुओं को पानी पिलाने के स्थान (ग्राम पानीयघाता) (द)  
निर्वाण (प) चरपाहू (मिचौली) और (म) लड़कें ।

(३) ऐसे ध्योरे तैयार करना जिनमें निम्नलिखित बातें दर्ज हों

विभिन्न क्षेत्रों की सीमाएँ (मर्यादा) तथा क्षत्रफल (प्रमाणम्) (ख) सार्वजनिक उपयोग के लिए बन (अरण्य) (ग) रोज़ों में जाने के रास्ते (पथ) (घ) दान में मिले हुए क्षेत्र (सम्प्रदान) (च) बिजली (विक्रय) में प्राप्त किये गए क्षेत्र (छ) कृषकों को दिया गया भूदान (अनुग्रह) और (ज) सरकार द्वारा जंगल में बनी गई छूट (परिहार)

(४) गाँव में बसनेवाले सभी परिवारों की जनगणना (गृहाणां संख्यानेन) तैयार करना जिसमें से जानें की जाएँ (क) रजिस्टर में प्रत्येक परिवार का बर्ताव (घ) वह परिवार कर देता है या कर मुक्त है (करदा अथवा अकरदा) (ग) उस परिवार में कितने ब्राह्मण किन्हीं क्षत्रिय कितने वैश्य तथा कितने शूद्र हैं (एतास्त्वाचार्यवर्गम्) (घ) गाँव में कितने कृषक (कर्मक) बसवाहे (मौरसक) व्यापारी (वैदेशिक) शिल्पकार (काक) कारीगर (कर्मकर) तथा बास हैं (च) अनुषंगी तथा पनुबा की संख्या (छ) हर परिवार राज्य को भुगतान करने वाला कर तथा सैनिक सेवा के रूप में कितना देता है (हिरण्य-विधि शुल्क-वर्ग) (ज) हर परिवार में (कलामा) पुष्पा तथा स्त्रियों की संख्या तथा उनकी व्यवस्था (स्त्री-गृहवाणाम् बाल-वृद्ध-वयः परिच्छेदम्) (झ) वर्ष (जानि) के अनुसार उनके व्यवसाय (कर्मणि) (ट) गाँव के तथा उस परिवार विशेष के रीति-रिवाज (चरित्र) (ठ) हर परिवार की आय तथा व्यय का व्योम (आजीव-व्यय-परिमाण) [II ३५] ।

हर गाँव का इस प्रकार व्योमोद्धार रजिस्टर तैयार हो जाने में सरकार को देशान्तों की हालत का पूरा-पूरा पता रहता था और उसे किसी भी रण में अटकल से काम नहीं लेना पड़ता था । यदि सामन्तवासियों के बारे में पूर्व ज्ञान बाटी वा यह बिबरन हर समय दीव रगता पड़ता था इसलिए बाड़े-बाड़े समय बाद गाँवों की परिस्थितियों का सर्वेक्षण आवश्यक था ।

इन पर-मांगान में गाँव का सबसे निचला अधिकारी तो अपने सामन्तपरिवार के गाँव का पूरा व्योम रगता ही था पर इसके अनिश्चित उसने ऊपर का दूसरा उच्चतर अधिकारी स्थानिक भी आ प्राप्त के बाद विमर्शों में से (अनपद-अनुवर्गम्) एवं वा सामन्तपरिवारी होता था अपने भरण के बारे में इसी प्रकार का व्योम तैयार करता था ।

निरीक्षक (अवेष्टार) राजारव मंत्री इस प्रमाणन पत्रों का परित्याग्न करान के लिए निरीक्षक नियुक्त पड़ता था जो भेद सम्भरकर मुलधार के रूप में देलता अचरित जमाने में और जिसे तथा गाँव के अधिराज्या द्वारा रोज़ों परो (गृह) तथा पंगुवार (कल) के बारे में रने जानबाने निर्दोषी तथा सेरों का निरीक्षण करने से (क) गाँव का क्षेत्रफल तथा उनकी पैनावार बना है

(मान-सम्प्रदायिताम्यो) कावाणि) (ल) किस परिवार पर किसका लगाव होता था है (भोग) और किन किन्तनी छट (परिहार) की गई है और (न) विभिन्न परिवारों की जाति उनका व्यवसाय उनके सदस्यों की संख्या (अंशधर, सदस्यों की गणना इस हिसाब से न करके कि किन्तने सिर हैं इस हिसाब से की जाती थी कि किन्तने ओड़ गनें हैं) उनकी आय तथा व्यय । वे इस बात की भी जानकारी प्राप्त करते थे, कि किस गाँव से कौन गया और किस गाँव में कौन बाहर से आया और कौन लोग संविध्य चरित्र (अनर्घ्यान्ताम्) के हैं जैसे (मर्त्यक अभिनता आदि) और कौन लोग विदेशी जातुस हैं ।

अप्य अजिर्वो के निरीक्षण सेतों कर्मों के नामों अथवा जानों तथा कार जानों के उत्पादन से से राज्य को मिलनेवाले भाग की मात्रा तथा उनके मूल्य का निरीक्षण करते थे ।

कछ निरीक्षक ऐसे हाते थे जो अन्न-मार्ग अथवा अन्न-मार्ग से दस के भीतर जाने वाले मास पर तथा उन पर लगाए जानेवाले विभिन्न प्रकार के करों की बसुली पर निगरानी रखते थे जैसे बुंदी (सुष्क) चक्र का कर (वर्तनी) माड़ी का कर (अस्तिवाहिक) सेना का कर (सुष्म-वैष) घाट का कर (सर वैष) चौदायतों द्वारा राज्य को दिया जानेवाला अपने भाग का छठवाँ हिस्सा (भाग) रहने का खर्च (भक्त) और सरकारी गोधामों (पण्यागार) में मांस रखने का भाड़ा [II १५] ।

किशानों चरवाहों चौकागरो तथा सरकारी विभागों के अधिकारियों पर नजर रखने के लिए साधुजां क भेप में निरीक्षक भेजे जाते थे । जिन स्थानों पर पेड़ों की पूजा की जाती थी चौराहों पर, निर्जन स्थानों में राजाओं नदियों तथा नहाने के स्थानों के आस-पास तीर्थस्थानों में तपोवनों में मरुस्थल प्रदेश में पहाड़ियों पर और घने जंगलों में गुप्तचर पुराने शाकुनों तथा उनके साधियों का भेप बढ़तकर जाते थे और यह पता लगाते थे, कि थोर, सन्तु तथा डाकू उन स्थानों में कैसे और क्यों आते हैं और वहाँ किस उद्देश्य से ठहरते हैं ।

निम्न सेवी के निरीक्षकों के अतिरिक्त कुछ उच्च सेवी के प्रदेष्टा भी होते थे जो नियमित रूप से हर जिस में अपने अजीम काम करनेवाले राजस्व अधिकारियों के काम का निरीक्षण करते थे (उपयुक्त कथन की पुष्टि के लिए देखिए II १५) ।

भूमि का अन्वेषण (III, ९) भूमि भी जतनी ही सासानी से बेची जा सकती थी जैसे कोई अन्न-सम्पत्ति । जिस भूमि या मकान को बेचना होता था उसे उसके आस-पास के आजीस जामदाइवालों की उपस्थिति में सार्वजनिक रूप से नीलाम पर बड़ा दिया जाता था । वे लोग उस बिक्राऊ भूमि या मकान के

सामने एकत्रित होकर उसके विकास होने की योजना करते थे। साथ ही उस इलाके के बयोबुद्ध लोग की उपस्थिति में होता था। उस सम्पत्ति की सीमाओं तथा अन्य आवश्यक बातों का विवरण दिया जाता था। फिर नीलाम करने वाला ऊँचे स्तर में तीन बार कहता था 'इस भूमि अथवा मकान को इस मूल्य पर तीन परीक्षा कराहता हूँ (अथवा अर्थों का प्रस्ताव) ? यदि किसी को आपत्ति नहीं होती थी (अभ्याहतम्) तो इसके बाद वह भूमि तृतीयपक्षों को मिल जाती थी। परन्तु यदि कोई व्यापार उन्नी बोली लगा देता था तो वह अधिक मूल्य और अपने साथ किसी की रकम पर उधार जानेवाला कर राजकोष में जमा कर दिया जाता था। जो आदमी बोली बढ़ाकर मूल्य में वृद्धि करता था वही उसका कर भी देता था। यदि कोई आदमी किसी ऐसी जमीन या मकान का बेचना या जिसका मालिक उपस्थित न हो या जिसका मालिक का पता न हो उसे २४ पण दंड देना पड़ता था (III ९)।

कर देनेवाले किसान अपनी भूमि को केवल आपस में ही बेच सकते थे या गिरवी रख सकते थे। जिन लोगों ने पाम कर मुक्त (इक्सेम्प्ट) भूमि होती थी व इन भूमि को केवल ऐसे ही लोगों के हाथ बेच सकते थे जो इसके लिए उचित पात्र हों। या जिनको पहले ही ३ ऐसी भूमि मिल चुकी हो। इन नियम का उल्लंघन करने पर बेचनेवाला को ४ पण दंड देना पड़ता था (III १०)।

दूसरी प्रकार कर देने वाले को कर देनेवाला व गाँव में ही रहना पड़ता था। यदि कोई कर देनेवाला कर न देनेवालों के बीच में रहता था तो उस दंड देना पड़ता था। यदि कोई कर देनेवाला कर देनेवालों के बीच में कोई सम्पत्ति हासिल करता था तो उसे वही अधिकार तथा अधिकारों मिल जानी थी जो उस सम्पत्ति के पहलू मालिक को प्राप्त रहनी थी (उपपुस्तक)।

यदि किसी भूमि का मालिक अपनी भूमि पर गनी करन में अग्रमर्ग होता था तो दूसरा आदमी पाँच साल के पट्टे पर उस पर पानी कर भरता था यह अधिकारी पूर्ण है। जान पर वह भूमि बायल लौटा देता था और उस भूमि में उगने या नष्ट हो गया था उगना बुझाया उसके मालिक से न लेता था। यदि किसी कर-मुक्त भूमि के मालिक को किसी कारणवश पछ मजदूर व श्रम करी बाहर जाना पड़ता था तो उस उग भूमि के बचक उगाया तथा लाभ (भोग) का अधिकार होता था भूमि से इनका अर्थ लाभ पर राजा का अधिकार होता था (उपपुस्तक)।

कर निर्धारण : देगा कि हम पहले क्या चुके हैं लगान का हिमाय दग आपार पर लगाया जाता था कि वैशाखा का पर हिमाय आम सोर पर उगना आम राज्य को मिलता था। विचारों की भूमि पर दमक अधिकृत पानी का

कर (उद्योगभाग) भी होगा पड़ता था। वैसे कि पहले बताया जा चुका है यह कर सिंघाई की विभिन्न व्यवस्थाओं के अनुसार बढ़कता रहता था—पैदावार के पाँचवें भाग से लेकर एक-तिहाई तक। यदि कोई सिंघाई के लिए कोई नया ठाकाब बाँटि बनवाता था तो उसे ५ वर्ष के लिए छगाग अदा करने से मुक्त कर दिया जाता था (सटाकसेतुबन्धाना नवप्रवर्तने पाञ्चवर्षिकः परिहारः) ठाकाब की मरम्मत बाँटि करवाने पर चार वर्ष की छूट (भण्योत्सुष्टानां चातुर्वर्षिकः) बसत साफ करके नई भूमि पर सेती करने पर तीन वर्ष की छूट (समुपाजधानां त्रैवर्षिकः) और यदि भूमि अच्छी अवस्था में हो (स्वल्गम्) तो २ वर्ष की छूट मिलती थी (III ९)।

पैदावार के एक हिस्से के रूप में बसुल किए जानेवाले इस बुनियादी कमान में (जिसे मुख्य कमाने में असल बमा' कहते थे) भाब की तरह ही और बहुत से कर जोड़ दिए जाते थे (जिन्हें सब आवबाब' कहते हैं)। आवश्यकता पड़ने पर (कोशमकोसः प्रत्युत्पन्नार्थहृणः) राज्य भली-भाँति धींधी यदि भूमि पर होने वाली भरपूर फसल का तिहाई या चौथाई भाग छे सकता था (देव भालुकम्)। राज्य भस का (बाग्यालान्) चौथाई भाग और निम्नलिखित वस्तुओं का छठाँ भाग बसुल कर सकता था—(१) कप्य (बगलों की पैदावार) (२) लूस (रेद्यमी कपास) (३) कासा (भाब) (४) बीस (बूट) (५) कन्क (पेड़ों की छाल) (६) कर्पास (कपास) (७) रौस (अन) (८) बीसेय (रेद्यम) (९) बीसव (बवाई) (१०) यंकपुण्य (फूस) (११) फस (१२) काक (ठरकारियाँ) (१३) काकठ (ईंयन) (१४) बेचु (बीस) (१५) मांसबस्तूर (सुखाया हुआ मांस)। (१) बस्त (हाथी बीस) तथा (२) बजिन (गाय आदि) पशुओं की सालों का भाभा भाव कर के रूप में किया जाता था।

इसके अतिरिक्त 'बिड़ियो तथा सूअरों पर पैदावार का भाभा भाव छोटे जानवरों (बीसे मेड़ तथा बकरी आदि) पैदावार का छठा भाग पायों मीतों चोड़ों खच्चरों गधहों और जैनों पर पैदावार का बसवा भाग कर के रूप में बसुल किया जाता था।

यह सारी बसुली केवल एक बार ही की जाती थी किसी भी रथा में दुबारा नहीं (सन्धिरेव न सिं प्रयोज्यः)।

परन्तु किसी कार्य विशेष के लिए समाहृतां शहर तथा देहात के निवासियों से चरि की अपील करके भी वैसे जटाता था (समाहृतां कार्यमपरिहस्य पौर आलपदान् मिलेत) (V २)। इनके साथ ही समाहृतां द्वारा गाँव पर लगाए जाने वाले उन अन्य करों का भी उल्लेख कर दिया जाए, जैसे पिच्छकर, बलि, आर्तव पार्श्व जववा पाण्डिणीक जिनका वर्णन पहले किया जा चुका है।

## अध्याय ८

### नगर-प्रशासन

प्रशासन की प्रणाली : कौटिल्य ने एक पूरी प्रणाली बताई है जिसके आधार पर नगरों का प्रशासन व्यवस्थित किया जाता था। यह प्रणाली पौर जीवन की विविध समस्याओं तथा आवश्यकताओं की ध्यान में रखकर तैयार की गई थी। (II ३६)

नागरिक (मेयर) : शहर के मेयर को नागरिक कहते थे। शहर से अभिप्राय केवल नगर से होता था जिसे स्थानीय कहते थे। नागरिक की पुरमुख्य (II ३६) भी कहते थे। जैसा कि पहले बताया जा चुका है। नागरिक एक सामन्तपाशाही की हैगिणन हैं। सम्राटों के अधीन होता था। सम्राटों का पण मंत्री का हाता था जिसके कार्य-क्षेत्र में पहले बताये गए अन्य विषयों के अतिरिक्त पूरा विषय नगर प्रशासन भी होता था। इन विषयों की सूची में दुर्ग के नाक में एक विषय का उल्लेख है जिसमें अनेक विभागा तथा जिनों का समावेश है और यह बताया गया है कि इन हिता में से नगर के हिता की रक्षणार्थ नागरिक नामक सामन्तपाशाही करता था।

स्थानिक तथा पौर : हमें आगे बढ़कर इस बात का भी उल्लेख करना है कि नगर में नागरिक का बगी स्थान होता था जो प्राम्थ में सम्राटों का होता था (सम्राटों के नागरिकों नगर के चिन्तावेन) प्राम्थ की हो यदि नगर का भी पौर भाग अथवा महर्ण में विभाजित कर दिया जाता था और इसमें से प्रत्येक भाग स्थानिक नामक एक सामन्तपाशाही के अधीन रखा दिया जाता था।

प्रत्येक स्वायत्त अपने-अपने काम करनेवाले अनेक पदाधिकारियों पर नियंत्रण रखता था जिन्हें गोप कहते थे। प्रत्येक गोप पर इस बीस या पालीस घरों की देखभाल करने का दायित्व रहता था।

कौटिलीय प्रणाली के अंतर्गत प्रत्येक नगर के स्वायत्त अथवा गोप कदाचित् उसी काम करते थे जो मेगास्थनीज ने समिति नं० १ के सदस्यों के बताए हैं। जिसका हमें मेगास्थनीज से केवल एक आंशिक वर्णन ही मिलता है।

जनगणना : ये जनगणना अधिकारियों के रूप में काम करते थे और प्रत्येक घर के स्त्री-पुरुषों की संख्या (अंदाजित-जनसंख्या) उनके नाम उनके वर्ग और तथा व्यवसाय उनके पशुधन और आय तथा व्यय का व्योरा तैयार करते थे। वर्गशालाएँ उचित अधिकारियों को नगर में जानेवाले तथा नगर से जाने वाले सभी लोगों के बारे में रिपोर्ट भेजनी पड़ती थी। वर्गशालाओं के प्रबंधकों (धर्मावतथिन) को नगर के अधिकारी के पास पहले से इस बात की सूचना भेजनी पड़ती थी कि उनकी वर्गशाला में कौन-सा भी अथवा वर्गमेंसेही (टीका) कार के अनुसार प्राप्त तथा सत्यमिति की अनुमति प्राप्त करनी पड़ती थी। यहाँ रहने के लिए नगर के अधिकारियों की अनुमति प्राप्त करनी पड़ती थी। परन्तु जिन छात्रों अपना संस्थापियों पर उन्हें विश्वास हो (स्व-प्रत्यय) उन्हें अपने यहाँ आश्रय देने का उन्हें पूरा अधिकार था।

कारखाने : इसी प्रकार सिम्पकार तथा हस्तकार अपने कारखानों में (स्वकर्मस्वामिण) अपने अपने-अपने-अपने को भरोसा कर सकते थे।

दुकानें व्यापारी भी अपनी दुकानों में अपने वर्ग के लोगों को भरती कर सकते थे परन्तु ऐसे समान लोगों की सूचना देना उनका कर्तव्य था जो किसी व्यक्ति स्वान अथवा समय पर कोई माल बेचते हों या जिनके पास ऐसा बिकाने वाला हो जो उनका अपना न हो।

सौजन्यत्व : इसी प्रकार भविष्य बेचनेवालों (सीधिका) पका हुआ मांस (वाक्वमार्गिक) तथा चाकर बेचनेवालों (भीक्षिका) और बेस्याओं को उन लोगों को अपने छात्र ठहराने की इजाजत थी जिनसे वे मनी-मांति परिचित हों परन्तु जो लोग बहुत पैसा लाने करते हों या जिनमें अतलाक प्रवृत्ति हों उनकी सूचना उन्हें देनी पड़ती थी।

वास्तव में वासन के कुछ नियम बहुत ही कठोर थे पर वे धार्मिक दृष्टि में निराला आवश्यक थे। हम इन नियमों के कुछ और उदाहरण देते हैं।  
१. अतिथि हर गृहस्थानी को अपने यहाँ जाने-जानेवाले अतिथियों की सूचना देनी पड़ती थी। ऐसा न करने पर यदि उस रात को जब उनके यहाँ कोई अपरिचित व्यक्ति ठहरा होता था कोई बारदात हो जाती थी तो उसका



रोगी उन्हें छुड़ाया जाता था और यदि रात को कोई बारबात न भी हो तब भी उन्हें इस नियम का उत्सर्जन करने के अपराध में बंद दिया जाता था।

२ छप्प-चिकित्सकों तथा गृहस्थामियों का दायित्व यदि कोई घटप-चिकित्सक किसी ऐसे रोगी की चिकित्सा करे जिसके सहेजबनक घाव (प्रशुभप्रयण) हों या यदि किसी घर के मातृका को सुतरनाक अथवा घातक औषधियाँ बनानेवाले आदमी का (अपम्यकारिणम् रोग-अरजोत्पादक-श्रमम्) पता चले तो उसका यह कल व्यर्थ हो जाता था कि वह इस बात की सूचना प्रधान नगर प्रबिचारियों अथवा चौक तथा स्थानिक को दे। ऐसा न करने पर उन्हें भी बन्दी बंद दिया जाता था जो अपराध करनेवाले को भिन्नता था।

३ संहित चरित्रवाले लोग : घर के भरी परिवार चरित्रवाले लोगों तथा घर के छोटी जानूमा की रोजगार के लिए अनेक नियम बनाये गए थे। नगर के भीतर या बाहर बड़ी सड़की पर (चक्रिका महामार्गचारिण) या छोटी सड़की पर (उत्तरचक्रिकाविहीनचक्रचारिण) यादियों का यह नागरिक दायित्व था कि वे महरों अथवा तीर्थस्थाना जयमें अथवा दसमाना में जानेवाले सैन्य चरित्रवाले लोगों या दुःचरित्र लोगों को गिरफ्तार करें। इस कोटि में वे नव लोग आ जाते थे जो सहेजबनक घावा (सजलम्) से पीड़ित हा या जिनके घाव गन्तरनाह बीडार जैसे मेंब लगाने के बीडार (अनिच्छीपकरचम्) हो या जो अपनी समता में अधिक मारी बीज ले जा रहे हों या जो देखने में संहित चरित्र के समान हों या जो बहुत देर तक नोने हुए (अतिस्वप्नम्) पाए जाएँ, या बहुत लम्बी यात्रा के कारण अत्यधिक थक हुए हों या उन इलाके में शिक-कुल अपरिचित हों। वे नव अपराधियों के चिह्न मान जाते थे।

इन प्रकार के लोगों की नात्र नगर के भीतर भी निर्जन घरों (आवेदान) तथा बागानों (शास्वप्राला) भविष्यवा एक हुआ बाधक तथा मान बेचने वाला जात्रनामवा जुआघरा तथा बर्गप्रहिवा के घरों में भी ली जाती थी।

४ कर्तु आर्द्रः नागरिकों की मूर्खता के कारण नासिका बाध से मूर्खत्व के छ सतर वर्ष तक घर से बाहर निजलने की दमजब नहीं थी। एक नासिका २४ मिण्ट के बगलर हानी थी। इन प्रकार यह प्रतिबन्ध बड़े राग में शात बाध ३॥ बने तक रहता था। कर्तु आर्द्र होने तथा समान्य हानि के समय की रोगना करने के लिए गुर्गी (घाम-मुर्खम्) बनाई जाती थी और यदि इन समय के दौरान में कोई आदमी घूमना-फिरना पाया जाता था बिना न के राजप्रामाद के निजट (रातो महाप्याले) तो उन पर दुर्माना दिया जाता था। इन प्रतिबन्ध के कारण जन-मात्राज्य को कोई अमकिया न होने पाए, इस उद्देश्य में निम्ननिम्न लोगों पर भी यह प्रतिबन्ध लगा दिया

माता या (१) प्रसविनी माताओं की सेवाभार करनेवाले (सतिशानिमित्तम्) (२) बीछावि (३) काष्ठ सं जानवाले (प्रतनिमित्तम्) (४) मासटेन लकर चलनेवाले लोग (प्रवीपयान-निमित्तम्) (५) नगर बंधापीडा के डिडोरा पिट जाने पर (नागरिकपूर्व) जानेवाले लोग (६) ससुर द्वारा स्वीकृत माटन का अभिनय देखन के लिए जाने वाले लोग (प्रेशानिमित्तं राजामुलात-माडकाविप्रयोग बर्नने निमित्तं) (७) आग आवि लग जाने जैसी किसी दुपटना क समय जिन लोग को घर से बाहर चले जाने के लिए कहा जाता या (८) जो लोग कर्ष का समय हो जाने के बाद अनुमति-पत्र लेकर बाहर निकलते थे (मन्त्र-निष्ठ यथाह्यया असनचारिणो) (I ३६) ।

प्रतिबंध से छूट : उत्सव की रातों को (चार रात्रि) लोगों को बिना रोक-टोक घूमने-फिरने की छूट रहती थी परन्तु मचाव पहनकर या अनुपयुक्त वस्त्र धारण करने घूमनेवाले लोगों पुरुषों के वस्त्र पहने हुए स्त्रियां जबवा स्त्रियों के वस्त्र पहने हुए पुरुषों (प्रचंडप्रविपरितवया) मन्वासिया और ह ब में काटी जबवा कोई अस्त्र लेकर चलनेवाले लोया (बध्न-वास्त्र-हस्ताश्र) की जाँच की जाती थी और यदि वे बोपी होते थे तो उन्हें बंध दिया जाता था (होयतो बध्नयाः) ।

रली (पुलिस) यदि रात्रि के समय कोई ऐसी दुर्घटना हो जाए, जिससे किसी के प्राण जबवा सम्पत्ति को क्षति पहुंचे (केतनाक्षैतविकम् राजिवोपम्) तो अधिकारियों को उसकी सूचना देने के लिए पुलिस होती थी । यदि वे किसी ऐसे व्यक्ति को जिसे स्वतंत्रतापूर्वक घूमने का अधिकार हो नहीं जाने-जाने से रोके जा इस प्रकार की स्वतंत्रता न रखनेवाले को रोकने से बूढ़े (अचार्य बर्धसतं वारयन्म अवारयताम्) तो उन्हें बंध दिया जाता था । यदि किसी ऐसे व्यक्ति को गिरफ्तार कर लिया जाए, जिसे गिरफ्तार न करना हो या किसी ऐसे व्यक्ति को गिरफ्तार न किया जाए, जिसे गिरफ्तार किया जाना चाहिए, तो इन दोनों ही परिस्थितियों में पुलिस को बंध दिया जाता था ।

यदि पुलिसवाले किसी स्त्री के साथ अन्याय करते थे तो उन्हें कठोर बंध दिया जाता था और यदि वह स्त्री किसी प्रतिष्ठित कुल की होती थी (कुलस्त्री) तो मृत्युबंध तक दिया जाता था । यदि पुलिस आमोद-प्रमोद के स्थानों में (प्रमोदस्थाने) निर्वनध रहने में ढीलबाल करती थी तो उसे परिस्थिति की संमीरता के अनुसार बंध दिया जाता था । (उपमृस्त) ।

कारागार-संबंधी नियम प्रत्येक नगर में एक कारागार होता था जिसके प्रधान अधिकारी की संज्ञागाराध्या (IV ९) कहते थे । कारागार के नियम अत्यंत कठोर किन्तु व्यावहारिक थे । मुख्य कारागार को संज्ञागार कहते थे और

बहु प्रवेष्टा के व्यापार्य का एक अंग होता था वह उस हवालात से विस्तृत मित हाता था जिसे चारक करते थे और जो सर्वस्वीय के व्यापार्य का एक अंग हानी थी । यदि कोई अधिकारी रिस्वत लेकर किसी अधिव्यक्त को छोड़ देता था (विस्तारयः कञ्चग्रहणेन) तो उस प्रकार बंद दिया जाता था । इसी प्रकार यदि कोई अधिकारी किसी अधिव्यक्त को चारक से रिहा कर देता था तो उसे बंद दिया जाता था और अधिव्यक्त के विरुद्ध जितने का पाषा होता था उतना वह उसे दंड के रूप में देना पड़ता था (अभिव्योगदानम्) । यदि कोई अधिकारी (समय से पहले तथा अनुचित रूप से) किसी बंदी को कारागार से मुक्त कर देता था तो उसकी सारी सम्पत्ति (सर्वस्व) जब्त कर ली जाती थी और उसे मृत्युदंड (मृत्यु) तक दिया जा सकता था ।

अन्य अपराधों के लिए इस प्रकार जुर्माना किया जाता था कारागार के अध्यक्ष को अनुमति के बिना हवालात से किसी बंदी को छोड़ देने पर २४ पण किसी बंदी से अनधिकृत रूप से शय्य करवाने पर ४८ पण किसी बंदी को उसके स्थान से हटाकर उसे जाना-पीना न देने पर ६ पण किसी बंदी को बातना देने पर भारी जुर्माना और इसी प्रकार मूल (उत्कोच) लेने पर भी भारी जुर्माना दिया जाता था ।

बंदियों की मुक्ति : निम्नलिखित अवसरों पर एक नीतिम तत्त्वा में बंदी कारागार से मुक्त कर दिए जाते थे (१) जिस मसल में राजा का जग्न हुआ हो उस मसल के दिन (२) पूर्णमासी के दिन—इन दिन केवल साम्प्रदायिक बंदी बड़े रोटी तथा अन्न भोग छोड़े जाते थे ।

राष्ट्रीय उत्सवों के अवसर पर सारे बंदी मुक्त कर दिए जाते थे जैसे— (१) जब किसी नए राज पर विजय प्राप्त हो (२) जबराज के राज्याभिषेक के अवसर पर (३) राजवमार के जग्न व अवसर पर ।

कारागार का एक नियम यह भी था कि प्रतिदिन या पांच दिन में एक बार इन मान का लेगा-आंगा दिया जायगा (विशेषयेत्) कि बंदियों को (क) बिना नाम (कर्म) दिया गया था (ग) निन्दित काम के न करने पर बिना तारीफिक दण्ड (कायबन्ध) दिया गया और (घ) शारीरिक बंद होने में बिना जुर्माना (हिरण्य) वगुण किया गया (II ३६) । जो लोग स्वभावतः उत्पन्न (पुण्यजीनः) होते थे (जिबहा अत्यन्त आरम्भिक होता था) या जो किसी कारण (क्षयानुबन्ध) का पुण्ड न कर मारने के कारण बंदी बना दिए जाने के थे अथवा जिन सपनाम की गनीमा के अनुसार जुर्माना देकर बंदी कर दिए जाते थे (शाय-नान्यथ) (उपदुक्ता)

आग से बचाव के उपाय : आग लगने की राहभाग व निरा भी मग्न्यानिता

के कई नियम थे। उस समय के घरों में जितना अधिक लकड़ी का प्रयोग था उसके कारण धाँस आग बहुत लगती होगी। जिन घरों की छत फूस की होती थी उनमें गर्मी के दिनों में दोपहर को तथा तीसरे पहर साग बसना मना था। यदि खासा पकाया हो तो बाय बर के बाहर पकानी पड़ती थी। हर आदमी को अपने घर में आम बुझाने के लिए बाठ साबन (अग्नि-निर्वापक-साधन) रखने पड़ते थे (१) कुम्भ (बड़ा) (२) बोली—पानी भर कर रखने के लिए लकड़ी की ताँब (३) मिथैली—यदि ऊपर बाप छय आए तो बड़ने के लिए सीढ़ी (४) परधु 'छत की धनियाँ काटने के लिए' कुन्हाड़ी (५) धूर्त—सुखा उठाने के लिए सूप (६) अकूश—बसती हुई चीबो को लौच कर फेंकने के लिए काँटा (७) कचपहूनी—घरों के छप्परों में से बछ्छा हुआ फूस नौचने के लिए चिमटा और (८) बुठि पानी छिड़कने के लिए बमड़े की मसक। बाग से बचाव के लिए बड़े-बड़े सार्वजनिक मामों पर, चौकहों पर, नगर के फाटकों पर, और सारी सरकारी इमारतों में हर समय हजारों की संख्या में पानी से भरे हुए बरतन (कुटबज) पकित में रखे रहते थे। नगर की सीमा के भीतर गर्मी में फूस के घर बनाने की इजाजत नहीं दी जाती थी। इस प्रकार के घरों के माछिको को रात के समय बर के भीतर ही रहना पड़ता था और कहीं बाग लग जाने पर यदि वे बटनास्वस की ओर नहीं भागते थे तो उन्हें बंद दिया जाता था। इस प्रकार के अपराध के लिए बुकानदारों पर भी जुर्माना किया जाता था पर उन्हें बर के माछिकों की अपेक्षा कम जुर्माना देना पड़ता था। जो लोग अपनी आपरबही के कारण कहीं बाग सभा देते थे उन्हें ५४ पन जुर्माना देना पड़ता था पर जो लोग जानबूझकर बाग लगाने के अपराधी होते थे उन्हें स्वयं जिदा जसा दिया जाता था (प्रादीपिको अग्निना जप्प)। और अतिम बात यह कि जिन लोगों को आन से काम ही करना पड़ता था जैसे मोहार, उन्हें नगर के एक अलग हिस्से में रहना पड़ता था (अग्नि-बीधिन एक स्थान वासयेत)।

सऊाई के नियम : नगर के सऊाई के नियम बड़ी कठोरता के साथ लागू किए जाते थे। इधर-उधर कड़ा फेंकने पर (पाँचुग्यासे) या सड़क पर कीचड़ करने पर (पंकोरकसमिरोवे) जुर्माना देना पड़ता था। राबपन पर इस प्रकार का अपराध करने पर दुयना जुर्माना देना पड़ता था। पवित्र स्थानों (पुष्पस्थान) जलाशयों मंदिरों तथा सही इमारतों में पेसाब करनेवालों को भी बंद दिया जाता था पर यदि वह अपराध जानबूझकर न किया गया हो और किसी बीपन रोग अथवा भय के कारण अनजाना ही हो गया हो तो बंद नहीं दिया जाता था। नगर में साप अथवा बिस्सी कुत्ते या नेबस जैसे पशुओं की

लाप फेंकने पर ३ पण जुर्माना किया जाता था। यद्यपि, ऊट लम्बर या घोड़े बैठे किसी बड़े जामबर की लाप फेंकने पर जुर्माना दुगुना कर दिया जाता था और किसी मनुष्य का घब फेंकने पर ५० पण जुर्माना देना पड़ता था। निम्नलिखित भावों अथवा द्वारा के अतिरिक्त अन्य किसी मार्ग अथवा द्वार से घब लं बाने पर दंड दिया जाता था और जो द्वारपाल इस प्रकार नियम का उल्लंघन होने देने व उगह भी दंड दिया जाता था। इसी प्रकार निम्नलिखित स्थानों के अतिरिक्त अन्य किसी स्थान पर भुईं खसाने अथवा वाड़ने (स्थाते रहने व) पर भी दंड दिया जाता था (उपपुस्तक)।

मकान-निर्माण सम्बन्धी नियम (वासुदहम्) मगर-नियोजन सप्ताह की आश्वयुज्यामी का ध्यान में रखकर किया जाता था। हर घर में एक मीनालय (आवरक) नामी (अथ) तथा कर्ण (उदयल) का होना आवश्यक था और य वीरों उचिन स्थान पर (गृहोचितम्) ही बनायी पड़ती थी। प्रसूतिगृह के लिए (सूत्रिका-रूप) या उत्सवा के लिए अन्धापी रूप से किसी भी स्थान पर कड़ पार या मरने के पर इन्हें आवश्यकता पूरी हो जाने पर पौन भर देना पड़ता था। इन स्थानों की उचिन स्थिति के बारे में भी स्वार्थसंगोमी नियम बना दिये गए थे (१) अकि-स्थान अर्थात् तथा भारवाहक पशुओं के लिए पशुशाला (२) कणुपह-नवाल (हाथी आदि बड़े जानवरों के रहने के लिए) (३) अमिष्ट (लगा) (४) उदयल-नवाल पानी के बरतने रखने का स्थान (५) रोवनी (अनाज पीमने की बरती) और (६) कडहनी (मोलनी) (III ८)। सरक कह गया जाता था कि पडागियों को कम से कम अनुविद्या हो। यदि दो घर के उपर्युक्त भागों के एक-दूसरे से लट जाने की सम्भावना होनी थी तो उनके बीच अन्तराल कम से कम अथवा छोन्नी पड़ती थी।

घर के बीच में कण गुनी अथवा छोड़नी पानी थी (उप-वासुदहम्) प्रातिपदपौर्णमासी किष्करमासिका त्रिषती वा)। इस जाने के लिए हर घर में अन्तरिया का होना आवश्यक था (अन्तर्यायम् अथवा कर्ण यन्त्रायम् कारयेत्)। घर बनवाने में सम्बन्धित नियम अन्तर में अन्तर अन्तरित करक भी थे जिसे या मरने या ताहि एक-दूसरे का कर्ण अनुविद्या न होना पार (लम्बुय वा गृह स्थापितो पदेयं कारयेत्पुनरिष्टं कारयेत्)।

यदि कोई लम्बे दरवाजे या गिरिणी बनाया था या दूसरे के मकान के लालन रखने हा और जिसके दूसरे को अन्तरिया होनी हो तो उसे दंड दिया जाता था। पर यदि इन प्रकार के दो मकानों के बीच सम्बन्ध या कोई दूसरी बड़ी मकान हा तो यह दण्डनीय नहीं था। यदि किसी मकान के किसी हिस्से में अन्तर का मार्ग दण्ड जान व कारण दूसरे मकानों को अनुविद्या होनी हा और



रज चिकित्सक (त्रिषक्तः या चिकित्सकाः) (२) जो विष-मन्त्राग्नी रोगों की चिकित्सा करते थे (आयुर्विदः) (३) प्रभृति-कार्य के विशेषज्ञ (मर्मभ्याधि-  
कृत्या तथा सुतिका-चिकित्सकाः) (४) सेना के साथ सैन्य-क्रिया के योग तथा  
अन्य सामग्री लेना तथा पट्टियाँ आदि लेकर चलनेवाले चिकित्सक (चिकित्सकाः  
प्रत्ययंवायव-स्नेहवायव-कृताः) और (५) पशु चिकित्सक जो मवेशियों घोड़ों  
तथा हाथियों के रोगों का इलाज करते थे जिनका वर्णन पहले दिया जा चुका  
है (३, १) ।

सर्व-वैद्य चिकित्सा बहु बात उल्लेखनीय है कि ताप के काटे का इलाज  
इतनी उच्चपादपूर्वक किया जाता था कि सिर्फ़र का ध्यान भी इस ओर आक-  
र्षित हुआ और जब भी किसी को साथ काट लेना था तो वह अपने यूनानी  
विशेषज्ञ की अपेक्षा हमेसा भारतीय बीछा से परावर्त करता था (अतिरिक्त) ।

औषधियों की व्यवस्था : मगरा में ऐसे चिकित्सालय भी होते थे जिनके  
औषधिभण्डारों में कई वर्षों के लिए पर्याप्त मात्रा में विभिन्न औषधियाँ रखी  
थी और निरंतर नई औषधियाँ बाह्य इन संसारों की पूर्ति की जाती थी (मन्त्रेण  
अनर्थं शोषयेत्) । राज प्रान्त के औषधि भण्डार में विशेष रूप से दो सत्री औष-  
धियाँ रखी थी जिनकी प्रत्येककाल में आवश्यकता पड़ती है और विषय प्रकार  
के निवर्तन तापमान वाले कीच-मूहा में बरफ़ा में जड़ी-बूटियाँ उमाई जाती  
थीं । वास्तव में राज्य के खर्च पर जड़ी-बूटियाँ के उद्यान लगाए जाते थे  
(II. ४) ।

रक्त : रक्त काटे मांस करने के लिए पोखी हल्ले से जिन्हें निश्चित स्थानों  
में लटकी के गहरा या चिड़ने बकरों पर बपड़ी की मुलाई करनी पड़ती थी ।  
जिनी अल्प स्थान पर काटे जाने पर पुर्नाना दिया जाता था । इन उद्देश्य से  
दो छोटी किनी प्रकार की बेईमानी न करने वाली अनेक नियम बनाये गए थे ।  
बुमरों के बपड़ों में अन्न रखने के लिए धीमेधी के मध्य अपने बपड़ों पर  
मुद्गर का बिन्दु बना हुआ था । यदि वे कोई घुमा करवा घुटने हुए पाए जाते  
थे जिन पर यह बिन्दु न बना हो या यदि वे बुमरों के बपड़े बचने गिरवी  
रखने या स्थान पर देन हुए पकड़े जाने से तो उन पर पुर्नाना दिया जाता  
था । एक शास्त्र के बपड़े जिनी बुमरों प्राहृ के बपड़ों में बद्ध देन पर भी  
दंड दिया जाता था । बपड़े देन में पोखर जाने पर भी पुर्नाना देना पड़ता  
था । पक हुए बपड़ा में लकड़ी की चार नाटियाँ निर्धारित थीं । पुर्नाने के लिए  
या मरने दिया जाता था वह इनके अनुशासन हुआ था कि बपड़ा में टिननी  
गर्जनी आती है । शास्त्र के लिए अन्नम अन्नम मरनी बापी मरने अन्नमी  
पकड़े के लिए चार गाँवाँ बमय दिया जाता था जबकि बमय रैन निराश्रम

की साधारण बुलाई के लिए सबसे एक रात का समय दिया जाना था। साधारण रोगों (कनुरागम्) के लिए ५ रात का समय दिया जाना था। बीस (बीसम्) आँकुरण के पुरों (पुण्य) काग (काग) तथा मञ्जीष्ठा के पुरों से रोगों के लिए ६ रातों का समय दिया जाना था। महर्षि कपरे (आत्थ कात्थ) बीजे के लिए, जिनमें अधिक बीजस सावधानी तथा धन की आवश्यकता होती थी ७ रातों में थोकर वापस करना होता था (IV १)।

**नगरमुख के सामान्य कर्तव्य :** नगर के प्रधान कारकारी पदाधिकारी के कुछ कर्तव्य ऐसे बताये गए हैं, जिन्हें उस प्रतिदिन पूरा करना होता था। उस प्रतिदिन (१) नगर की जन-व्यवस्था (उपश-स्वार्थ) (२) नगर की सड़कों (मार्ग) की दशा (३) उसके मैदानों (भूमय) (४) जमीन के नीचे बने हुए मार्गों (उपशवा) (५) नगर की प्रतिरक्षा के साधनों जैसे बर (कपूरेश्वर बीमारों) प्राकार (भित्ति) और अद्भुतक (मीनार) जववा परिक्षा (आर्ष) का निरीक्षण करना पड़ता था।

उसे नगरपालिका की उचित व्यवस्था के अंतर्गत उन चीजों की भी देखरेख (रसवम्) करनी पड़ती थी जिन्हें उनके नास्तिक अपनी लापरवाही के कारण या भूल से (प्रसूत) जो देते थे (मष्ट) और उन पशुओं की भी अपनी निमरणी में रचना पड़ता था जो मटककर इधर-उधर बसे जाते थे (मपसुतात्मान् स्वर्ष मपसुतात्मां छिबद-वतुपदानाम्) (II ३५)।

**मिलावट :** अंतिम बात यह कि जाच-सामग्री जैसे जल, धार, नमक में बजवा जीपति में किसी भी प्रकार की मिलावट करनेवाले को (समवर्धो-पथान् दुस्ववर्धो ह्रीनमूर्खो धल्ल्यादिनिः मिथमे) दंड देकर जन-स्वास्थ्य की रक्षा का उपाय किया जाता था।

**नैतिक शासन पर नियंत्रण :** पब्लिकाव्स नामक एक विशेष पदाधिकारी के नियंत्रण में नगर की बेस्वार्थों (गणिका) के बारे में कुछ नियम बनाकर नगरवासियों के नैतिक शासन की रक्षा की जाती थी (II २७)। पब्लिकाव्स पब्लिकाओं की आम तथा उनकी सम्पत्ति पर नियंत्रण रखता था। अपने बाहुओं के साथ उनके सम्पत्तियों का नियमन करने के उद्देश्य से कुछ नानून बना दिये गए थे। उनकी आज पर प्रति माह दो दिन की जाय कर के रूप में ले ली जाती थी।

**मनोरंजन :** नगर में मनोरंजन तथा आनंद प्रमोद की व्यवस्था की कोई कमी नहीं थी। इसके लिए (१) अभिनेताओं (मष्ट) (२) नाचनेवालों (नर्तक) (३) गवैयों (४) वाद्य-संगीत के करगारों (वाद्यक) (५) कहानी सुनाने वालों (वाग्मीवी) (६) नाचनेवाल्या (कशीलपट नतकीप्रधानः) (७)



रानी पर कातब दिवाने ने विशेषज्ञों (पञ्चक रज्ज्वारीहक) (८) जादूगरो (दोमिक) (९) माँगे (चारण) तथा (१०) दलालों की मददियाँ थी।

कला की पद्धतशास्त्रों नगरपालिका की ओर से निम्नलिखित कलाओं की मिला देने वाली सम्पत्तियों की भी व्यवस्था की जाती थी (१) घीत ( ) बाघ (२) कहानी कहने की कला (पाध्यम् आर्याधिकारि) (४) मय (मूल पदार्थमित्र) (५) अमित्र (मार्तय कामधार्मिकमित्र) (६) निवि (७) विपकार (विचित्र आलेख-कर्म) (८) बीणा धागुरी (बेषु) तथा मृदंग बजाना (९) दूसरे के विचारों को बताना (परचित्तज्ञानम्) (१०) राघ घजाना (११) हार पिरोना (नान्य) (१२) मासिक करना (संवाहन) और (१३) बनीकरण (बैसाक) (बसक नामक वृक्ष द्वारा सिलायी गई बेश्माओं की कला)।

सारांश नगरों का विकास अब हम संक्षेप में उस समय के भारत में नगरों के जीवन का बिना प्रस्तुत करने का प्रयत्न करेंगे। वीर जीवन के काफ़ी विकास के सम्बन्ध ही ऐसी परिनिष्ठित नगर व्यवस्था का जन्म हुआ होगा।

मेगास्थनीज की साक्षी : मेगास्थनीज ने लिखा है (अथ \ \ VI)

‘‘जि भारत में नगरों की सन्नाहनी अधिक है, जि बहुत-ही-बड़ा बसाई नहीं जा सकती, वही ‘नदिया के किनारे या समुद्रतट पर’ या ‘विस्तृत तुले मैदान में या ऊँचे स्थान पर’ बन हुए नगर हैं।

नगरों के विकास के विषय में ग्रीस के विचार : नगरों की स्थिति के बारे में मेगास्थनीज का उल्लेख विचार ग्रीस द्वारा निर्धारित गुणों से बहुत बड़ी है, वह यह मानता है (नदीपर्वतगुप्त नदीसंगम के द्वारों का अन्तर्द्वार एवं प्रान्तर पर्वत) (II १)। ग्रीस में इस मूल में सभी प्रकार के गुणों का उल्लेख किया है जैसे (१) किसी नदी के तट पर (२) नदियों के समम पर (३) किसी द्वीप के किनारे (४) किसी द्वीप पर (५) किसी मगरवक (मार्ग) में (६) किसी जगह (बन) में (७) या किसी पर्वत पर परपर में (प्रान्त प्रान्तर) बनाए जाने वाले गुण हैं। यह सब गुणों में ग्रीस पर्वत पर बने हुए गुणों को सब से अधिक मानता था क्योंकि वह प्राकृतिक रूप से सुरक्षित (सुरक्षित) होता है। जैसे गुणों का योग कर्म (वृक्षगोचि) तथा उन पर बना (वृक्षगोचि) गुण बना था और वहाँ से सब पर (वृक्षगोचि) पर्वत की निम्न तथा वृक्ष आदि विचार (निम्न-गुण प्रदीप्त) गुणों की ओर भी बढ़ती नज़र आती थी। यह सब पर बने हुए गुणों को (जैसे पर्वतगुप्त) नगर नदी बना था क्योंकि नदी को सुरक्षित के गुणों द्वारा तथा तथा भी नगरों में सब दिया जा जाता था (स्थिति-नगर)

संक्रम सेतुबन्धनीय (साम्यम्) इसके अतिरिक्त नदी के पानी को बिस्कुम सूखाया भी जा सकता था (अभियोगाभीयं अवसात्सुखम्) या उबका किया जा सकता था (VII १०)। यूनानी लेखकों की तरह ही कौटिल्य भी उसक्षिमा का निवासी होने के नाते सिकंदर की बेरेबरी के विरुद्ध मस्य या भाजोर्नस जैसे चट्टानी किर्कों से की गई बीछापूर्य प्रतिरक्षा के अपने निजी अनुभव के आधार पर पर्यंत पर बने हुए दुर्गों की अधिक पसंद करता था। उसने बरस्य ही यह भी देखा होगा कि सिकंदर अपने नावों के पुकों की सहायता से किन्नरी आसानी से नदियाँ पार कर लेता था। इसी प्रकार सेकम नदी को पार करके उसने अपने सबसे शक्तिशाली धनु पोरस को पराजित किया था। अर्धमासत्र के सातवें अध्याय के १२वें सूत्र में उसने निश्चित रूप से अपना यह मत प्रकट किया है कि वह नदी के किनारे बने हुए दुर्ग की अपेक्षा पहाड़ी पर बने हुए दुर्ग की और लुने प्रवास में बने हुए दुर्ग (स्वक-दुर्ग) की अपेक्षा नदी के किनारे बने हुए दुर्ग को अच्छा समझता है। अर्धमासत्र के ८वें अध्याय के प्रथम सूत्र में कौटिल्य ने इस बात का उल्लेख किया है कि किसी पहाड़ी अन्तरीप या द्वीप पर बना हुआ अकेला दुर्ग सुरक्षित नहीं होता क्योंकि वहाँ अधिक लोग नहीं होते। नगरों की संख्या यूनानी लेखकों से हमें यह भी ज्ञात होता है कि पोरस के राज्य में ५००० काफी बड़े नगर तथा असंख्य गाँव थे (प्लूटार्क सिकंदर LX)। ग्रीष्मकायनिक (प्रीस्साई) नामक मन-वाहि को इस बात पर गर्व था कि उनके छोटे-से राज्य में ३७ नगर थे। मेगास्थनीज ने बताया है कि जनेते और राज्य में ३ नगर थे (अथ LVIX)।

नगरों का वर्गीकरण नगरों की अनेक खेनियाँ भी सबसे छोटा नगर सप्त हूय कहलाता था और वह १० गाँवों के मंडल का केंद्र होता था। उसके बाद वेहाही करने वाले थे जिन्हें कार्यक्षम तथा शोचमुख कहते थे और जो २ या ४ गाँवों के केंद्र होते थे। फिर करने अर्थात् स्थानीय (जाकर के जाने) वाले थे फिर घहर (नगर या पुर) बंदरगाह (पट्टन) और जल में राजधानी होती थी। इनमें सीमागत प्रवेश में स्थित उन दुर्गों की भी जोड़ दिया जाना चाहिए जो अन्तर्गतों के अधीन होते थे या जो देश के भीतर किसी मरस्थल में जिसे कौटिल्य ने वास्वन कहा है, या जंगल में (बन दुर्ग) या बछरस तथा पीची गुफा पर (निम्नावच्छिन्नोवकम्) बने होते थे।

किनेबरी की कला : नगरों के विकास में किनेबरी की कला भी निहित थी जिसके बारे में प्राचीन काक से एक मानक योजना बनी जाई थी। पुष्क काबरी मसकाबरी या बरणा (भाजोर्नस) तथा पाटलिपुत्र जैसे नगरों में भारतीय किनेबरी के जो नमूने यूनानियों ने देखे थे तथा जिनका वर्णन उन्होंने

रचनाओं में किया है और अर्थशास्त्र में प्रतिपादित सूत्र, प्राचीन महाकाव्यों में वर्णित नगरों पर भी चरितार्थ होते हैं। महाकाव्यों में वर्णित नगरों की सुरक्षा के लिए यादवा तथा कोरुरेश्वर मीनारों सुरंगों जल-धाराओं तथा अरर-नीचे सरफनेवाले जंगलदार काटको की व्यवस्था रहती थी।

अश्वमेध तथा घोषी के स्मारकों की मूर्तिकला में जो विषय मिलता है वह इन विवरणों के अनुरूप है। ये स्मारक लगभग उसी काल के हैं।

राजधानी की इमारतें कौटिलीय मगर अबका राजधानी अपनी इमारतों के वैविध्य के कारण अत्यंत ही उत्कृष्टनीय रहे हाने जैसे राजकोष की इमारत (कोशपूह) राजकीय अन्न भण्डार (कोष्ठालार) राजकीय यौधाम (नायकावार) राजकीय अस्त्रभण्डार (आयुधावार) व्यापारियों का मार्गगोशाम (वन्द्यपूह) व्यापारिक (धर्मस्थीय) परिषद् भवन (उपस्थान अबका मन्त्रालय) प्रशासन कार्यालय अबका मन्त्रालय के कार्यालय (महामन्त्रीय) कारागार (अन्धकारावार) तथा औद्योगिक कारखाने (कर्माश्रम)। यह बात ध्यान देने योग्य है कि राजकीय रत्न-कोष के लिए जमीन के नीचे एक तिमंजिबी इमारत होती थी (पहले दिया गया विवरण देखिए)।

सबिपाय : नगरपालिकाओं द्वारा साधारण नगरवासियों को सुखी जीवन प्रदान करने के लिए बहुत-सी सुविधाएँ प्रदान की जाती थी। इनके लिए नियम बने हुए थे जिसका उल्लेख पहले किया जा चुका है। हर सड़क पर नाकियाँ लगी थीं जिनमें घरों का पानी बहकर बाता या और ये सब नाकियाँ अंत में जाकर बिंद की गार्ड में मिलती थी। यदि इनमें कूड़ा-करकट अबका अन्न कोई वस्तु डालकर कोई इनका प्रवाह अवरुद्ध करना या तो उसे बंद दिया जाता था। इस प्रकार के नियम बनाये गए थे जिससे पड़ोसियों को किसी प्रकार की अशुविधा न होने पाए। किसी घर में ऐसी गिरफ्तारी जो दूसरे के घर की गिरफ्तारी के नामसे गुप्त होती है उस नवय तक नहीं बनाई जा सकती थी जब तक बीच में कोई सड़क न हो। आम बसाने के लिए वर्षाकाल व्यवस्था के बजाय सड़कों पर हर समय पानी से भरे हुए "झरारा" बरताने शुरू किये थे। सफाई की सुरक्षा के लिए यह व्यवस्था भी थी कि रात्रि के समय तक निश्चित अवधि के बीच कोई अपने घर में बाहर नहीं निकल सकता था। इस अवधि की पौरुषा गुप्ती बजाकर बर ही जाती थी। नगरपालिका के प्रपाक (मेयर) को सभी घटनाओं की सूचना देनी पड़ती थी और समस्त गोर्त हुए अथवा ग्राह्यारिण सम्पत्ति अपनी निगरानी में रखनी पड़ती थी। नगर का सुरक्षा और शांति तथा व्यवस्था के लिए नगर पालिकाओं में यह नियम बना दिया था कि समस्त परिवारों में गावर्नर के विभाग स्थाना नगरों तथा आमाद प्रमाण के स्थाना पर निदगती रखी जाए और ये

हर मवायमुक्त के आगमन की सूचना दें।

नगर के जीवन की रमीनी उसके मधिरास्यों जलपातपूहो मांजनाभयो सरायों जुआचरों तथा कसाईबाड़ा में देने में आती थी। नगर में मांजनाभिक जोर तथा नार्म-अभिनय भी होते थे। चिकित्सकों को भी बड़ी मुक्ति थी। राजा की सवारी बड़ी मूमनाम से निकलती थी।

कौटिल्य तथा मेगास्थनीज के विवरणों की समानता उपर्युक्त विवरण से यह भी पता चलता है कि कौटिल्य ने प्रशासन-सम्बन्धी जिन बातों का विस्तार पूर्वक उल्लेख किया है, वे मूलानी लेखकों की रचनाओं में दिय गए आम विवरण से पूरी तरह मेल खाता है। परन्तु हम इस विषय पर कुछ अधिक विस्तारपूर्वक विचार करेंगे क्योंकि इस प्रकार हमें इस बात का प्रमाण मिलता है कि जब प्रायः में मौर्यकालीन भारत का सजीव चित्रण किया गया है।

नगर के अधिकारी मेगास्थनीज ने अस्तोलोमोई नामक नगर-अधिकारियों का उल्लेख किया है, जिनके दायित्वों का वर्णन कौटिल्य ने विस्तारपूर्वक किया है। इन कामों में कौटिल्य ने 'चैत्ररियो के निरीक्षण' का भी उल्लेख किया है। कौटिल्य ने कहा है कि नगरों की ये चैत्ररियाँ कपास उद्योग कटाई तथा कुमाई उद्योग सौने-बाँदी के आनुपय बनाने के उद्योग जो मुख्यतः नगरों का ही उद्योग था और सौने-बाँदी के अतिरिक्त अन्य वस्तुओं की चीजें बनाने सम्बन्ध उद्योग का और मोने-बाँदी के अतिरिक्त अन्य वस्तुओं की चीजें बनाने तथा बन-सम्पदा मयन-निर्माण उद्योग सरकारी टकराक रूप की चीज बनाने तथा बन-सम्पदा का उपयोग करने के कारण होने लगे थे। मेगास्थनीज के अनुसार नगरों की चैत्ररियों पर सरकार की 'नियामी' रखी थी। कौटिल्य ने बताया है कि यह नियामी ने सरकारी अम्बल रखते थे जिन पर इन चैत्ररियों की नियामी का दायित्व रखा था जैसे सुनाम्नल औद्योगिक सोहाय्यल लक्षबाय्यल दूपाय्यल आदि।

मेगास्थनीज ने इसके बाद नगर-अधिकारियों के एक ऐसे वर्ग का उल्लेख किया है जिनके काम में मधिरास्यों का नियंत्रण नगर में बाहर से आने वालों की देखभाल तथा उनकी चिकित्सा की व्यवस्था करना शामिल था। कौटिल्य ने विस्तारपूर्वक इस बात का वर्णन किया है कि नगर का प्रशासन इन कार्यों तथा अन्य कई कामों का नगर सम्पत्ता था जिसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। स्वयं एक विदेशी यात्री होने के नाते मेगास्थनीज ने 'अजनबियों' अथवा विदेश के लोगों के सम्बन्ध में नगर के कर्तव्यों का विवेक रूप से उल्लेख किया है। कौटिल्य ने इस दायित्व को नगर प्रशासन के अन्य प्रागमिक कामों में शामिल किया है।

मेगास्थनीज ने कामों की जिस तीसरी श्रेणी का उल्लेख किया है, उनका

सम्बन्ध मृत्यु तथा जन्म का हिसाब रखने से है। कौटिल्य ने भी स्वात्मिक तथा गौण नामक अधिकारियों का उल्लेख किया है जिनका काम यह था कि वे जन सभा की पूरी सूची रखें और मृत्युमृत मरुतब के आँकड़ों का हिसाब रखने के अनिवार्य नियमित रूप से जगणना करें। इस काम के लिए अधिकारियों को घर-घर घूमना पड़ता था और इन उद्देश्य से नगर की अनेक मंडलों में विभाजित कर दिया जाता था।

मेगास्थनीज का प्यास नगर-अधिकारियों के कामों की श्रिम चौथी श्रेणी की ओर आकर्षित हुआ जहाँ उसने 'वाहान' का नियन्त्रण कहा है। कौटिल्य ने बताया है कि इस काम के लिए एक विशेष अधिकारी होता था जिसे पञ्चाप्यस कहते थे जिगाक कामो का उल्लेख विस्तारपूर्वक पद्विष्ट किया जा चुका है।

मगर बाद मेगास्थनीज ने नगर-अधिकारियों द्वारा "माप-तोक के मामलों" के निरीक्षण का उल्लेख किया है। कौटिल्य ने बताया है कि यह काम एक विशेष अधिकारी व श्रिमे या श्रिमे पौतवाप्यस कहने से।

मेगास्थनीज ने नगर-अधिकारियों के कामों की पाँचवीं श्रेणी का उल्लेख इन शब्दों में किया है "तैवार मास का निरीक्षण करना और नई तथा पुरानी बीजों में नदी-मही अन्तर रखते हुए इन मास की बीजों की व्यवस्था करना।"

य सब काम नगर का वह अधिकारी करता था जिस कौटिल्य ने पञ्चाप्यस कहा है। जैसा कि हम वहाँ चुके हैं कि यह मुख्य पर, रखेगी तथा बिदेगी शानों प्रचार की बीजा के बाजारों पर, रात-नामधी पर और बाजार तथा निर्वात पर नियन्त्रण रखा था।

अन्त में मेगास्थनीज ने बिके हुए मास पर लगाए जाने वाले कर की समूची ग सम्पत्ति का उल्लेख किया है। मेगास्थनीज तथा कौटिल्य ने बिके हुए मास पर उमर मूल्य के अनुसार कर वसूल करने का उल्लेख किया है। जन्म के बाद यह है कि मेगास्थनीज ने लिखा है कि यह कर विज्ञान मन्त्र हाता या पञ्चवि अर्धमास में ४ प्रतिशत से लेकर २ प्रतिशत तक कर की विभिन्न श्रेणियों का उल्लेख किया गया है। य कर वसूल करने का काम अस्काप्यस नामक अधिकारी के श्रिमे रखा था।

मेगास्थनीज ने "नई तथा पुरानी बीजों के बीच गरी-मही अन्तर रखने" की आ बात कही है उसका परिणाम कौटिल्य द्वारा उचितित सम्बाप्यस नामक अधिकारी पर रखा था। जैसा कि हम पहले देख चुके हैं इस अधिकारी का इन पाँच का अधिकार था कि यदि कोई व्यापारी अपने मास की मात्रा अथवा उसका मूल्य कम बताए या वह देने में बचने के लिए अपने मास की वास्तविक गति न हो। जिसने ने उद्देश्य से धटिया समुदाय दिया ता वह उन दंड से भयान

था। हम पहले इस बात का भी उल्लेख कर चुके हैं कि मिनापट करने पर किम प्रकार दंड दिया जाता था।

स्वावा के मतानुसार नगर-अधिकारियों के इन बाधितों को पाँच-पाँच सदस्यों के छ मंडल पूरा करते थे। जैसा कि एक डब्ल्यू टामम ने लिखा है (कैम्ब्रिज हिस्ट्री I ४८९) "इसमें सम्बेह नहीं कि यह पद्धति अलग-अलग स्वानों में अलग अलग रूपों में लागू होगी थी और समझ है कि यह अन्तर इस आकार पर होता हो कि वह नगर राजधानी या या कोई साधारण कस्बा वह किसी सार्वभौम शासक के बाधीन था या स्वतंत्र था। हम इसकी तुलना स्वयं अपने इंग्लैंड में जम्पकाठ के इंपरैड के 'रायल बरोन' तथा स्वतंत्र नगरों के अन्तर से कर सकते हैं।

जिले के अधिकारी जिले के अधिकारियों अर्थात् एग्रीमोरी के सम्बन्ध में जिनमें से अधिकांश सासन-कद्व में काम करने वाले समाह्वारों के नियन्त्रण में रहते थे कौटिल्य तथा मेगास्थनीज के विचारों में इस एक समानता पाते हैं। कौटिल्य तथा मेगास्थनीज के विचारों की समानता सिचार्ड मेगास्थनीज ने बताया है कि उनके पहले काम का सम्बन्ध सिचार्ड तथा जमीन की पैमाइश से था। हम देख चुके हैं कि अर्जुनाक्ष में सिचार्ड की समाह्वारों के कृतध्यों में से एक बताया गया है। इसका सकेन महीपाल (नवियों तथा उनके पाठों पर नियन्त्री रहने वाला अध्यक्ष) तर नाम सेना तथा सीता बादि जनेक सभ्यों में मिलता है। इस बात का भी पता चलता है कि समाह्वारों प्रभाव नियन्त्रक अधिकारी अर्थात् अपने विभाग का अध्यक्ष होता था पर उसके बाधीन जिलों में जनेक छोटे-छोटे विनायीय अध्यक्ष होते थे जिनमें से एक सीताध्यक्ष अर्थात् कृषि निरीक्षण होता था जिसके जिम्मे सिचार्ड की व्यवस्था करने तथा सिचार्ड का कर वसूल कराना काम होता था। हम पहले देख चुके हैं कि सिचार्ड के शासनों के अनुसार सिचार्ड-कर की दर किस प्रकार बढ़ती रहती थी।

मेगास्थनीज ने अपने चलकर उन अधिकारियों का भी उल्लेख किया है 'जो नदियों पर नियन्त्री रहते थे। मूषि की पैमाइश करते थे। उन जल-शायो का जाता था ताकि सबको बराबर-बराबर पानी मिल सके। जैसा कि हम पहले देख चुके हैं कौटिल्य ने नदियों पर नियन्त्री रहने वाले अधिकारी को महीपाल का बहुत ही उचित नाम दिया है। सीताध्यक्ष के बारे में यह कहा गया है कि "वह मही सील (घट्ट) बलाघय (तटस्थ) तथा कुर्मों (कूप) से जल-शायों के निबन्धन द्वारा पानी के उचित वितरण की व्यवस्था करता था" (उद्घाटन उद्घाटनते निस्साम्ते जल अनगति उद्घाटनो जलपद्धति-यंत्रम्) (II २००)



था। हम पहले इस बात का भी उल्लेख कर चुके हैं कि मिमाबट करने पर किम प्रकार पत्र दिया जाता था।

स्वाभाव के मतानुसार नगर-अधिकारियों के इन शक्तियों को पाँच-पाँच सबन्धों के छ मंडल पूरा करते थे। जैसा कि एफ डब्ल्यू टामन ने लिखा है (कॉन्सिडर हिस्ट्री I, ४८९) "इसमें संदेह नहीं कि यह पद्धति अलग-अलग स्वाभाव में अलग अलग रूपों में कामू होती थी और समय है कि यह अन्तर इस आधार पर होता हो कि वह नगर राजधानी का या कोई भाषारण कत्वा वह किमी सावनीय शासक के आधीन का या स्वतन्त्र था। हम इसकी तुलना स्वयं अपने इंग्लैंड में मध्यकाल के इंग्लैंड के 'रायल बरोज' तथा स्वतन्त्र नगरों के अन्तर से कर सकते हैं।

जिले के अधिकारी : जिले के अधिकारियों अर्थात् एथोलोमोई ने सम्बन्ध में जिनमें से अधिकांश शासन-केन्द्र में काम करने वाले समाहर्ता के नियंत्रण में रहते थे कौटिल्य तथा मेगास्थनीज के विचारों में हम एक समानता पाते हैं। कौटिल्य तथा मेगास्थनीज के विचारों की समानता सिचाई मेगास्थनीज ने बताया है कि उनके पहले नाम का सम्बन्ध सिचाई तथा जमीन की पैमाइश से था। हम ऐसा बूके हैं कि अर्बसाक्ष में सिचाई की समाहर्ता के कलन्दा में से एक बताया गया है। इसका उल्लेख मनीपाल (नवियों तथा उनके छात्रों पर निम्नानी रखने वाला अध्याय) तर नाम सेतु तथा सीताबादि अनेक छात्रों में मिलता है। इस बात का भी पता चलता है कि समाहर्ता प्रथम नियंत्रक अधिकारी अर्थात् अपने विभाग का अध्यक्ष होता था पर उसके आधीन जिलों में अनेक छोटे-छोटे विभागीय अध्यक्ष होते थे जिनमें से एक सीताम्पल अर्थात् कृषि निर्वेक्षक होता था जिसके जिम्मे सिचाई की व्यवस्था करने तथा सिचाई का कर वसूल करने का काम होता था। हम पहले बोल चुके हैं कि सिचाई के सामनों के अनुसार सिचाई-कर की दर किस प्रकार बदलती रहती थी।

मेगास्थनीज ने मार्गे बलकर उन अधिकारियों का भी उल्लेख किया है 'जो नदियों पर नियन्त्रणी रखते थे। भूमि की पैमाइश करते थे। उन अलग-थलग का निर्देशन करते थे जिनके रास्ते बड़ी नहरों से उसकी शाखाओं में पानी पहुँचाया जाता था ताकि सबको बराबर-बराबर पानी मिल सके। जैसा कि हम पहले बोल चुके हैं कौटिल्य ने नदियों पर नियन्त्रणी रखने वाले अधिकारी की मनीपाल का बहुत ही उचित नाम दिया है। सीताम्पल के बारे में यह कहा गया है कि "वह मनी जीक (सर) अनालय (तटस्थ) तथा कुर्बो (कूप) से अलग-थलगों के नियन्त्रण द्वारा पानी के उचित वितरण की व्यवस्था करता था" (अर्थात् अर्बसाक्ष में निम्नानी रखने वाला अध्याय अर्बसाक्ष-वि-नियन्त्रणी) (II २४)।



एक नियम यह भी था कि यदि 'कोई निश्चित क्रम के विपरीत (अबारे) पानी देता था या प्राप्त करता था या जिध जेठ की बारी होती थी (बारे) उसमें पानी पहुँचाने से रोके, तो यह अपराध है और इसके लिए बंध दिया जा सकता है। (III ९)। इससे पता चलता है कि (क) उपभोक्ताओं अर्थात् कारखानों के बीच नहर के पानी का वितरण बारी-बारी से किया जाता था और (ख) यह वितरण बल-हार की क्रिया द्वारा किया जाता था। जिन जेठों में नहर के पानी से सिंचाई होती थी उन्हें कृष्यान्वय कहा गया है (II, २४)। सिंचाई की एक ऐसी व्यवस्था का भी उल्लेख मिलता है जिसे औद्योगिक-व्यावसायिक कहा गया है, जिसका अन्विष्ट उस व्यवस्था अपना धर्म से है जिसके द्वारा सिंचाई-अधिकारी बहुतों हुई बल-हारों से पानी काकर जेठों में पहुँचाता था (सारणीकृत अलनिष्पन्न उदकनाम्न उपर्युक्त)। मेगास्थनीज के इस कथन के सम्बन्ध में कि जल का वितरण ऐसा होना चाहिए कि 'सबको बराबर-बराबर पानी मिल सके' यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि कीटिन्स ने सिंचाई का पानी सबको बराबर-बराबर मिलाने की व्यवस्था सुनिश्चित कर दी थी। सबसे समान दर से कर वसूल किया जाता था और जो भी अपनी सिंचाई की आवश्यकता के लिए जितना पानी लेता था उसके लिए उस समान रूप से वसूल देना पड़ता था। विभिन्न स्तरों पर स्थित विभिन्न जेठों (कैबार) के बीच पानी के वितरण के सम्बन्ध में उत्पन्न होने वाले झगड़ों का निवारण भी सिंचाई कार्यालय करता था। यदि बाढ़ में निचले स्तर पर कोई अनासय बनाया जाता था (पराधार्मिकविषय-सम्बन्ध) तो उसे एक प्रकार बनाया पड़ता था कि उसका जल पहले से ऊँचे स्तर पर बने हुए अनासय द्वारा सीधे जाने वाले जेठ में न चलने पाए (उदकेन नाम्नाम्येत्)। और न ही ऊँचे स्तर पर बनाये गए गए साठान से नीचे स्तर पर बने हुए पुछने साठान में पानी के बहाव को रोकने की इजाजत थी ऐसा केवल उही दशा में किया जा सकता था जब वह पानी सिंचाई के लिए आवश्यक न हो (III, ९)।

समीन की पैमाइश के बारे में (मेगास्थनीज की अंतिम बात के सम्बन्ध में) हम पैमाइश तथा संबोधन पर आधारित नू राजस्व प्रशासन का वर्णन विस्तार-पूर्ण रूप से कर चुके हैं।

प्रकार मेगास्थनीज ने इसके बाद जिले के अधिकारियों के दायित्वों की जित सीधी का उल्लेख किया है, उसका सम्बन्ध प्रकार पर निर्भर करने से है। इन दायित्वों के प्रत्यक्ष में कीटिन्स ने कृष्यान्वय नामक एक अधिकारी के आधीन एक नियमित वन-विभाग का उल्लेख किया है। जैसा कि हम पहले बता चुके हैं, इस अधिकारी का काम यह होता था कि वह बनों के रोग रक्षक (वन-

पाल) नियुक्त करे, जो हर पेड़ के बारे में छोटी-से-छोटी बात से भी परिचित हों और वन में पैदा होने वाली विभिन्न चीजों जमा कर सकें वनों तथा उनकी सम्पदा के संरक्षण की व्यवस्था कर सकें। कृष्याध्यक्ष के साथ विहीताध्यक्ष नामक एक और अधिकारी होता था जिसका काम मवेशियों की चरमाहों की बन्ध पशुओं के अधिकार से सुरक्षित रखना था। जैसा कि हम पहले बता चुके हैं उठे हम काम के लिए बहुत-से शिकारियों (मुन्धक) को भौकर रखना पड़ता था जो अपने शिकारी कुत्तों द्वारा (शवण) जगहों को समस्त हानिकारक तत्वों से मुक्त रखते थे।

हम यह भी देख चुके हैं कि इस बात के बारे में मेगास्थनीज तथा कौटिल्य दोनों का मतभेद था कि शिकार मुख्यतः राजा का एक मनोरंजन था। जैसा कि पहले बताया जा चुका है कौटिल्य शिकार को राजा के लिए एक स्वास्म्यप्रद तथा हितकर चीज़ समझता था परन्तु उसने इसके साथ ही यह चर्च भी करना दी थी कि राजा की सुरक्षा के लिए ऐसे शिकारी (मुन्धक) भी साथ रखे जाएँ जो राजा की स्वामत्ता के शिकारी कुत्तों की सहायता से जगहों को घेर जाँचें जिसके पशुओं से मुक्त रहें ताकि राजा दुग्धा के बावावरण में जावते हुए मृग जैसे पशुमान समय पर निशाना लगाने की दुःसाध्य कला सीख सके।

वन-उद्योग तथा खनिज-उद्योग : मेगास्थनीज ने लिखा है कि कृषि वनों कटौती के काम वातु की इलाई के कारखानों तथा जंगलों से सम्बन्धित विभिन्न उद्योगों की देख-रेख का भार जिले के अधिकारियों पर रखा था। कौटिल्य ने इन शायित्यों को कई विभागों के अधीन के बीच बाँट दिया है, जैसे सीताध्यक्ष कृष्याध्यक्ष आकराध्यक्ष लोहाध्यक्ष लुब्धकाध्यक्ष तथा क्षत्र्याध्यक्ष जो अपने अपने विभागों के काम का केसा-जोबा समायुक्त तथा लक्षितता मायक अपने प्रधान अधिकारियों के सामने प्रस्तुत करते थे। ये अधिकारी राजधानियों में रहते थे।

सड़कें : अंत में मेगास्थनीज ने सड़कों की देख-भाल करने के सम्बन्ध में इन अधिकारियों के शायित्यों का उल्लेख किया है। हम पहले देख चुके हैं कि कौटिल्य की प्रशासन-व्यवस्था में यातायात के मार्गों (वसिष्ठपथ) की अच्छी रक्षा में रक्षता समायुक्त का एक मुख्य कर्तव्य था। कौटिल्य ने देश की अनेक प्रकार की सड़कों का उल्लेख किया है, जिन्हें उसने निम्नलिखित नाम दिए हैं (१) राजमार्ग [I २१ II ४], (२) रथ्या अर्थात् जिले के प्राधन-केंद्र तक जाने वाली प्रांतीय सड़कें (३) हाथियों के वनों को जानेवाली सड़कें (४) लोगों को जानेवाली छोटी सड़कें (अपथ) तथा अन्य छोटी सड़कें (५) यादियों के जाने-जाने के लिए सड़कें।

कौटिल्य तथा मेगास्थनीज ने विवरणों की अनेक समानताओं को एच० जी० गार्डिनर नामक प्रख्यात विद्वान ने संक्षेप में इन छन्दों में व्यक्त किया है (इंडिया ऐंड द बेस्टर्न वर्ल्ड, पृष्ठ ६७) : “अष्टांगुल के संविधान का जो विवरण मेगास्थनीज ने दिया है उसकी बहुत-सी बातों की पुष्टि कौटिल्य अर्थशास्त्र द्वारा होती है। इस ग्रंथ में राजप्रासाद का वर्णन उसकी बाह्यों प्राचीरों तथा मीनारों का विवरण बहुत हद तक उन्हीं रूप में किया गया है जैसा कि मेगास्थनीज ने वर्णन किया है। राजा के साथ हर समय “चतुर्ग-वाज से ससज्ज स्थियों” का एक अवसरक रह रहता है (जिन्हें अर्थशास्त्र में स्त्रीगर्भे गन्धिमि कहा गया है, II ३)।

‘अर्थशास्त्र’ में अधिकारियों के अति सुसज्जित पह-सोपान का वर्णन जिन छन्दों में किया गया है वह मेगास्थनीज के विवरण से बहुत कुछ मिलता-जुलता है अतः केवल यह है कि अर्थशास्त्र में यह वर्णन अधिक विस्तारपूर्वक दिया गया है। जैसे मेगास्थनीज ने हमें बताया है कि जंगलों में विभिन्न वनस्पतियों लातों तथा सड़को बाहिर की वेष्ट मास करने के लिए बिछा-बिकारी होते थे। उसने नगरपालिका की व्यवस्था चलाने वाले छ मण्डलों का भी वर्णन किया है, पर उन सबके सामान्य कार्य लगभग एक जैसे ही बताये गए हैं। उदाहरण के लिए कौटिल्य ने एक बाधित्य अथवा एक मातृगाधामो के अथवा का उत्प्रेषण किया है, जो मिलकर बाजारों की व्यवस्था की देखभाल करते थे बाजार में विभिन्न चीजों का मुख्य निर्धारित करते थे छपि की पैदावार के व्यापार का नियमन करते थे सेना की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए कर लगाते थे और सड़कें तथा बंध जाने वाले मार्ग पर राजा की ओर से कर वसूल करते थे। मेगास्थनीज ने राजन-व्यवस्था का जिस रूप में वर्णन किया है, उसमें पहले जिन पाँचों तथा छ मण्डलों के कर्तव्य लक्षण मही बताये गए हैं।

‘अर्थशास्त्र’ में वेदियों तथा सार्वजनिक स्थानों में जुआ चलाने पर निगरानी रखने वाले एक अथवा का उत्प्रेषण मिलता है मेगास्थनीज के यहाँ पुलिस विभाग के इन वा बाधितों का कोई उत्प्रेषण नहीं मिलता। पर मेगास्थनीज ने इस बात का उत्प्रेषण अवश्य किया है कि राजा के गुप्तचर जानकारी प्राप्त करने के लिए किस प्रकार वेदियों की सहायता लेते थे। इस प्राचीन पक्ष की एक व्यवस्था के रूप में साम्यता प्राप्त थी उस पर कर लगाया जाता था उसका निरीक्षण हुता वा और सरकार उसका काम चलाती थी।

‘एक महत्त्वपूर्ण बात के बारे में कौटिल्य से हमें ऐसी जानकारी प्राप्त होती है, जिसमें मेगास्थनीज के विवरण की काफी हद तक पूर्ति होती है। वह है बाजार-रानी के मण्डल से सम्बन्धित जानकारी। बाजारों का समुक्त समूह तथा अधिक

के रास्ते होने वाले यातायात तथा बाटों पर निगरानी रखता था। मसृष्टो व्यापारियों तथा भाजियों स्वयं कर लिया जाता था और बाट सरकार के अधीन थे। बिन स्वानों से नदियों को पार किया जा सकता था वहाँ पर संतारियों का पहरा रहता था जो संदिग्ध लोगों को इन स्थानों में घुसने या वहाँ से निकलने से रोकते थे। बंदरगाहों के प्रधान अधिकारियों का यह कर्तव्य था कि वे विपदग्रस्त बहाबों की सहायता करें और नदियाँ के बाटों की देखभाल करने वाले अधिकारियों का यह कर्तव्य था कि जब नदी खतरनाक हालत में हो तब वे जिले को उसके पार न जाने दें।

“कूट मिलाकर देखा जाए, तो ये दोनों विवरण अत्यंत सराहनीय ढंग से एक-दूसरे के पूरक हैं।”

## अध्याय ९

### विधि

विधि के स्रोत : कौटिल्य ने (III १) उनकी सार्वकथा के क्रम के अनुसार विधि के चार स्रोतों का उल्लेख किया है (१) धर्म (सत्य पर आधारित समवेत सत्ये स्थितो धर्मो) (२) व्यवहार (जो सत्ते आवश्यक में ली कर ली गई हों) (३) परित्त (रीति-रिवाज) और (४) राजशासन (राजशास्र)।

यह भी कहा गया है कि राजा को (१) धर्म (२) व्यवहार (३) संस्था (सीकाचार) तथा (४) न्याय के अनुसार हम कानून का पालन करवाना चाहिए (अनुशासन)।

इस प्रकार हम देखते हैं कि राजशासन अर्थात् राजाका जिसे विधि का चौथा स्रोत बताया गया है वह न्याय पर आधारित है, अर्थात् इस बात पर कि राजा की दृष्टि में क्या उचित है।

राजशासन अर्थात् यह बात कि राजा कानून को किस रूप में लागू करना है या जिसे हम न्यायाधीश का निर्णय अथवा न्यायाधीश का बताया हुआ कानून कह सकते हैं वह न्याय अर्थात् धर्म द्वारा निर्धारित होती थी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि विधि का अतिम स्रोत न्याय है। यह बात भी समझाई गई है कि किसी विधान में (अर्थ) सीकाचार अर्थात् संस्था और धर्म शासन (उदाहरण के लिए कानून का धर्मशास्त्र) के बीच या राजाका (शासन राज शासनम्) तथा सारी द्वारा नियंत्रित होने वाली परिस्थिति में (व्यावहारिक सारी

बचन) कोई मतभेद हो तो उसका निवारण सम अवधि धर्मशास्त्र के अनुसार किया जाता था। ऐसी परिस्थिति में न तो मवाहा की शांती को कोई महत्त्व दिया जाता था न राजा के मन को। परन्तु यदि शास्त्र अर्थात् धर्मशास्त्र और स्थानीय धर्म तथा आचार अर्थात् रीति-रिवाजों द्वारा संप्रसारित ध्याय के बीच कोई मतभेद हो तो ध्याय को प्रधान माना जाता था। ऐसी स्थिति में धर्मशास्त्र के धर्म का कोई महत्त्व नहीं होगा था (तत्र याका हि मयमति)। उदाहरण के लिए, जैना कि टीकाकार ने बताया है धर्मशास्त्र का एक सूत्र यह है कि यदि कोई छटवस टुट गया हो और उसके पास ही कोई आदमी हाथ में फावड़ा लिए हुए पाया जाए तो वह माना जाएगा कि उसी आदमी ने छटवस टोका है (कुहान्मार्गविक्रमेण केतुमेता समोपपन्नः)। परन्तु यदि वह फावड़ा किसी बच्चे के हाथ में हो तो वह अपराध करने की क्षमता ही न रखता हो तो यह निर्णय स्वीकार्य न होगा।

कौटिल्य ने इस परिचर्यना पर जोर दिया है कि राजा स्वयं का प्रतीक होता है और स्वयं धर्म का अर्थात् वह वर्णाश्रम धर्म और उस पर आधारित लोकधार का नियमन करने वाली विधि की रक्षा करता है। यही राज्य-धर्म अथवा धर्मों की रक्षा करता है, जो इस संरक्षण के बिना नष्ट हो जायेंगे (अनुवर्णाश्रमस्वयं लोकस्वाधाररक्षणात्। नवयता सर्वधर्माणां राज्यधर्मं प्रवर्तकः)। इस प्रकार स्वयं, जो सबसे बड़ा धर्म से धर्म का पालन करवाता है चाहे वह बेटा हो या धर्म, और जो किसी भी व्यक्ति के साथ पक्षपात नहीं करता इस लोक में सुलभी स्थापना करेगा और परलोक में भी सत्य के लिए मार्ग प्रशस्त करेगा (स्वयं हि केवलं लोकं परं केवलं च रक्षति। राजा पुनर्न च क्षत्री च धनदोषं सर्वं भुजः)।

न्यायालय ऊपर जित रूप में धर्म की व्याख्या की गई है, उसका पूर्ण ज्ञान रखने वाले लोगों को न्यायाधीश नियुक्त किया जाता था जिन्हें धर्मज्ञ कहते थे। न्यायाधीश अमत्यों के स्तर के अधिकारियों ने से नियुक्त किए जाते थे और वे ही ऐसे अमत्य जो धर्म अर्थात् सवाचार की कसौटी पर भी पूरे उतरते हों (धर्मविप्राधुष्टान् धर्मस्वीयकण्ठकशोचनेषु स्थापयेत्) (I १०)।

न्यायालय में छ न्यायाधीश होते थे जिनमें से तीन विधि के विशेषज्ञ होते थे और तीन अमत्य होन थे। न्यायालय विशिष्ट प्रशासन-क्षेत्रों में स्थापित किए जाते थे देश के भीतर भी (जनपद) और उसके सीमान्त प्रदेशों के जनरो (पुर) में भी जहाँ से जनपात इन सीमान्त प्रदेशों का प्रशासन चलाते थे। देश के भीतर से संघर्ष जनपद तथा स्थानीय नामक क्षेत्रों में स्थापित किए जाते थे (जनपदसम्प्रादिषु जनपदस्थानी अल्पपातुर्गो सप्रहृण-श्रीजनपदस्थानीयेषु)।

न्यायालय का समय प्रायः काल होता था।

राजानी का कर्मण्य - उसकी व्याख्या निम्नलिखित परिपक्वों के अन्तर्गत की

पाई है दिवाह तथा बह्वेक उत्तराधिकार, घर तथा पात्र-पत्रोत्त (जिनमें अतिव्यय भी शामिल है) अथवा अमानत दास अथवा संविदा बिबी हिता तथा अनाचार, जुआ तथा विविध ।

व्यवहार को संबन्धित कुछ नियमों में यह बताया गया है कि किन परिस्थितियों में समझौते (व्यवहार) वैध नहीं रह जाते जैसे (१) तिरोहित, अर्थात् यदि उस समझौते को नियमित करने में निम्नलिखित कारणों से कोई दोष उत्पन्न हो गया हो (क) वह स्वामी की अनुमति के बिना (स्वाधिनतिरोहित) क्रियान्वित किया गया हो (ख) वह किसी ऐसे अनुपयुक्त स्थान में क्रियान्वित किया गया हो (वेश्यतिरोहित परोक्षसाक्षिक) जहाँ कोई प्रत्यक्ष साक्षी उपस्थित न हो (ग) यदि वह उचित समय धाँसीत हो जान के बाद पूरा किया गया हो (काल-तिरोहित) (घ) किसी अनुचित क्रिया द्वारा पूरा किया गया हो (क्रियान्तिरोहित) (च) या अथवा सम्पत्ति के किसी ऐसे भाग के प्रसव में क्रियान्वित किया गया हो जो दस्य वस्तु न हो (द्रव्यतिरोहित) (२) अन्तराणा (वह समझौता जो किसी गुप्त कल में किया गया हो) (३) लक्ष्य (राज के समन किया गया हो) (४) अरथ्य (किसी वन में किया गया हो) (५) उपनि (अपहृत्य) (अपहृत्य द्वारा सम्पन्न किया गया हो) और (६) उपहृत्वर (उस समझौते में भाव लेनेवाले दो पक्षों द्वारा युक्त रूप से किया गया हो) ।

परन्तु इनमें से प्रत्येक परिस्थिति के कुछ अपवाद हैं विशेष रूप से ऐसी वधा में जब साक्षी मौजूद हो या समझौता घर के भीतर ऐसी औरतों के बारे में किया गया हो जो परवा करती हैं (स्त्रीणां अविष्मन्नासिनीनाम्) या जो बीमारों या ऐसे लोगों के बारे में किया गया हो जिनका दिवाण ठीक न हो और जो घर के बाहर निकलकर वह समझौता सम्पन्न न कर सकते हैं ।

कौटिल्य ने निर्मल प्रकार के वैध तथा अवैध समझौतों (व्यवहारों) का उल्लेख किया है और ऐसा प्रतीत होता है कि उनका अंतर स्पष्ट नहीं हुआ है ।

ऊपर बताया गए (१) (ख) वर्ष के उस समझौते पर, जो किसी दुरूप तथा स्त्री के बीच गावर्ग विवाह (विध तनवाये) के सम्बन्ध में किये गए हैं या वर्ष (३) के उस समझौते पर जो वनवासियों (अरथ्यकराणां) द्वारा किये गए हैं या चारों ओर व्यापारी (सार्ध) हैं या चरवाहे (जमाः मीढ्युत्तयो बोवालाः) या जल में रहते हैं (आयनो वनदुम्बिनः) या भिखारी हैं (ध्यावा किराताः) या घन-फिरने वाले नर हैं (चारणाः तंवनप्यवनादिजीविनः) ये प्रतिवन्द्य माने नहीं होते वे ।

अनपेक्षित प्राप्ति द्वारा किय गए समझौते वैध नहीं माने जाते थे ।

तनवाई विवादों के बारे में निर्णय देने की कार्य-प्रणालि के बारे में भी कुछ

नियम बना दिये गए थे जिनसे अत्यंत बानी को अपनी दान बहुत प्रतिवादी को उसका लड़क करके तथा बाबी को फिर उसका प्रत्युत्तर देने का मौका दिया जाता था।

कार्य-पद्धति मुकदमे की सुनवाई से पहले समझौते की निधि बादी तथा प्रतिवादी के नाम उनके निवासस्थान जाति गोन तथा उनकी हस्तियत (इततमर्चबिस्वयो) दर्ज करना आवश्यक होता था (अनिलिख्य निवेशयेत्)।

बाबी तथा प्रतिवादी के दयान भी यथाचित ढंगसे लिखकर दर्ज कर लिए जाते थे।

इन लिखित वक्तव्यों की बड़े ध्यानपूर्वक जाँच की जाती थी (निबिदोत्तम अवेलेत्)।

दयान लिखने वाला कैलाक यदि म्यायालय का कैलाक (मुइरिर) वक्तव्यों को उस ढंग से दर्ज नहीं करता था जिस ढंग से वे लिए जाते थे या यदि वह ऐसी बातें लिखता था जो सच नहीं गई हों और कही गई बातों को नहीं दर्ज करता था (इकत्तं न लिखति अनुक्तं लिखति) कही गई बात में अपनी तरफ से कुछ घम्ट जोड़कर उस अनापत्तिजनक (इपक्त उपलिखति) या आपत्तिजनक (सुस्त इस्तलिखति) बना देता था और इस प्रकार उस विवाद के आधार का बदल देता था (अर्चैरिपत्तिम् वा विकल्पयति ताव्यसिद्धिसम्बन्धयति) तो उसे उसके अपराध की गंभीरता के अनुसार (अपराधम्) सजा दिया जाता था।

अबिलम्ब म्याय म्याय में अधिक बिलम्ब नहीं होता था। प्रतिवादी को अपनी सज्जई देय करने के लिए ३ से ७ दिन तक का समय दिया जाता था। बिलम्ब करने पर उसे जुर्माना देना पड़ता था। बाबी को अपना प्रत्युत्तर उसी दिन देना पड़ता था (प्रत्युक्तः सा अभिवुक्तवतोस्तः प्रतिकृष्यत) जिस दिन प्रति बाबी अपनी सज्जई (प्रत्यस्त) देय करता था अन्यथा उसे जुर्माना देना पड़ता था (III १)।

स्वास्थ्य म्यायालय म्याय की व्यवस्था को विकेंद्रित करके म्याय में बिलम्ब होने की संभावना को और भी कम कर दिया गया था। "जाम तीर पर विवादों का निवारण स्वामी जबका कुछ समय के लिए स्थापित की गई पंचों की एक सभा द्वारा या विभिन्न कोटिबों के पदाधिकारियों द्वारा कर दिया जाता था। इसके अतिरिक्त राजा के पास तक अपील करने की पद्धति भी प्रचलित थी जो नियमित रूप से अपने म्यायालय में मौजूब रहता था या कोई मंत्री प्राडिबबार उसका प्रतिनिधित्व करता था। वर्ष जबका वर्ष से सम्बन्धित अपराधों की सुनवाई हरिबद नामक समितियों के सामने होती थी" (केलिंग हिस्ट्री I ४८५)।

उदाहरण के लिए, गंधों में यदि सीमाया के सम्बन्ध में कोई विवाद उठ



अड़ा हुआ था (सीमाविवाह) तो उस गाँव के बड़े-बूढ़े तथा आस-पास के ५१० लोगों के समझदार लोग (परमप्राणी वसुधामाया) मिलकर तुरन्त वहीं पर उसका निबटारा कर देते थे (III ९)।

या फिर कारतकारा तथा चरवाहों में से बड़े-बूढ़े (कर्मक-गोपालक-बृद्धकाः) या विवाहाधीन भूमि के भूतपूर्व मालिक (पूर्वभुक्तिताः) एक वा दो ऐसे लोगों की सहायता से या उस इलाके से बाहर न रहते हों (अबाह्यः) तथा जिन्हें विवाहाधीन सीमाओं के बारे में वैयक्तिक जानकारी हो (जैसे आस-पास के शिकारी) उस क्षण के निबटारा कर देते थे। व उन्हीं-उस जगह पर से बाहर उन्हीं ठीक-ठीक सीमाएँ बना देते थे। ऐसा करते समय वे दूसरे लोगों से भिन्न अपनी विमिश्र पोशाक पहने रहते थे (विपरीतवेषाः)। शिकारियों तथा अन्य ऐसे लोगों को जिन्हें विवाहाधीन सीमाओं के बारे में वैयक्तिक ज्ञान था या तो एक समूह में या उनके किसी एक प्रतिनिधि को (बहुव एको वा) उस विवाह का निबटारा करने वालों की सहायता के लिए बुलाया जा सकता था।

लैटों के स्वामित्व के सम्बन्ध में जो सचड़े होते थे (क्षेत्र-विवादम्) उनका झगड़ा पड़ोस के गाँव के बड़े बूढ़े (सामन्त-ग्रामबृद्धाः) करते थे। यदि उनमें कोई मठनेह होता था (ईर्षीबाधे) तो निर्णय ऐसे लोगों के बहुमत द्वारा होता था जिनकी ईमानदारी तथा लोकप्रियता को सभी लोग स्वीकार करते हों (स्तो बहुव धुवयो अनुमत वा ततो निबन्धेयुः) [III ९]।

इसी प्रकार स्थानीय पक्षों की समितियों द्वारा निम्नलिखित स्थानों से सम्बन्धित विवाह का निबटारा किया जाता था (१) सरोवन (२) विहीत अर्वात् अउपाह, (३) महत्त्व अर्वात् बड़ी-बड़ी सबके (४) वनजाल (५) वैवकुल, अर्वात् मदिह, (६) वल्लस्थान, तथा (७) पुण्यस्थान।

संघ करते समय बटनास्वयं पर उपस्थित लोगों की रायों की सबसे अधिक महत्त्व दिया जाता था (सर्व एव विवाहः सामन्तप्रवयायाः) (III ९)।

सामाय्य तथा स्वायीय जानकारी के इन सिद्धान्तों के बाद के बर्मिदास्वकारों ने भी स्वीकार किया है। जैसे मनु (VIII १२ २५८ २६२ २५९ २६) यातकस्वयं (II १५०-२) बृहस्पति (II २५-७) और शुक्नीति में (IV ५, २६) जिसमें कहा गया है कि 'वनवासियों के विवाहों का निर्णय वनवासियों की सहायता से व्यापारिका के विवाह का व्यापारियों की सहायता से सैनिकों के विवाह का सैनिकों की सहायता से किया जाना चाहिए'। इस प्रकार विवाहों तथा उनके निबटारे के मामलों में समाज का हर वर्ग स्वशासित था।

विधि के उदाहरण विवाह कौटिल्य ने आठ प्रकार के विवाहों का उल्लेख किया है—ब्राह्म, प्रामाण्य मार्ग ईव पौषर्ग आशुर राजस, तथा पैशाच। ब्राह्म

विवाह में बड़की का रहेज उसका पिता द्वारा अपनी इच्छा से उस प्रमपूर्वक दिया जा उपहार होता था । आर्य विवाह की विशेषता यह होती थी कि उसमें कन्या के पिता को मायों की एक जोड़ी (यो-मिबुन) उपहार स्वरूप दी जाती थी । उस समय विवाह की यह पद्धति बहुत प्रचलित थी जिसका पता मगास्थनीज के इस उक्त से चलता है कि भारतीय विवाह की विशेषता यह होती थी कि 'उममें "बैसां की एक जोड़ी" उपहार में दी जाती थी [अंश XXVII] । आसुर विवाह में कन्या के पिता का कुछ धन (शुल्क) दिया जाता था जिसके बदले में वह अपनी कन्या का विवाह कर के मांग कर लेता था (शुल्कादानावसुत्) [III २] ।

विवाहित स्त्रियों की सम्पत्ति तथा उनके अधिकार : स्त्रीधन में वृत्ति अर्थात् मरण-नापम के साधन तथा आवश्यक अर्थात् आनुषांग आदि वस्तुएँ ही सम्मिलित थीं । धूमि अर्पण होती थी जमीन और कम से कम २ कार्पापम से अधिक की गह्वर रकम (हिरण्यारि) को जिस पुँजी के रूप में कपाने में कुछ आय हो सकती थी वृत्ति माना जाता था । कम से कम २ कार्पापम की सीमा हमकिए निर्धारित कर दी गई थी कि इससे कम धन राशि से कोई आय नहीं हो सकती थी ।

यदि पति रोग अथवा अपचा विपत्ति के समय या किसी संकट से बचने के लिए या किसी धार्मिक काम के लिए अपनी पत्नी की सम्पत्ति का उपयोग कर सता उसे वैध माना जाता था । पहले बार प्रकार की प्रतिष्ठित विवाह पद्धतियों के अंतर्गत जब किसी सम्पत्ति के दो सन्तानें हो जाएँ, तो तीन वर्ष तक उनके द्वारा व्यवस्था तथा स्त्रीधन वापस नहीं लौटाना पड़ता था ।

यदि किसी विवाह के सन्तान न हो तो वह अपने समुर की अनुमति से अपने पति के माई से विवाह कर सकती थी ।

यदि वह अपने समुर की इच्छा के विरुद्ध किसी से दूसरा विवाह कर सता तो अपना मृत पति तथा समुर द्वारा दी गई सम्पत्ति पर उसका कोई अधिकार नहीं रह जाता था । यदि अपने पति के जीवित रहते कोई स्त्री उस छोड़कर किसी दूसरे से विवाह कर सता (आतिहस्तान् अभिमुच्यता) तो दूसरे पति को उसके पहले पति तथा समुर द्वारा दी गई सम्पत्ति वापस लौटानी पड़ती थी ।

यदि किसी विवाह के पुत्र मीजुद हो तो दूसरा विवाह करने पर उसे अपनी सम्पत्ति अपने पुत्र का दे बनी पड़ती थी [III २] ।

पुनर्विवाह : कौटिल्य एक विवाह के पक्ष में था । उसने सन्तान अथवा पुत्र प्राप्त करने के लिए ही दूसरी पत्नी से विवाह करने की अनुमति दी थी ।

विदेश भेज दिए गए राज-कर्मचारी (राज-मुद्रवम्) को छोड़कर यदि कोई व्यक्ति बीर्यकाय तक अपनी पत्नी से अलग रहे तो वह विवाह न हो सकता था ।

यदि पति संन्यासी हो जाए या बिना कोई सन्तान छोड़े मर जाए तो स्त्री दूसरा विवाह कर सकती थी। सन्तान होने पर भी यदि पति दीर्घकाल तक उससे संन्यास रहे तो स्त्री दूसरा विवाह कर सकती थी।

परन्तु पुनर्विवाह मृत पति के सम्पत्तियों तक ही सीमित था। अवस्था के क्रम से मृत पति के भाइयों को सबसे उचित पात्र समझा जाता था। यदि ऐसा सम्भव न हो तो उसी शोक के निकटतम सम्बन्धी से विवाह हो सकता था। यदि कोई स्त्री किसी ऐसे व्यक्ति से विवाह कर लेती थी (बेइने) जो उसके पहले पति का सम्बन्धी न हो तो जो व्यक्ति कन्वादान करता था (इन्) और जो उस स्त्री से विवाह करता था उन दोनों ही को बंध दिया जाता था।

यदि कोई स्त्री किसी अन्य पुरुष के साथ अवैध ढंग से रहती थी (बार कर्मणि) तो दोनों पर (बार-स्त्री) जारी—का अभियाग लगाकर मूक्यमा बताया जाता था (उपपुनत)।

बारह वर्ष की अवस्था प्राप्त कर लेने पर लड़की को और १९ वर्ष की अवस्था प्राप्त कर लेने पर लड़के को बालिक (प्राप्त-वृषणद्वारा) मान लिया जाता था [III १]।

उत्तराधिकार माता-पिता के जीवित रहते-पुत्रों का सम्पत्ति पर कोई अधिकार नहीं होता था।

पिता की सम्पत्ति केवल पुत्रों को उत्तराधिकार में मिलती थी पुत्रियों को नहीं। यदि कोई पुत्र न हो तो भी पुत्री को सम्पत्ति पाने का अधिकार होता था। ऐसी दशा में पुत्रियों के साथ-साथ उत्तराधिकार में मृत व्यक्ति के भाइयों का भी हिस्सा रहता था [III ५]। मेगास्थनीज ने भी कहा है “पिता का उत्तराधिकार पुत्रों को मिलता है [अथ LXVII]।

अपने जीवनकाल में सम्पत्ति का बटवारा करते समय कोई व्यक्ति किसी एक पुत्र के साथ वसूपात नहीं कर सकता था (नैर्क विरोधयेत्) बल्कि उसे सबके साथ समान व्यवहार करना पड़ता था। जब तक कोई पर्याप्त कारण न हो तब तक वह किसी पुत्र को उत्तराधिकार से वंचित भी नहीं कर सकता था। इससे यह संकेत मिलता है कि उत्तराधिकार में वंचित करने का अधिकार था।

विभिन्न प्रकार के पुत्र पुत्र अनेक प्रकार के बताये गए हैं (१) औरत स्वाभाविक बंध पुत्र (२) पुत्रिक-पुत्र जिस पिता के कोई पुत्र न हो उसके द्वारा पुत्र-सन्तान को जन्म देने के लिए नियुक्त की गई कन्या का पुत्र (३) बल, दासगोत्र विधि-सम्कारों के अनुसार माता-पिता द्वारा किसी ऐसे दूसरे व्यक्ति को दिया गया पुत्र जो उसे अपने पुत्र के रूप में और से से (४)

उपगत, जो स्वयं किसी का पुत्र बनने की दृष्टि प्रकट करने और वह उम्र गौर से ले (५) दत्तक, जिस बिना किसी विधि-अस्कार के स्मरपूर्वक पुत्र मान लिया जाए (६) और जिससे उसका माता-पिता से लीदरर पोष स लिया जाए (७) और, पुत्र उत्पन्न करने के लिए नियुक्त किया गए (नियुक्तेन) किसी दूसरे व्यक्ति का अपनी पत्नी से पुत्र (८) गृहज, पति द्वारा किसी व्यक्ति ने नियुक्त किए गए बिना सम्पत्तियों के घर में गृहस्थासुर से अपनी पत्नी के उत्पन्न होने वाला पुत्र (९) अपविद्ध जिस पुत्र को उसके माता-पिता ने त्याग दिया हो (उत्सृष्ट) और किसी दूसरे व्यक्ति ने विधि-अस्कार द्वारा उसे गोद में लिया हो (१०) कर्त्तव्य विवाह से पहले किसी कन्या के उत्पन्न होनेवाला पुत्र (११) छोड़, वह पुत्र जो विवाह के समय कन्या के घर में हो (१२) पौनर्भव पुनर्विवाहित स्त्री का पुत्र [III ७] ।

यदि बाल किसी कोटि के पुत्र को गोद लेने के बाद किसी के स्वयं अपनी पत्नी से स्वाभाविक रूप से पुत्र उत्पन्न हो तो इस औरत पुत्र को अपने पिता की ही लिखी सम्पत्ति पाने का अधिकार होता है। उसी वर्ष के (सर्व) अन्य पुत्रों को एक-तिहाई सम्पत्ति पाने का और अन्य पुत्रों को जो दूसरे वर्ष की स्त्री के हो केवल अरध-पोषण तथा वस्त्रादि अर्थात् खाद्य-वस्त्र पाने का अधिकार होता है। सर्व पुत्र की परिभाषा यह की गई है, कि जो पुत्र पिता के वर्ष से एक वर्ष नीचे की माता से उत्पन्न हो। जैसे ब्राह्मण पिता का अविध माता से उत्पन्न पुत्र अश्वत्थ पुत्र वह होता है जो उससे भी एक वर्ष नीचे की माता से अर्थात् वयस माता से उत्पन्न हो।

यदि कोई उच्च वर्ण का पुरुष अपने से निचले वर्ण की कन्या से विवाह करे, तो वह अनुत्तम विवाह कहलाता है। यदि कोई पुरुष अपने से ऊँचे वर्ण की कन्या से विवाह करता है तो वह प्रतिक्रम विवाह होता है। प्रतिक्रम विवाह वर्ण के प्रतिकूल (वर्णातिक्रम) होता है और राजा को दो प्रकार का विवाह नहीं होने देना चाहिए। अथवा वह नरक में जाएगा (नरकमन्थवा)।

निम्न वर्णों की स्त्रियों (अश्वत्थ) को उत्तराधिकार में बराबर-बराबर हिस्सा मिलता है [III ७] ।

सहकारिता के नियम : ग्रामीण जीवन का नियम करने के लिए अनेक नियम बना दिए गए थे।

जो लोग बुरे नाथ के हित के कार्यों में अपना निश्चित योगदान नहीं देते वे उन्हें क्षमा देना पड़ता है। यदि कोई काम्यकार क्षम में अपना योगदान नहीं करता है (अक्षम) तो उसे जिसकी मजदूरी (क्षमवेतन) मिलने वाली हो उसका दुकान उसे क्षमा देना पड़ता है। जो व्यक्ति निश्चित मात्रा

के अनुसार पूँजी बचका बच के रूप में अपना योगदान नहीं करता या उसे उसकी पुगुनी रकम जुर्माने में देनी पड़ती थी। जिसे छाने-पीने की चीजों के रूप में योगदान करना होता था यदि वह उसे पूरा नहीं करता था तो उसे गाँव के सामुदायिक भोजनों के लिए (प्रबुद्धेषु गोष्ठी-भोजनानि) बिनक लिए उन चीजों की आवश्यकता थी और उसने देने का बचन दिया था उससे दुगुनी मात्रा में वे चीजें देनी पड़ती थी।

यदि कोई व्यक्ति पूरे गाँव द्वारा आयोजित सार्वजनिक मनोरंजन (प्रेसा) के लक्ष्य के लिए, जैसे संगीत मूल्य आदि के लिए अपना हिस्सा नहीं देता था तो उस तथा उसके रिश्तेदारों को वहाँ मुसने नहीं दिया जाता (सम्बन्धनों न प्रेसेत)। यदि वह फिर भी कुतर्कपूर्ण उस कार्यक्रम को देखने का प्रयत्न करता था तो उससे बितने बचे की मात्रा की जाती थी उसकी दुगुनी छत्र उस जुर्माने में देनी पड़ती थी।

यदि कोई व्यक्ति पूरे गाँव के हित के लिए किए जाने वाले किसी काम में योगदान नहीं करता था (सर्वहिते कर्मणि निग्रहेष) तो उसे प्रति व्यक्ति के लिए निर्धारित योगदान की दुगुनी रकम जुर्माने में देनी पड़ती थी।

यदि कोई व्यक्ति पूरे गाँव के सम्वाच के लिए (सर्व-हित) कोई काम करता था तो सबको उसकी बात माननी पड़ती थी। अज्ञान करने वाले पर १२ पत्र जुर्माना किया जाता था।

एक नियम यह भी था कि यदि गाँव का मुखिया (ग्रामिक) किसी सार्वजनिक काम से (ग्रामाण) नहीं बाहर गया हो तो गाँव के खेती-बारी के कामों से सम्बन्धित उसके दायित्व का भार बारी-बारी से वे लोग उठाएँगे जो गाँव के बतनबोबी कर्मचारियों के रूप में (उपचाता) अपनी जीविका कमाते हैं।

अंत में यह भी कहा गया है कि राजा का यह कर्तव्य है कि वह ग्राम-वासियों के ऐसे संगठनों को कुछ रियामेंटें दें जो आपस के समझौते (समय) द्वारा गाँव में समाजोपयोगी (वेअहितान्) काम करने का बीड़ा उठाएँ, जैसे खेती-बारी में बुद्धि (सैतु, जिसकी व्याख्या II १ में की गयी है) सड़कों पर पुनों का निर्माण (बणि संकमान्) जलवा गाँव की सीमा बढ़ाने तथा उसकी रक्षा के लिए कोई काम (ग्रामछोभाउच रसाच)।

राज्य द्वारा इन कार्यों को ही माने वाली सुविधाओं में एक सुविधा यह भी शामिल थी कि सहकारिता तथा पारस्परिक हित की भावना से बंक्ति उपर्युक्त प्रकार के लोगों पर जो जुर्माना किया जाए वह राज्य को न मिलकर, स्वयं उस गाँव को मिल जाए [III १]

अब तथा ध्यात्र ध्यात्र की नीव (अर्थ) पर १५ प्रतिमल प्रति वर्ष

बटाई गई है। जैसा कि टीकाकार ने बताया है यह दर कदाचित् उन ऋणों के लिए भी जो कोई भीज गिरवी रख कर (बन्धाबालपूर्व) प्राप्त किए जाते थे। व्याज की दरों में जो अत्यधिक अंतर था उसका कारण इस बात से माहूम हो जाता है। व्यापारी (व्यापहारिक) व्याज की दर ५ प्रतिशत प्रति माह दुर्गम स्थानों से लायी गई चीजों का क्रय-विक्रय करने वाले व्यापारियों के बीच (कन्तारगणा दुर्गममार्गव्यवाहिनी बन्धनानाम्) १० प्रतिशत और समुद्री (समुद्र) व्यापार करने वालों के बीच २ प्रतिशत बटाई गई है।

निर्धारित दर से अधिक व्याज लेने वाले को दंड दिया जाता था। जो बीच इस प्रकार की अनुचित दर पर लेन-देन के साक्षी होते थे (सोत्तुयाम्) उन पर भी जुर्माना किया जाता था [III ११]

कृति-अथ यदि किसी व्यक्ति को अनाज उधार दिया जाए और यदि वह उसे फसल के समय वापस लौटाए (सत्यमिष्यती) तो उससे व्याज के रूप में (बाल्य-वृद्धि) उधार दी गई मात्रा के आधे से अधिक अनाज नहीं लिया जा सकता था।

यदि व्याज फसल के बाढ़ अदा किया जाए, तो ऋण का हिसाब नकद रकम के रूप में परिवर्तित कर दिया जाता था (मूय्यहृता)।

किसी नये समझौते के अन्तर्गत ऋण पर व्याज की मात्रा (प्रलेपवृद्धि) मूठबन के मूल्य के आधे से अधिक नहीं हो सकती थी (उदधादुमर्ष)।

यदि ऋण देनेवाला (फसल के समय) चुकाने के लिए न कहे (सन्निबाल-घमा) जबकि ऋण देनेवाला उसे आसानी से चुका सकता है तो ऋण देने वाले को केवल एक वर्ष का व्याज पाने का अधिकार होगा उसके बाढ़ उस ऋण पर कोई व्याज नहीं बढ़ेगा (वायिकी हैय)।

जो लोग किसी दीर्घ साधना में संलग्न हों (दीर्घतन्त्रा) या रोगी हों या सिला के लिए अपने घर से अलग अपने गृह के मही रहते हों (बुध-कृतोपच्छ) या जो नाबालक हो या बिनके पास कुछ न हो (असहार) तो उनके ऋण का व्याज मूठ ऋण की राशि में जोड़कर, उसमें वृद्धि नहीं की जा सकती (ऋणम् न वर्धेत)।

काष्ठातीतता अथवा ऋण की समाप्ति यदि कोई ऋण दस वर्ष के भीतर बसूस न कर किया जाए तो उसके बाढ़ वह बसूस नहीं किया जा सकता था। परन्तु यदि कोई ऋण देनेवाला ऋण की बसूसी के लिए कार्यवाई न कर सकता हो जैसे यदि वह नाबालक हो या बहुत बूढ़ा या बीमार हो या कहीं परसेस चला गया हो (प्रोबित) या बेख छोड़कर चला गया हो (वेगस्थाय) या राज्य में विप्लव की परिस्थिति हो (राज्य-विग्राम) तो उसके लिए समय की यह सीमा लागू नहीं की जाती थी [III ११]।

कायस्थकारों तथा राजकर्मचारियों (राजपुरुषाः) को काम करते समय (कर्मकालेषु) ऋण जमा न करने के अपराध में विस्तार नहीं किया जा सकता था (उपनिषत्) ।

**बरोहर :** यदि कोई बरोहर (उपनिधि) ऐसी परिस्थितियों के कारण लोप या किसी बिम्बेवारी बरोहर के गन्धर्वों पर न हो तो वह बरोहर वापस नहीं माँगी जा सकती थी । इन परिस्थितियों की व्याख्या इस प्रकार की गई है— (क) यदि शत्रु अथवा अन्य जातियाँ (बाह्यिक) समस्त नगरों तथा देहातों सहित उस देश पर कब्जा कर लें (ख) यदि शत्रु (प्रतिरोधक) उस गाँव को उसके व्यापारिक मार्ग के गंधर्वों को (सौर्य अथवा बहिर्-सैन्य) को तथा उसकी पशुधाराओं (हज) को लूट कर दें (ग) उसके साथ कोई बोलचाल करे या वह मृत्यु हो जाए, (घ) श्रावण करने या बाढ़ आ जाने के कारण गाँव को क्षति (नाश) हो और (च) मार्ग से गया हुआ अनाज लूट जाए या समुद्री शत्रु उसे लूट लें [III १२]

**दीर्घकाल तक उपभोग के कलस्वक्य सम्पत्ति पर अधिकार** दीर्घकाल तक किसी सम्पत्ति का उपभोग करने के कलस्वक्य उस पर स्वामित्व हो जाने के बारे में भी कुछ नियम बना दिये गए थे । यदि कोई व्यक्ति इस वर्ष तक अपनी सम्पत्ति की ओर कोई ध्यान न दे और कोई दूसरा व्यक्ति उसका उपभोग करता रहे तथा वह उसके स्वामित्व में रहे तो सब सम्पत्ति के मूल स्वामी को उस पर कोई अधिकार नहीं रह जाता था जब तक कि इस परिस्थिति का कारण यह न हो कि वह नाबालिग हो या बहुत बूढ़ा हो या कहीं बाहर रहता हो या राज्य में अस्थिर रह जाने के कारण देश छोड़कर चला गया हो । अथवा सम्पत्ति के स्वामित्व का अधिकार प्राप्त करने के लिए बीस वर्ष तक उस पर स्वामित्व रहना आवश्यक था [III, १५] ।

**मानहानि :** इस दीर्घक के अन्तर्गत ये अपराध विनाये गए हैं उपबाध (मानहानि) कृतान्न (विरस्कारपूर्ण बात या अपमान) और अविभर्त्सन (माफी या क्षमा) । किसी भी प्रकार का अपराध कहने पर, चाहे वह सच हो या झूठ अपराधी को दंड दिया जा सकता था ।

**बचकी :** यदि कोई किसी व्यक्ति को क्षति पहुँचाने की धमकी देता था तो उसे वह क्षति पहुँचाने पर जितना दंड मिलता उसका आधा दंड दिया जाता था [III ८] ।

**विप्या लीछन :** किसी व्यक्ति के नाम (धृतीपवाद) या पद (धृत्त्युपाद) के बारे में कौन कहानी कहनेवालों (बाह्यीकरण) वस्तुकारों (बाध) या कर्मकारों तथा गुरुओं (कुचितव) के बारे में कोई अपमानजनक बात कहने पर

दंड दिया जाता था। यदि किसी व्यक्ति के किसी कुख्यात स्थान का निवासी होने के कारण उसका अपमान किया जाए (अनपरोपवाद), तो भी अपमान करने वाले को दंड दिया जा सकता था। अपमान सूक्ष्म देशों तथा जातियों के उदाहरणों के रूप में कौटिल्य ने प्राप्नुषक तथा पाण्डार का उल्लेख किया है। प्राप्नुषक उमरवेध का नाम है जो हूण नामक देश के पूर्व में स्थित है जिसे टीकाकार के अनुसार, मोग नाम बोकवास में अण्डालराष्ट्र भी कहते थे। पाण्डार तथा उनके भी जाने के देश के उल्लेख में हम बात का एक और प्रमाण मिलता है कि कौटिल्य को अपने अग्रस्थान के बारे में कितनी अधिक जानकारी थी। [III १८]।

विभिन्न अपराध बीड़ को चीजन देना अन्य विभिन्न अपराधों में कौटिल्य ने किसी पूजा भवना आदि के अवसर पर (वेवपितु-कार्येषु) श्रावणों (बीड़ों) जाजीवकों, शूद्रों तथा प्रवृत्तियों को भोजन करने के अपराध का भी उल्लेख किया है और इस अपराध की दंडनीय छद्मता है [III २]।

श्रीमदारी का कानून : श्रीमदारी के कानून की व्यवस्था के लिए कष्टक-शोचक शब्द का प्रयोग किया जाता था [IV १]। इसके अन्तर्गत जो अपराध होते थे उनमें से मिम्लक्षित उल्लेखनीय हैं। चोरी हत्या संच बनाना या जब रस्ती किसी के घर में धुस खाना किसी को बिय देना बासी सिपके बनाना सम्पत्ति को हानि पहुँचाना अपनी लापरवाही के कारण किसी को हानि पहुँचाना कर्मचारियों द्वारा बायकाट तथा इसी प्रकार के अन्य कर्म नीमकों को इच्छानुसार पढ़ाने या पिराने के लिए संच बनाना या माप-तोल के मानदंडों के सम्बन्ध में बास-साही करना। इन सब मामलों में बंदाजीकों (प्रवेष्टा) भवना राजस्व तथा पुष्पि विमाव के अधिकारियों की सहायता के लिए कुपचरों तथा इस प्रकार के अपराध करने वालों के बीच बुरकर उनका मेह लेने वालों का बहुत बड़ा कर्म चारि-नैवक काम करता था जिसका कि उल्लेख पहले किया जा चुका है।

उदाहरण कुछ विशेष कानूनों के उदाहरण नीचे दिए जा रहे हैं।

मिरफ्तारी जब तक कि अपराध का कोई बहुत पक्का प्रमाण मौजूद न हो तब तक किसी अपराध के बटित होने के समय से तीन दिन बीत जाने पर किसी व्यक्ति को उस अपराध के सबेह में (अकिन्तक) मिरफ्तार नहीं किया जा सकता था (मिराशाबुर्ख अघाहण)। किसी पर केस सबेह होने के कारण उसे मिरफ्तार नहीं किया जा सकता था। इसके पीछे दलील यह थी कि ३ दिन बीत जाने पर बहुत-से आवश्यक प्रमाण नष्ट हो चुके होते और उसके बाद जिस व्यक्ति पर अपराध का सबेह हो उससे सवाह-जवाब करने से कोई काम नहीं होता और इस बीच में अपराध की छिड़ करने वाले बीबार जाकि ऐसे लोगों के साथ पहुँचाए



जा चुके होंगे तब पर उस अपराध का सबेह भी न किया जा सके (परिष्ठा नावाक्यप्रयोगपरवर्धनात्) [IV ८] ।

उक्तवाच्य अपराध के लिए उक्ताने वाले को बीसे किसी हत्यारे अथवा चोर को लामा-कपड़ा (अक्तवास) तथा मांस आदि बीसी बीसों देनेवाले को या उन्हें सुनना अथवा परामर्श देनेवाले को दंड दिया जाता था [IV ११] ।

विना लाइसेंस (अनुज्ञा) के कोई भी व्यक्ति बेचने पर भी दंड दिया जाता था । यदि किसी अनधिकृत स्थान पर कोई भी व्यक्ति के लिए अपना करता था तो उसका सारा मांस जब्त कर दिया जाता था [IV २] ।

मितावट : जैसा कि हम पहले बता चुके हैं, किसी भी व्यक्ति में किसी भी प्रकार की मितावट करनेवाले को भी दंड दिया जाता था । बीसे किसी पुरानी बीज को नहीं कहकर बेचना [IV २ तथा ९] बहुत गम्भीर, घटिया तथा बिबेसी मांस को शुद्ध प्राकृतिक बकिना तथा स्वबेसी कहकर बेचना और बिबेस रूप से खाने पीने की चीजों में मितावट करना अपराध था [IV ९] ।

व्यापारियों की सुरक्षा : व्यापारियों के कार्डिनों (कार्डिन) को पाँच में उनके लिए निश्चित स्थान में ठहरना पड़ता था और पाँच के मुखिया (ग्राम-मुख्य) को अपने मांस की कीमत बतानी पड़ती थी । यदि कोई भी व्यक्ति को बाटी बी या गट्ट हो जाती थी तो पाँच के मुखिया (ग्रामस्वामी) को उस क्षति की पूर्ति करनी पड़ती थी । यदि बीटी अथवा क्षति बीज के बाहर उसकी सीमा के निकट होती थी तो उस क्षति की पूर्ति बिबेसाध्य को करनी पड़ती थी । यदि यह दुर्घटना उसके भी अधिकार-क्षेत्र के बाहर होती थी तो औररगमुख नामक अधिकारी को उस क्षति की पूर्ति करनी पड़ती थी । यदि क्षति किसी ऐसे स्थान में होती थी जहाँ ऐसा कोई अधिकारी न हो यदि वह किसी अरक्षित स्थान में भी होती थी, तब भी उस क्षति की जिम्मेदारी ऐसे व्यक्ति पर रहती थी जिसकी इसमात्र में वह "दो सीमाओं के बीच का अरक्षित स्थान" होता था । इसे सीमा-स्वामी कहते थे । यदि वह भी तबय न हो तो बाघ-पाघ के पाँच या दस पाँचों के लोगों को उस क्षति की पूर्ति करनी पड़ती थी । इस प्रकार यह उपर्युक्त प्राय तथा सम्पत्ति की सुरक्षा के लिए एक प्रकार का बीज-कर था [IV १३] ।

इस प्रकार व्यापारियों के लम्बे-लम्बे कार्डिने बीरे-बीरे दिनों के समय भी और रात के समय भी पूर्ण सुरक्षा के आश्वासन के साथ विभिन्न प्रदेशों को पार करते हुए यात्रासुख के साथ तबय तक चले जाते थे । एक प्रदेश की सीमा समाप्त हो जाने पर, उन प्रदेश के ग्रहण उनकी रक्षा का चार घुसरे प्रदेश के ग्रहणों को भी देते थे । यात्रापात्र की इस सुरक्षा के कारण देश में व्यापार की वृद्धि बहुत बढ़ी हुई होगी ।

प्रस्तापत सम्बन्धी नियम : यातायात के सम्बन्ध में बहुत ही दिलचस्प नियम था यदि कोई सारथी किसी राहगीर को "हट जाओ ! हट जाओ !" (अवेहि ! अवेहि ! ) कहकर रास्ते के जाने की चेतावनी देता जाता हो तो टक्का हो जाने पर भी (स्पष्ट करने) उसे बंद नहीं दिया जाता था [IV १९]। यही बात हाथी के महाबल पर भी लागू होती थी।

मार्ग अवरोध करने पर या सिचाई के पानी का प्रवाह रोकने पर (कर्मीबक-मार्गव्यवस्था) भी बंद दिया जाता था [IV १०]।

भोरों से रक्षा उस समयाने में भी खेबें काटी जाती थी (अग्निभेद) और इस अवस्था पर कठोर बंद दिया जाता था [IV १०]।

प्राप्त तथा सम्पत्ति की रक्षा का भार एक विभाग के जिम्मे था जिसके प्रमाण को प्रवेष्टा कहते थे। उसके अधीन काम करने वाले कर्मचारियों में दो प्रकार के अधिकारी होते थे धोप तथा स्वामिक। जिस प्रकार नगर के भीतर (अन्तर्मुख) भोरों से रक्षा करने की जिम्मेदारी नगर के मेयर (नागरिक) की होती थी उसी प्रकार बेहस्तों में (बाह्य) भोरों का पता लगाने की जिम्मेदारी इन धोप तथा स्वामिक नामक अधिकारियों की होती थी [IV ४]।

शान्ति तथा सुख्यवस्था : धूलाली केजकों की सारथी उस समय पूरे देश में शान्ति तथा सुख्यवस्था की जो सामान्य परिस्थितियाँ थीं उनका वर्णन मेगास्थनीज ने किया है। भारतवासियों की ईमानदारी के प्रमाण के रूप में म्बायास्त्रों के सम्मुख जाने वाले विमावों की अल्प संख्या का उल्लेख करते हुए उसने यहाँ तक कहा है कि "मात्र एक किसी भी भारतवासी को मृत्यु बोलने का बंद नहीं दिया गया है" [अध ३५]। उसने यह भी कहा है कि "भारतवासी मुख्यमेवाक नहीं होते हैं। किसी के पास कोई बरोहर रखते समय यवाहों भी या उस चीज पर मुहर लगाने की आवश्यकता नहीं समझी जाती। वह दूसरे पर विश्वास करके ही उसके पास बरोहर रखता है। आम तौर पर उनके घरों की रक्षायी करने के लिए कोई नहीं होता।

साको [XV ५४] ने लिखा है "मिथास्थनीज पैन्डोफोट्टोस (अंग्रेज) के पड़ाव में रहा था जिसमें ४००० सिपाही थे और उसका कहना है कि उसने यह बात देखी थी कि किसी भी दिन २० ब्राह्मण ( = सगमय ? स्वयं ) से अधिक की बोरियों की शिकायतें नहीं आती थीं।

जानेसिफ्टस के कथनानुसार सिंध में इत्या अथवा मारपीट के अतिरिक्त और किसी बात का मुकदमा नहीं चलाया जा सकता था। "हम इत्या या मारपीट से रोक पाम का तो कोई उपाय नहीं कर सकते परन्तु यदि हम सहज ही किसी पर बरोदा कर देने के कारण भोला या जाएँ तो दोष हमारा ही होगा। आरंभ

में हमें बहुत सावधान रहना चाहिए, कि कहीं हम नगर में मुकुटमों की भरमार न कर दें" [सावो XV ७०२]। मुकुटमें करने की सुविधाओं का यह अभाव देश के सभ्य नैतिक स्तर का सूचक है। सावो ने लिखा है (उपमृक्क) 'उनके कानूनों तथा उनके करारों की सावगी इस बात से सिद्ध होती है कि वे घायर ही कभी म्यामाक्या की धरण में जाते हों। जाये बसकर उसने फिर लिखा है "वे बहुत बड़ी अम्यवस्थित भीड़ को पसन्द नहीं करते और इसलिये नि सुम्यवस्था के निपटों का पालन करते हैं।

मेगास्वनीय ने यह भी लिखा है [अप XXVII] "मारुतवासी न तो सूय पर पैसा देते हैं और न ही वे उधार लेना जानते हैं। किसी के साथ कोई अत्याम करना वा किसी अत्याम को सहन करना बाजार-व्यवहार के प्रतिष्ठित मानसर्वों के विरुद्ध है और इसीलिए न तो वे कोई कानूनी लिखा-पढ़ी करते हैं, और न उन्हें किसी की जमानत की आवश्यकता पड़ती है।

बंड-संहिता परम्पु धानि तथा सुम्यवस्था की इस व्याप्त मायता के साथ एक कठोर बंड-संहिता का होना कोई असंगत बात नहीं थी और क्याचित् इसी के कारण यह धानि तथा सुम्यवस्था कायम थी। कुछ अपराधों में बंड के रूप में अपराधी के अंग काट दिए जाते थे। सावो ने लिखा है "यदि कोई व्यक्ति झूठी मवाही देता वा और उसका यह अपराध सिद्ध हो जाता वा तो उसके हाव-नीर काट लिए जाते थे। यदि कोई जाहमी किसी दूसरे व्यक्ति के किसी अंग को बेकार कर देता वा तो उसका न केवल वही अंग काट लिया जाता वा बल्कि उसका एक हाव भी काट लिया जाता वा। यदि कोई किसी कारीयर के हाव या उसकी जाँह को नष्ट कर देता वा तो उसे मृत्युबंड दिया जाता वा।" अर्धशास्त्र के दो अध्यायों में [IV ८ तथा १०] विभिन्न प्रकार की संभवाओं (संकाक्य-कर्मानिग्रह) तथा अंग-विच्छेद (एकीवच) का उल्लेख किया गया है, पर इस प्रकार के शारीरिक दंडों के बदले में जुमनि आदि का उपबंध करके अंग काट देने के बंड को निरर्थक कर दिया गया है।

म्याय की निष्कलकता : इसके लिए समाहूर्ता तथा प्रवेधर नामक प्रधान अधिकारियों के अधीन म्याय के प्रशासन के कठोर निरीक्षण की व्यवस्था की गई थी [IV ९]।

म्यामाधीशों के अपराध : यदि कोई म्यामाधीश (मर्यस्व) म्याय कठे समय जारी पर बीस जमाकर (तर्जवति) उसे अटकर (मर्त्तवति), म्यामाक्य से निकालकर (मपसारवति) वा तिड़ककर, जबरन अपमानित करके या पामी देकर कोष का प्रदर्शन करता वा (बाकपाक्य) तो उसे दंड दिया जाता था।

यदि वह ऐसे प्रश्न नहीं पूछता था जो पूछे जाने चाहिए, या ऐसे प्रश्न पूछता था जो नहीं पूछे जाने चाहिए, या स्वयं उसको द्वारा पूछे गए प्रश्नों के उत्तर की ओर ध्यान नहीं देता था या किसी गवाह को सिखा-पढ़ाकर उससे छापी हिम्मत बाता था या उसे किसी प्रश्न का उत्तर बताता था या किसी भी प्रकार का संकेत देता था (पूछना न पूछति अपूछन् पृच्छति पृच्छा वा विमुञ्चति क्षिपयति स्मारयति पूर्वं वदति चेति) तो भी उसे दंड दिया जाता था।

किसी न्यायाधीश के लिए इससे भी बड़ा अपराध यह था कि वह किसी गवाह से ऐसे प्रश्न पूछे जिनका उस विवाद से कोई सम्बन्ध न हो (अवेयं वैज्ञ पृच्छति) गवाह की बात को घुटिगत करने बिना विवाद का निर्णय करे (कार्ये अवेयेन अतिवाह्यवित्ताक्षिप्तं निर्णयं निर्णयति); किसी छलने गवाह को प्रसन्न दिसा में ले जाए (छलेन अतिहुरिति सत्यवादिनमपि साक्षिणं छलवानयेन अपराधयति) विवाद के दोनों पक्षों को हतना बचा दे कि वे अपना धैर्य जो बैठे और ध्यान में इतना विकल करे कि वे विवाद होकर न्यायालय से चले जाएँ (कलहुरधेनं भ्रान्तम् अपराधयति) गवाह ने बतलाया जिस क्रम से दिए हैं उन पर उसी क्रम के अनुसार विचार न करके समस्या को उलझा दे (भ्रान्तिप्रसन्नं अपराधयति-क्रमं साक्षिणमप्य उल्लभयति) या गवाह को संकेत देकर तथा अपेक्षित उत्तर बताकर उसकी सहायता करे और इस प्रकार उसके छाव छाव-बाँट करे (अति-साहाय्यं साक्षिण्यी वदति) और अंतिम बात यह कि किसी ऐसे विवाद पर, जिस पर पहले निर्णय हो चुका हो फिर से विचार आरंभ करे (वारिष्ठानुसिष्टं कार्यं पुनरपि गृह्णाति); यदि कोई न्यायाधीश बार-बार इस प्रकार के अपराध करता था तो उसे पदच्युत कर दिया जाता था (स्वभ्रान्त्यवरोधकम्) [XVI ९]।

गवाहों में उलझ-झेर करना : जैसा कि हम पहले बता चुके हैं गवाहों के बक्तव्यों की सही-सही रब न करके उनमें उलझ-झेर करने या उनके बक्तव्यों को बाद में बदल देने पर न्यायालय के उस लेखक को उसके अपराध की रंधीरता के अनुसार दंड दिया जाता था।

मनुस्मृति तथा अन्य स्मृतियों की तुलना में कौटिल्य के निबंधों की प्रयासता : ऐसा प्रतीत होता है कि कौटिल्य ने जिस समाज के लिए नियम बनाए थे वह मनु तथा याज्ञवल्क्य की स्मृतियों के समाज से बहुत पुराना था। किसी भी समाज व्यवस्था का एक से बुनियादी तथा मूलभूत तत्त्व विवाह-सम्बन्धी तथा समाज में स्त्रियों के स्थान से सम्बन्धित नियम होते हैं।

जैसा कि हम पहले बता चुके हैं इस मागध में कौटिल्य के नियम उन सामाजिक प्रथाओं पर आधारित हैं, जो मनु तथा याज्ञवल्क्य की स्मृतियों में

प्रतिबिम्बित होने वाले बाव के समाज की अपेक्षा वैदिक समाज के अधिक निकट है।

**विवाह-विच्छेद :** उदाहरण के लिए, जबकि स्मृतियों में तलाक की कल्पना करना भी असंभव है कौटिल्य ने कुछ परिस्थितियों में उसे उचित ठहराया है। इसमें ही संदेह नहीं कि मनु ने पुरुष को यह अधिकार दिया है कि वह अपनी पत्नी को तलाक देकर दूसरा विवाह कर सकता है परन्तु की इसका अधिकार नहीं है। मनु के मतानुसार, 'यदि कोई पत्नी मदिरापान करती हो जिसका आचरण अनैतिक हो जो अपने पति के प्रति भूषा प्रकट करती हो जो दुष्ट प्रवृत्ति की हो या अपनी सम्पत्ति का वृक्षबोध करती हो उसे उसका पति तलाक दे सकता है और उसके स्वान पर दूसरी पत्नी ला सकता है' [II ८]। मनु ने ऐसी भी कुछ परिस्थितियाँ बतायी हैं, जब पति कुछ समय के लिए अपनी पत्नी को छोड़कर जा सकता है। परन्तु उपर्युक्त स्मृतिकारों ने तलाक देने या छोड़कर चले जाने के ये अधिकार केवल पति के लिए ही सीमित रखे हैं और पत्नी को इन अधिकारों से सर्वथा वंचित रखा है। स्त्री का कर्तव्य यह बताया गया है कि उसे इस जीवन में और जीवन के बाद भी बिना कोई छका किए या कोई दर्द कपाए, अपने पति की आज्ञा का पालन करना चाहिए तथा उसके प्रति एकनिष्ठ रहना चाहिए [मनु, १ १५१ १५४ IX ७७-७८ V १४८ बालकृष्ण I ७५, ७७]। परन्तु कौटिल्य ने स्त्रियों की पुरुषों के समान अधिकार देकर अधिक बुद्धिसमय तथा मानवीय भावनाओं के अनुकूल व्यवस्था की स्थापना की है। कौटिल्य ने कुछ विशिष्ट परिस्थितियों में स्त्री के लिए अपने पति को तलाक दे देना उचित ठहराया है। इनमें से एक परिस्थिति यह है कि दोनों अपनी निरन्तर पारस्परिक सन्तुष्टा के आचार पर तलाक के लिए सहमत हों (परस्परं वपस्य मोक्ष) [III ३] ताकि वे अपना वैवाहिक जीवन गैर विरे से आरम्भ कर सकें। परन्तु यदि दोनों में से कोई एक पक्ष इसके लिए सहमत न हो तब कौटिल्य तलाक की उक्ति नहीं ठहराता। कौटिल्य के मतानुसार कोई स्त्री चाहे उसके हृदय में अपने पति के प्रति किम्बत्ता ही कितनी न हो उस समय तक तलाक नहीं ले सकती जब तक पति इस पर सहमत न हो जाए। न ही कोई पति चाहे वह अपनी पत्नी को कितना ही मायसय क्यों न करता हो उसकी इच्छा के विरुद्ध तलाक दे सकता था।

इसके साथ ही कौटिल्य ने पत्नी को इस बात का अधिकार दिया था कि यदि निम्नलिखित किसी कारण से उसका अपने पति के साथ रहना असंभव हो जाए, तो वह उनसे अलग हो सकती थी उसका पति "कुचरित (नीच) हो उसने अशान्ति पाए लिए है (वर्तित महत्पक्षकपूजित) या वह हत्या

(प्राणाभिहृता) हो या गर्भसक (वसीव) हो या क्षय रोग से पीड़ित हो (राज किस्त्रिपी) या उस पर बृधसोरी बबबा राजद्रोह का अभियोग लगाया गया हो या वह कहीं विदेश चला गया हो [III २] ।

परन्तु कौटिल्य ने कड़ियों तथा समातन पद्धति के मादसों को विष्कृज ही त्याग नहीं दिया था क्योंकि विवाह की मान्य पद्धतियों में से बिनबा उसके पहले किया जा चुका है, पहले चार प्रकार के विवाहों में वह तत्काश को स्वीकार नहीं करता था (अमौशो बर्गविवाहानाम्) [II ३] ।

पुनर्विवाह : इसके अतिरिक्त स्त्रियों के पुनर्विवाह के सम्बन्ध में भी कौटिल्य तथा बाद के स्मृतिकारों में मतभेद है। मनु के अनुसार, बर्गग्रन्थों में विधवाओं को पुनर्विवाह की अनुमति नहीं दी गई है और विद्वानों ने उसे पशुओं के लिए ही उचित ठहराकर उसकी निंदा की है [IX, १५, १६] । मनु ने यह बात भी और देकर कही है कि कन्या का विवाह केवल एक बार ही हो सकता है [IX, ४७] । वह विधवा को इस बात का भी अधिकार नहीं देती कि वह विवाह के प्रसंग में किसी दूसरे पुरुष का नाम भी ले [V १५७] ।

इतना ही नहीं पत्नी वीर्यकाण्ड तक अपने पति की अनुपस्थिति के कारण पर, उसकी अनुपस्थिति का काल कितना ही कम या क्यों न हो दूसरे पति से विवाह नहीं कर सकती [IX, ७६, ७८ याज्ञवल्क्य I ८९] । याज्ञवल्क्य ने कहा है कि अपनी पहली पत्नी से मर जाने के बाद किसी पुरुष के लिए दूसरा विवाह न करना एक अपराध है [I ८९] परन्तु परिस्थितियों में स्त्री को दूसरा विवाह करने की इजाजत नहीं दी गई है । इसका बर्ण यह भी था कि दूसरा विवाह करने के अवधिमान काम में उसका साम देने के लिए विधवा को अपने किसी सम्बन्धी का सहाय भी नहीं मिल सकता था और यदि वह अपने आप दूसरा विवाह कर लेती थी तो उसे स्वैरिणी ठहराया जाता था [I ६३ ६४ ६७] । स्त्री का बर्ण यहाँ तक बताया गया था कि पति की मृत्यु हो जाने पर उसे सती होकर अपने प्राणों का अन्त कर देना चाहिए [I ८६] ।

मनु ने ऐसी स्त्री का उपाहरण दिया है जिसे उसका पति छोड़कर चला गया हो या जो विधवा हो गई हो और उसने दूसरे पति से विवाह कर लिया हो ऐसी दशा में इस विवाह से जो पुत्र उत्पन्न होया वह वीर्यवर्ध अर्थात् 'बाधना की संतान' कहा जाएगा [IX १७५] । परन्तु वह स्पष्ट है कि कुमारी विधवा की पुनर्विवाह की अनुमति भी ( उपरीकृत १७६ ) ।

जैसा कि पहले बताया जा चुका है कौटिल्य का मत यह था कि यदि पति कहीं चला जाए, तो उसकी पत्नी दूसरा विवाह कर सकती थी । पति की अनुपस्थिति का काल अल्प-अध्व परिस्थितियों के अनुसार अलग-अलग निर्धारित किया गया

या जैसे यह कि उसका गर्भ गया है, उस स्त्री के कोई संतान है कि नहीं या उसके घर-शोषण की कोई व्यवस्था है कि नहीं (अप्रजाता अथवा प्रजाता प्रतिबिहिता या अप्रतिबिहिता)। यदि पति ब्राह्मण विद्यार्थी हो और विद्योपासन के लिए विदेश गया हो तो पत्नी को १ वर्ष तक प्रतीक्षा करना पड़ती थी और यदि उसके संतान हो तो १२ वर्ष तक। यदि पति राज-कर्मचारी हो और उसे राज्य के किसी काम से विदेश भेजा गया हो तो स्त्री दूसरा विवाह नहीं कर सकती थी। यदि प्रतीक्षा की उपर्युक्त अवधि बीत चुकी हो तो स्त्री उसी वर्ग के किसी व्यक्ति से दूसरा विवाह कर सकती थी ताकि उसका बंशक्रम बचता रहे। यदि पति की अनुपस्थिति के कारण किसी स्त्री के पास घर-शोषण के साधन न रह जाए और उसके सने-सम्बन्धी उसके घर-शोषण का प्रबंध न करते हों और इसलिए वह अपनी बीविका बचाने के लिए या अपने आप की विपत्तियों से बचाने के लिए दूसरा विवाह करने पर विवश हो तो वह अपनी पसंद के किसी व्यक्ति से दूसरा विवाह कर सकती थी (यथेष्टं विभेत्) [III ४]। विवाह की उपर्युक्त चार मान्य पद्धतियों (वर्गविवाह) के अन्तर्गत उस कुमारी पत्नी को जिसका पति विदेश भेजा गया हो निर्विघ्न काल तक प्रतीक्षा करने के बाद जिसकी अवधि तीन माह से एक वर्ष तक रखी गई थी दूसरा विवाह कर देने की अनुमति थी। परन्तु इससे पहले स्वाध्याय की अनुमति से विवाह को औपचारिक रूप से भंग करा लेना आवश्यक था (वर्गस्वैर्विमुक्त्य)।

उन स्त्रियों को भी दूसरा विवाह कर देने की अनुमति थी जिनके पति वीर्यकाष्ठ से विदेश में हों (वीर्यप्रवातिनः) या संन्यासी हो गए हों (प्रव्रजित) या मर चुके हों (मृत) [III ४], या पत्नी के कोई संतान न हो (अदम्बकामा) ऐसी दशा में उसे अपने पहले तसुर तथा पति द्वारा दिये गए स्त्रीधन पर पूरा अधिकार रहता था [III २]।

एकौत्तर विवाह इस प्रकार के विवाहों को कौटिल्य तथा स्मृतिकारों दोनों ही ने उचित दृष्ट्यमा है पर इसके बारे में दोनों के दृष्टिकोण में अन्तर है। यदि कोई प्रौढ़ कन्या अपनी इच्छा से अपना घर-जग से तो उसे अपने पिता से कुछ पाने का अधिकार नहीं रह जाता [मनु IX १० ११ III २७-३ ३५ IX ११ III ३५ ४० ब्राह्मणस्य I १४ II २८७ आदि]। कौटिल्य का मत यह है कि उस विवाह का अनुमोदन किया जाना चाहिए, जिससे सभी सम्बन्धित पक्षों को सन्तोष प्राप्त होता हो (सर्वेषां प्रीत्यारोपणम् अप्रतिविद्यम्) [III २]।

अनुमोम विवाह : कौटिल्य तथा स्मृतिकारों दोनों ही ने अनुमोम विवाह की अनुमति दी है [याज्ञवल्क्य I ५७ मनु III, १४ १९]। परन्तु कौटिल्य से स्मृतिवा इस बात में निश्च हैं कि उनमें तीन उच्च वर्गों के पुरुषों के दूध दान के

साथ विवाह की अनुमति नहीं दी गई है। इस प्रसंग में तीन उच्चतर वर्गों तथा पुरुषों के बीच कोई अन्तर न मानकर, कौटिल्य ने अधिक उदार विचारों का परिचय दिया है। कौटिल्य ने केवल उत्तराधिकार के अंतगारे के मामले में इनमें अन्तर किया है जैसा कि हम पहले भी बता चुके हैं। बाह्य पत्नी के पुत्र को पिता की सम्पत्ति में चार हिस्से पाने का अधिकार होता था। सभिय पत्नी के पुत्र को तीन हिस्से, वैश्य पत्नी के पुत्र को दो हिस्से और शूद्र पत्नी के पुत्र को एक हिस्सा पाने का अधिकार होता था (III ६)। इसके अतिरिक्त यदि तीन उच्चतर वर्गों के किसी व्यक्ति न शूद्र स्त्री के साथ वैध रूप से विवाह न किया हो, तो उस पत्नी से उत्पन्न होने वाले पुत्र को पिता की सम्पत्ति पर कोई अधिकार नहीं होता था। पर कौटिल्य ने इस प्रकार के पुत्र को अपने पिता की विहाई सम्पत्ति का अधिकारी ठहराया है। [मनु IX, १५५ अर्धशास्त्र III ६]।

मौर्य समाज की कुछ अन्य विशेषताएँ कौटिल्य ने जिस रूप में मौर्य समाज का चित्रण किया है वह स्मृति-कालीन समाज से अन्ध कई बातों में भी भिन्न है। हम बेशक चुके हैं कि आर्य लोग एक निर्धारित सीमा के भीतर मरिचपान करते थे। इसके विपरीत ब्राह्मण्य ने मरिच बेचकर अपनी जीविका कमाने वाले (सुराजीव) के दर पर भी भोजन करने में दोष ठहराया है [I, १५]। फिर, मौर्य समाज में हम देखते हैं कि बाह्य विना किसी रक्त-दोष के सेना में भरती होते थे। मौर्य सेना में जैसा कि हम पहले बता चुके हैं, बाह्यकों के रिस्ते होते थे [IX, २]।

इन अर्थ में यह भी बता दें, कि ज्ञान्येय में रखातर विवाहों का अस्तेय निष्ठता है उसमें सती प्रथा का कहीं उल्लेख नहीं मिलता और विधवा विवाह की भी बात कहीं नहीं है। ज्ञान्येय में अन्धेष्टि सम्मन्धी जी मंत्र है, उसमें यह कहा गया है कि विधवा केवल एक राज के लिए विवाह पर अपने पति के साथ बैठती थी। उस 'पिर जीवन के लोभ में लीट जाने' का आरोप दिया गया है (अथर्व, X ८५, २१।२२ १८ ८)। महाकाव्यों में भी हम देखते हैं कि स्वर्धर की प्रथा के साथ-साथ रक्षातर विवाह की प्रथा व्यापक रूप से प्रचलित थी।

इस प्रकार हम देखते हैं, कि कौटिल्य के अर्धशास्त्र में जो विधि-सम्मन्धी उध्य-सामग्री तथा अन्य सामग्री मिलती है वह उसकी प्राचीनता का बहुमुख प्रमाण है (इस विषय की बहुत अच्छी व्याख्या के लिए एचू इंडियन ऐंतिक्वेरी के फरवरी १९३ के अंक में एच० जी० नरहरि का लेख सोसायटी इन मौर्य इंडिया देखिए)।



## अध्याय १०

### सेना

अश्वगुप्त की सेना : हम मौर्यकालीन तैमिक ( सिमित ) प्रशासन के विभिन्न बहुमुखों पर विचार कर चुके हैं । अब हम मौर्यकालीन तैमिक प्रशासन का विवरण देंगे । अश्वगुप्त ने समित्तवासी सैन्यबल का निर्माण किया होता जिस की सहायता से न केवल पंजाब में युनापी शासन और तन्त्रवासी राजाओं के समित्तवासी साम्राज्य का टुकड़ा उसने उभट दिया बल्कि प्लूटार्क के शब्दों में "दूरे माप पर अपना आधिपत्य बना दिया" । युनापी कृतियों के अनुसार मन्द-सम्राट् की सेना में अनुमानत १,००० पैदल १००० बुद्धवार, १० हाथी तथा ८,०० चार चौड़ी वाले रथ थे । इसीलिए पुटार्क में मन्द को महा पदपति, अर्थात् 'महत्त्व तैमिकों की सेना का स्वामी' कहा गया है । इसी बलवती सेना की परास्त करने के लिए अश्वगुप्त ने इससे बड़ी और इससे अधिक समित्तवासी सेना जुटाई होती । किसी ने अनुमान लगाया है कि उसकी सेना में १,००० पैदल सिपाही १००० बुद्धवार और १०० हाथी थे [ नेबुरस हिस्ट्री V २१ ] । किसी ने इस बात का उल्लेख नहीं किया है, कि उसकी सेना में युद्ध के रथ कितने थे पर यह मान लेना ठीक ही होगा कि उसे कम से कम मन्द की सेना जितने ही अर्थात् ८,०० रथ रहे होंगे । यदि जैसा कि एरिबन ने कहा है हर रथ में सारथी के अतिरिक्त दो सिपाही और होते हों और हर हाथी पर महाबल के अतिरिक्त दो अनुबर्तित होते हों तो अश्वगुप्त की सेना

में ६,००० पीदल सिपाही ३,००० घुड़सवार, ३६,००० आदमी हाथिया पर और २४,००० आदमी रथों पर रहे होंगे कुछ भिन्नकर ६९,०००। इनमें सेना के साथ बल्लभेवाले अन्य नौकर-चाकर शामिल नहीं हैं।

स्वामी सेना : यह बिनास सेना नागरिकों की अस्थायी सेना नहीं थी बल्कि एक नियमित स्थायी सेना थी जिसके हर सैनिक को राज्य की ओर से वेतन मिलता था राज्य की ओर से ही उन्हें युद्ध के समय आवश्यक सामान जैसे घोड़े हाथी हथियार तथा रसद आदि मिलते थे और हर समय राज्य को उनकी सेवा उपलब्ध रहती थी और वे सबसे आकापालन के लिए तत्पर रहते थे। कौटिल्य के मतानुसार यह आवश्यक था कि सैनिक सर्वत्र युद्ध के लिए तत्पर रहे बजाय इसके कि उन्हें कोई ऐसे असंग-असंग काम सौंपकर विभिन्न क्षेत्रों में बिछेर दिया जाए, जहाँ से उन्हें पीछा रखलेख के लिए कूच करने के लिए छूटती न मिल सके (विशिष्टसंभ्रम नेतरत् कार्य-व्यासक्तं प्रतिघर्तसम्भवम्) [VII ९]। इसी बात को धृष्टि में रखते हुए, कौटिल्य प्रांतीय दुर्बलता सेनाओं के लिए गए भरती क्रिये गए वेतनमोची सैनिकों की अपेक्षा आठमाए हुए पुराने सैनिकों को अधिक पसंद करता था क्योंकि पुराने सैनिकों में स्वभावतः अपने स्वामी के प्रति सेवा तथा स्वाभिमान का भाव होता है (निरयस्तकारानुपमाच्च मौलवत् भूतवस्त-प्येवम्) [ ९ ]।

मैमास्थनीय का विवरण : युद्ध-कार्यालय : मैमास्थनीय के अनुसार सेना पर युद्ध-कार्यालय नियंत्रण रखता था जिसके तीस सदस्य होते थे। इनमें पाँच पाँच सदस्यों के १ मंडल होते थे। ये १ मंडल सेना के निम्नलिखित १ विभागों का कार्य-भार संभालते थे (१) पीदल सेना (२) घुड़सवार सेना (३) युद्ध रथ (४) युद्ध के हाथी (५) परिवहन रसद तथा सैनिक सेवा जिसमें डोल बजाने वालों घोड़ों आदि की देखभाल करनेवालों मिस्त्रियों तथा बसियारों आदि का प्रबन्ध करना भी शामिल था (६) नौ-सेना के सेनापति से सहयोग स्थापित करनेवाला मंडल।

पाँचवें मंडल के काम से बताये गए हैं 'इस मंडल के सदस्य बीज्याद्रियों का प्रबन्ध करते हैं, जिन पर युद्ध की सामग्री सैनिकों के लिए रसद पशुओं के लिए चारा और सेना की आवश्यकता का अन्य सामान ले जाया जाता है। वे ही उन नौकरों का प्रबन्ध करते हैं, जो डोल बजाते हैं और उनका भी जो बंटे लेकर चलते हैं। वे ही घोड़ों की देखभाल करनेवाले सेवकों तथा अन्य सहकारियों के लिए मिस्त्रियों का भी प्रबन्ध करते हैं। बंटे की आवाज पर वे बास लगाने के लिए बसियों के सेवक हैं और पुष्कार तथा बंद देकर इस बात की व्यवस्था रखते हैं कि काम बीध तथा मुचाए रूप से सम्पन्न हों' (मैमास्थनीय अध XXXIX)।

सेना के अंग महाभारत : हिंदू धना के बारे में परम्परा यह रही है कि उसके चार अंग होते थे । अर्धसास्त्र म हर जगह उसे अनुरूपवत्त कहा गया है (जैसे II, १३ IX I २ आदि) । मेगास्थनीज ने सेना के दो और अंगों का उल्लेख किया है इन्हें भी प्राचीनकाव्य से सेना का अंग माना जाता रहा है । उदाहरण के लिए महाभारत के अनुसार पूरी सेना के इतने अंग होने चाहिए : (१) रथ (२) हाथी (३) घोड़े (४) पैदल सिपाही (५) परिवहन रसद तथा अन्य सवालों के लिए आग्न्य भूमिक (विधि) (६) नी-सना (७) युद्धभर और (८) वैसाक, जो क्वाक्वि स्काउट तथा बास-पास की परिस्थितियों का पता लगाने वाली टोहिया के नेता होते थे । यह स्पष्ट है कि इसमें (५) (६) (७) और (८) न के कम मेगास्थनीज द्वारा बताये गए सेना के पूरक अंगों के अनुकूल थे ।

कौटिल्य चिकित्सा तथा घातकों की रणक्षेत्र से जाने की व्यवस्था : यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि कौटिल्य ने भी सेना के इन चीजों का उल्लेख किया है । 'स्काउटों का काम जैसे सिविरों सड़कों नदियों तथा कुओं की खुदाई नदियों के बागों का निरीक्षण और उन्हें उपयोग के लिए तैयार करना बायक सैनिकों को उनके घरवालों तथा कबज आदि सहित रणक्षेत्र से हटाकर ले जाना— ये सब काम भूमिकों के एक विशेष समूह के हैं (सिविर-मार्ग-नेतृ-कूपतीर्थगोपन-कर्म यत्राभ्युवाचरणीयकरण घातावहने आयोचनाक्य प्रहरणावरण प्रसिद्धिद्वान-पनयन इति विधि कर्माणि) [X ४] । आचम्यकता की अन्य सेवाएँ, जिनका कौटिल्य ने उल्लेख किया है पर जिन्हें मेगास्थनीज ने छोड़ दिया है, चिकित्सा और घातकों की रणक्षेत्र से हटाने की व्यवस्थाएँ हैं जिनका वर्जन कौटिल्य ने इन सभा में किया है 'अपने साथ घस्य चिकित्सा क जीवार (घस्य) यंत्र बवाएँ (अनद) घावों की मक्का करने वाले ठेक (स्नेह) और पट्टियाँ (बन्नाभि) लिये हुए घस्य-चिकित्सक और पञ्च तथा पीठिक वेद लिये हुए परिवारिकार्य करीब सेना के साथ रहने चाहिए और उन्हें सैनिकों को लड़ने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए (XI ३) ।

उस धुन में आज कल की रेडनास सोसायटी के डॉन की व्यवस्था करना सम्भव बहुत ही अशक्य बात है क्योंकि यह व्यवस्था सेना की रण-क्षमता के लिए उसके चारों ओरों की अपेक्षा कम महत्व नहीं रखती । मेगास्थनीज ने नौकरों चारुतों मित्रियों तथा भगियारों का भी उल्लेख किया है उसकी पुष्टि कौटिल्य के कथन से भी होती है । कौटिल्य ने लिखा है कि "सेनानायक को अपने नौकरों-चारुतों सहित जिनमें मित्रों (वर्षीक स्वपति) और साधारण मजदूर (विधि) हों आने-आने करने चाहिए और सेना के लिए पहले से मार्ग तैयार करके रखना

बाहिए तथा पानी के लिए कएँ लोहने बाहिएँ [Δ.१] 'इस बात का पता पहले ॥ लगाकर रखना बाहिए, कि घास ईंधन और पानी कहाँ मिल सकता है' ( २ ) । 'किसी आकस्मिक आवश्यकता में जितनी साध-सामग्री की जरूरत पड़ सकती हो उससे दुगुनी मात्रा में साध-सामग्री तथा अन्य सामान लेकर चलना बाहिए' [Δ २] । अंत में कौटिल्य ने सूर्य पताकाओं तथा ध्वजाओं का भी उल्लेख किया है [X,१] ।

ऊँटों का रिसाला : यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि कौटिल्य ने घोड़ों तथा ऊँटों की एक सहायक सेना का भी उल्लेख किया है जिसके साथ कुछ गधे भी हों जो सूखे मौसम में ऐसी जगहों में काम कर सकें जहाँ इकदम न हो (सरो-प्राप्तवचप्रत्य) ।

सेनापति : कौटिलीय पद्धति के अनुसार युद्ध-सम्बन्धी पूरे प्रशासन तथा उसके सभी विभागों पर प्रधान सेनापति का पृष्ठ नियंत्रण रहता था । सेनापति में सभी सैनिक योग्यताओं का होना आवश्यक था । उसे युद्ध की सभी विधियों (सर्वयुद्ध) में तथा युद्ध में काम आने वाले सभी प्रकार के यन्त्रास्त्रों का प्रयोग करने की कला में (ग्रहरथ) निपुण होना बाहिए । उसकी सामान्य विद्या का स्तर ऊँचा होना बाहिए (विद्याविभीत) और उसमें सेना के चारों ओरों पर नियंत्रण रखने की क्षमता होनी बाहिए । इनमें से प्रत्येक अंग का अपना अलग प्रमाण होता था पर इन सब पर सेनापति का नियंत्रण रहता था । सेनापति का यह काम था कि वह यान्त्रिकाल में (स्वाने पमननिवृत्तौ) जिस समय सेना कूच कर रही हो (माने) और आक्रमण के दौरान में (ग्रहरथे) सेना में अनुशासन कायम रहे । यह सेना को अलग-अलग झुहों अर्थात् रेजिमेंटों में विभाजित करता था और हर झुह की पहचानके लिए अलग सूर्य ध्वजा तथा पताका निश्चित करता था [ II ३३ ] ।

अन्य पदाधिकारी : पहले विभिन्न पदाधिकारियों के वेतन की जो सूची दी जा चुकी है उससे पता चलता है कि युद्ध-प्रशासन में निम्नलिखित मुख्य पदाधिकारी होते थे

१ सेनापति जिसका वेतन ४८ ०० पण होता था । (राजसेवा में यह सर्वोच्च वेतन था) ।

२ प्रजास्ता जिसका वेतन २४ पण होता था ।

३ नायक जिसका वेतन १२, ०० पण होता था ।

४ मुख्य जिसे ८,० पण मिलते थे ।

जब हम सेना के प्रत्येक अंग के सम्बन्ध में प्रशासन की ध्योरे की बातों पर विचार करेंगे ।

सैन्य सेना ६ प्रकार के सैनिक हम पहले ही देख चुके हैं कि चन्द्रगुप्त की सेना के लिए विभिन्न स्रोतों से सैनिक भरती किये गए थे और उसमें अनेक नवों के लोग थे। कौटिल्य ने उनका वर्णन इस प्रकार किया है

(१) मील : प्रान्तीय प्रशासन के केन्द्र अर्थात् मूल की नियन्त्राणी करने वाले सैनिक। यह प्रान्तीय दुर्ग-रक्षक सेना होती थी (मूल-रक्षणम्) काउम्बेज [X, २ में]।

(२) भुक्त भैतनमोपी सैनिक।

(३) धेनी काम्बोज सुराष्ट्र आदि देशों की सैनिक जातियों की नैगम सेना। (X १) इसका अर्थ यह भी बताया गया है कि धेनी उन सैनिकों को कहते थे जो प्रांतों में सैन्य-कला को अपना जीवनोपायन का साधन बनाते थे (जनपदवर्षान्मुचीयपण) [I ३३ IX २ तथा IX, १]।

(४) मित्र-वत्स, किसी मित्र देश द्वारा दी गई सेना के सैनिक।

(५) अभिज-वत्स, धनु देश से भरती किये गए सैनिक।

(६) अटवी-वत्स, वन-संरक्षक (अटवीपाल) की नियन्त्राणी में रहनेवाली वन-जातियों में से भरती किये गए सैनिक (उपसृक्त)।

धेनी-वत्स : सैनिकों की इन कौटिल्यों में जो सैनिक जातियों से आते थे वे धरतों से ही अपनी जीविका कमाते थे और इसीलिए कौटिल्य ने उन्हें धरतो-पञ्चोबिन [XI १] कहा है। बीता कि ऊपर बताया जा चुका है कौटिल्य ने काम्बोज तथा सुराष्ट्र नामक जातियों का उल्लेख ऐसी ही सैनिक जातियों के उदाहरण के रूप में किया है। कौटिल्य ने एक प्रकार के आमुचीय नावों का भी उल्लेख किया है, जो पेरियर सैनिकों की वस्तियाँ होते थे जिनकी जन-गणना ग्राम्य-अधि काय करते थे (II ३५)। यह बात सम्भवनीय है कि पानिनि ने भी आमुच जीविकान नामक सैनिक जन-समुदायों का उल्लेख किया है।

आसक्ति कौटिल्य और सैनिकों के एक जोड़ के रूप में वन्य जातियों के महारण की भली-भाँति समझता था। उसने लिखा है (VI १०) जिस देश में किसी चोरों की जातियों (चोर-जन) म्लेच्छ लोगों (जैसे पर्वतवासी किरात) और वन्य जातियों की बहुतायत है वह हमेशा एक पड़ोस का शत्रु रहता है। इनके अतिरिक्त यह भी परामर्श दिया गया है, कि जब किसी राजा की सब आचार्य मृत हो गई हों (अस्तहूहीन) तो उसे अक्षय के अंतिम रोल के रूप में सैनिक जातियों (धेनी) कुटेरोके गिरोहों (चोरजन) जनजातियों (आसक्ति) और म्लेच्छ जातियों (जैसे किरात) में से भरती किये गए विभिन्न सैनिकों (प्रवीर पुरुषाणां) की सेना का महाराज सेना चाहिए [VII १४] इनमें भी कौटिल्य ने चोरों या प्रतिरोधकों की बनेला आसक्तियों को अधिक महत्व दिया है [VII ४]। चार तथा प्रतिरोधक तो राज को ही अपना काम करना है अंगरी में डितो रहने

हैं (रात्रि-सम-वरा) और जनमान्य व्यक्तियों को भी का पाकर मृत लेते हैं (प्रधान कोपकाश)। इससे विपरीत आटविक एक जगह बसे हुए लोग (स्वदेश-वर्त) होते हैं उन्हें अपने देश पर गर्व होता है वे लुके आम तथा दिन में अपना काम करते हैं (प्रकाश-वृत्त-वर्त) लुके पैदाय में युद्ध करने हैं (प्रकाश-वर्त) और स्वतंत्र राजाओं की भाँति (राजसम-वर्त) लुके आम सम्पत्ति मटने हैं तथा लोगों का मारते हैं (अव्यवस्था-वर्त) वे बहुसंख्य तथा अपराध (विकृता) होते हैं। कौटिल्य ने राज्य के लिए बाहर से पैदा होने वाले मनरा (वाह्य-कोप) के लोटा में राष्ट्रमुख्यों (प्रांतों के गवर्नर) तथा अन्तर्प्रांतों के साथ १। आटविकों का भी सम्बन्ध किया है [IX ३]। इन सैनिकों को वस्तुओं (वृत्त) के रूप में तथा इन के देश से प्राप्त होने वाले मट के साथ से से सबसे अधिक वेन दिया जाता था [IX २]।

कौटिल्य का कहना है कि एक प्रकार से बेतनभोगी सैनिक सैनिक व्यक्तियों में से भरती किए जान वाले सैनिकों से अच्छे होते हैं। वे हमेशा स्वतंत्र में ठहरने के लिए तैयार रहते हैं और उन्हें मर में रहना प्यारा आसानी होता है (वृत्त)।

कई कौटिल्य ने इस परम्परा को कायम रखा कि सैनिकों की मरती बाह्य सैनिक वृत्त तथा घृष्ट सभी वर्षों के लाला में से की जा सकती थी। परन्तु कौटिल्य बाह्य सैनिकों को बहुत अधिक महत्व नहीं देता था क्योंकि वे घर में जाके हुए धनु को धमा कर देते थे। सैनिक सैनिक सैन्य-कला में अधिक निपुण होते थे। अन्य वर्गों के सैनिक अपनी बहुसंख्या की दृष्टि से महत्वपूर्ण समझे जाते थे [IX २]।

अधिकारी; पब्लिक-सेनापति-नायक; स्वतंत्र में सैन्य-संचालन के लिए अधिकारियों की नियुक्ति एक परम्परागत योजना के अनुसार की जाती थी। १। हाथी तथा १०। रथ और उनके साथ ५०। बुद्धिमान तथा २०। पैदल सिपाहियों की हर सैनिक टुकड़ी का एक सेनानायक होता था जिसे पब्लिक कहते थे। प्रत्येक १०। पब्लिकों के ऊपर, अर्थात् १००। हाथियों और उनके साथ ५००। बुद्धिमानों तथा २०००। पैदल सिपाहियों के ऊपर, अर्थात् १०००। रथों और ५०००। बुद्धिमानों तथा २००००। पैदल सिपाहियों के ऊपर जो सेनानायक होता था उसे सेनापति कहते थे। इस प्रकार के १। सेनापतियों के ऊपर नायक नाम का अधिकारी होता था [X १]। यह स्पष्ट है कि अधिकारियों तथा सैन्य-संचालकों की नियुक्ति वयसमय प्रणाली के अनुसार की जाती थी। पूरी पैदल सेना परमाध्यय नामक एक अधिकारी के नियंत्रण में रहती थी [II ३३]। उसका काम यह था कि वह विभिन्न सेनियों के सैनिकों को उनकी क्षमता के अनुसार अलग-अलग स्तरों में संगठित करे। उसे पैदल सेना (पल्लि) की विभिन्न प्रकार की परिस्थितियों में

सड़ने की प्रसिद्धा होती पड़ती थी जैसे (१) मीची तथा बलहमी भूमि पर, (२) जैची तथा घुण्ड भूमि पर, (३) दिन के समय (प्रकाश) (४) बाँब-जैच के घाव (कूटपुड) (५) संदकों में (अनूप मुड भूमि अथवा तब स्थित्या क्रियमाणम् पुडम्) (६) किन्हीं की जैची धीवारों पर से (आकाशपुड प्राकारादिर्ब आकृत्य क्रियमाणम् पुडम्) (७) दिन के समय तथा (८) रात्रि में [उपरोक्त] ।

अर्थशास्त्र : [V १] में विभिन्न अधिकारियों का जो पद-क्रम तथा उनके बैठन बताया गए हैं, उन पर हम यहाँ कुछ विस्तार से विचार करेंगे । सेना का सर्वोच्च पदाधिकारी सेनापति होता था । वह राज्य के उच्चतम पदाधिकारियों में से एक होता था और उसका पद राजा युवराज तथा प्रधान मंत्री के पद के बराबर होता था और उसे उन्हीं के बराबर ४८ पक्ष बैठन मिलता था । उसके नीचे नायक होते थे जिन्हें १२ पक्ष बैठन मिलता था । फिर मुख्य होते थे जिन्हें ८००० पक्ष मिलते थे और उनके बाद अध्यात होते थे जिन्हें ४००० पक्ष मिलते थे । मुख्य तथा अध्यात विम पर सेना के विभिन्न अंगों—पैदल युद्धसैन्य हाथी तथा रथ—का कार्य भार होता था वे कदाचित् प्रशासनाधिकारी होते थे अन्य-संभावना करने वाले अधिकारी नहीं जैसा कि ऊपर कहा गया है ।

हथियार भूनामी कुलातः पैदल सैनिकों के हथियारों का विस्तृत विवरण हमें अनेक स्रोतों से मिलता है । अरियन के वर्णन के अनुसार 'पैदल सैनिकों के पास एक अनुप होता है जो उनके ऊपर के बराबर ही लम्बा होता है । वे इसे जमीन पर टिकाकर अपने बाँधे पैर से दबा लेते हैं और प्रत्येक को बहुत पीछे खींचकर बाण चलाते हैं जो बाण वे इस्तेमाल करते हैं वे तीन गज से कुछ ही कम लम्बे होते हैं और भारतीय अनुपातों के अनुसार हुए तीर को कोई भी चीज नहीं रोक सकती—न बाण न कवच और यदि इससे भी सबकुछ कोई सुरक्षा का साधन होता हो तो वह भी नहीं । अपने बाँधे हाथ में वे दंड के अन्त्ये अंगों की डाल रखते हैं जो इन सैनिकों की चीड़ाई से कुछ ही कम चौड़ी होती है पर लम्बी लगभग उनकी बितनी ही होती है । कुछ सैनिकों के पास अनुप के बजाय भाँके होते हैं, पर एकबार तब सैनिकों के पास होती है जिसका प्यज चौड़ा होता है पर वह तीन बाधित है अधिक लम्बी नहीं होती और जब वे आगे-सागे लड़ते हैं (जिससे वे यथार्थतः लड़ने की कोशिस करते हैं) तो वे गरपुर गार करने के लिए इस एकबार की दोनों हाथों से चलाते हैं ।

कीटस्थ का कुलातः : कीटस्थ ने उस जमाने में इस्तेमाल होने वाले हथियारों तथा सैनिक यंत्रों का पूरा विवरण दिया है । कीटस्थ ने इनकी इनके उपयोग के अनुसार विभिन्न योजनाओं में बाँट दिया है, चाहे वह उपयोग रणतंत्र में हो

या बुधों के निर्माण अवस्था रखा के लिए हो या रात के गहरे तथा उमक पक्षि  
घाती कोंडों को मट्ट करने के लिए हो। इनमें से कुछ वन ऐसे होते थे जहाँ  
ही जमह रबे रहते थे (स्वितयमानि); कुछ वन ऐसे होते हैं जिन्हें एक जगह  
से दूसरी जगह में जाया जा सकता था (जलमयमानि) जैसे जल विभूत मुखार,  
महा आदि कुछ हथियार ऐसे होते थे जो मुझीले (हृत्मुत्तानि) होते थे जैसे  
घण्टि, माल, कल आदि। अनुपा को इस आमाण पर जलन जलन धोखा में  
विचारित किया गया था कि वे किस चीज के बने हैं बांस के या लकड़ी के या  
सीब के और उनकी अवस्था किस चीज की है और उनके बाधा की नाक माहें  
की हड्डी की या लकड़ी की है—लौहे की नोक काटने के लिए, हड्डी की नाक  
पकड़ने के लिए तथा लकड़ी की नोक बेचने के लिए होती थी। तीन प्रकार की  
लकड़ियों का भी उल्लेख किया गया है—कुछ की नोक टेढ़ी या घुमावदार लिये  
हुए होती थी, कुछ बहुत तेज बार की होती थी और कुछ लम्बी होती थी इनकी  
मुठ बड़े या बैसे के सीब या हाथी के दाँत या लकड़ी की बनी होती थी। कुछ  
और बारबार हथियार भी होते थे जैसे बरछ, फुहार आदि। कुछ वन पत्थर पत्थर  
के लिए होते थे। पूरे शरीर की रक्षा के लिए अनेक प्रकार के कवच भी होते थे  
जैसे कोहू-आम (पूरा कवच जिसके साव छिर की रक्षा के लिए एक टोपी भी होती  
थी) कोहू-आमिका (जिसमें टोपी नहीं होती थी) कोहू-क्यूठ (बिना आस्तीना  
का कवच) कोहू-कमल (जिसमें सीने तथा पीठ की रक्षा के लिए धातु की चादर  
लगी होती थी) सूत्र कंकट (धामे का घुना हुआ कवच) और जैसे हाथी मगर  
आदि के दाँत के बने हुए विभिन्न प्रकार के कवच फिर शरीर के विभिन्न  
भागों की रक्षा के लिए अलग-अलग साधन होते थे जैसे छिर की रक्षा के लिए  
मिरसमान, घने के बचाव के लिए कंडमान बाँहों की रक्षा के लिए कूर्पास सर  
पर पहनने के लिए हस्तिकर्ण और कमर के लिए पेटी; ये सब चीजें निपुण चित्त  
कार बनाते थे [II, १८]।

मूर्तिकला में लेखकों का चित्रण : मुताबी अवस्था भारतीय साहित्य में प्राचीन  
भारत के चरित्रान्तों के जो विवरण मिलते हैं उनकी पुष्टि प्राचीन भारत की  
उपलब्ध कलाकृतियों से होती है। भरतुल की मूर्तियों में मिलने वाले में आम तौर  
पर यह माना जाता है कि उनका निर्माण बौद्ध के समय से शुरू हो जाता है। एक  
पौरव ऐतिहासिक की समय पर पूरे आकार की एक मूर्ति है, जिसमें उठे उसी प्रकार  
हथियारों से सज्जित दिखाया गया है, जैसा कि मेघास्तमीय ने अपने विवरण  
में बताया है। परन्तु प्राचीन भारतीय हथियारों का सबसे सही विवरण कनिषम  
तथा कर्मुत्तन के पहली चतुर्थाई ईसवी के तीसरी के तथा अन्य रूपों की मूर्तियों  
के वर्णन में मिलता है। कनिषम ने लिखा है, "इसमें से एक में घेरे-जोरी का चित्रण



किया गया है जिसमें सैनिक कसे हुए कपड़े तथा एक पात्रामे घेसी चीख पहने हैं उनके पास हथियार के कम में लकड़ारों और बनप-बाण हैं। लकड़ारों छोटी तथा चीखी हैं और बूबड़ बेसी ही हैं वीसा कि मेगास्थनीज ने अपने वर्णन में किया है जिसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। उत्पीर्न बिर्षों में लगभग सभी वैदिक सैनिकों को बनप-बाण भिन्ने हुए दिखाया गया है और यह बात भी मेगास्थनीज के वर्णन से पूरी तरह मेल खाती है। मेगास्थनीज ने कहा है कि उनमें से कुछ बनप-बाण के बजाय भाँके इस्तेमाल करते थे। इन बात की पुष्टि भी पत्थर पर खुदे हुए एक बिच से हो जाती है जिसमें एक सिपाही का चित्रण इस कम में किया गया है कि वह डाल से अपने शरीर की रक्षा किन्ने हुए है और पृष्ठी के समानांतर एक भाँका किन्ने हुए है जिस वह फेंकने जा रहा है। पश्चिमी द्वार पर एक भारवाहक के हाथ में भी ऐसा ही भाँका दिखाया गया है। पत्थर पर खुदे हुए इन बिर्षों में आम तौर पर जो डाल दिखाई पड़े हैं वह लम्बी तथा पतली और ऊपर की तरह मोल है वीसा कि मेगास्थनीज ने भी अपने वर्णन में किया है। मेगास्थनीज के वर्णनानुसार बुद्धसवारों की डालें वैदिक सैनिकों की डालों से छोटी होती हैं। पत्थर पर खुदे हुए इन बिर्षों में हर जगह इस बात की भी पुष्टि होती है उनमें बुद्धसवारों की डालें हमेशा लगभग वा कुट लम्बी दिखाई पड़े हैं।

भैरसा के स्तूपों में इन हथियारों के बिच मिलते हैं बनप-बाण खड्ग तक बाट, तिखोनी मोकबाळा भाँका कुडर, फरसा भिणूक और वैदिक सैनिकों तथा बुद्धसवारों की डालें।

साँची के स्तूप में पत्थर पर खुदे हुए एक और बिच में राजकुमार सिद्धार्थ से सम्बन्धित एक प्रकलित कथा का चित्रण किया गया है, जिसमें उन्हें छोड़े को बेच जाना बाँका बाँक चलाते हुए दिखाया गया है। इस बिच के अग्रभाग में तीन घोड़ा सड़े हैं, जिनके हाथ में पाँविका के कम के समुप और रामन डग की छोटी छोटी सीधी लकड़ारें हैं जिनमें वे अपने बाहिने कपों पर रखे हैं अपने तर्कम रपने के लिए वे पैर पर एक-दूसरे की काटती हुई पैटियाँ भी बाँधे हैं। उनके साथ डाल तथा धुधुभी बजाने वाले हैं।

धोरोप में लड़ने वाले भारतीय सैनिक : यह बात ध्यान देने योग्य है कि भारतीय सेना के चीय की धूम बहुत प्राचीन काल से ही भारत की सीमाओं से बाहर भी बहुत दूर-दूर तक फैल चुकी है। बहुत पहले ४८ ई० पू० में ही जॉर्जिया की सेना में भिगने यूनान पर व्यापक किया जा एक टुकड़ी भारतीय सैनिकों की भी थी। वे मूर्ती बरत पहन कर लड़ते थे (कथाविन यह वही चीख थी जिसे

कौटिल्य ने सूत्र-कंकड़ कहा है जिसका उल्फण हम ऊपर कर आए है) और उनके अनुप बेंत के होते थे और बेंत के बाजों पर सादे की नाक छमी हुनी थीं ।

सैनिक जम्यास पैदल सैनिकों की नियमित रूप से कबायब करनी पड़ती थी और प्रशिक्षण प्राप्त करना पड़ता था । राजा स्वयं प्रतिदिन प्रातः काम मूर्धन्य दय के समय सैनिकों का निरीक्षण करता था और उनके सैनिक शिव-पंच देखता था (अस्त्रदर्शनम् कुर्यात् धिन्त्ययोग्या कुर्याः) [V १] ।

पैदल सेना के गुण : कौटिल्य ने बताया है कि एक जगह जिसमें पैदल सेना सेना के अन्य जगहों की अपेक्षा स्पष्ट होती है यह है कि पैदल सेना किसी भी प्रकार की भूमि पर (सर्वत्र) तथा हर प्रकार के मौसम में (सर्वकाल) सफल पारण करके (सर्वत्रगहनम्) सैनिक जम्यास (व्यापार) कर सकती है । बाई हाथी तथा रथ हर मौसम में या दसदस बासी जमीन पर लड़ी लड़ सकते [X, ४]

सैनिकों को प्रोत्साहन कौटिल्य ने बताया है कि रणभूमि में सैनिकों को प्रोत्साहित करने के लिए उनको निम्नलिखित प्रेरणादायक शब्दों से सम्बंधित किया जाना चाहिए । राजा को अपने सैनिकों के सम्मुख इस प्रकार भाषण देना चाहिए "मैं भी तुम्हारे ही समान बतनभोगी सेवक हूँ इस देश की सम्पदा का सुर हम सभी मिल कर भोगेंगे तुम्हें मेरे बताये हुए धनु को परास्त करना है (तुल्यवैतनोस्म भवद्भिस्तद्भु भोग्यमिदं राज्यं मयाभिहितं परोऽभिहस्तभ्यः) [Δ १] ।

उसके मंत्री तथा पुरोहित को सेना को इन शब्दों द्वारा प्रोत्साहित करना चाहिए "बिहों में कहा गया है कि उचित विधि के अनुसार यज्ञ करने से यज्ञ करने वाला जिस गति को प्राप्त हुआ है वही गति बीरों के भी भाम्य में होती है" (वेदेऽप्यनुमृते—समाप्तावशिक्तानां यज्ञानामवमृचयु ता ते गतिर्या धूराव इति) [X, १] ।

और इन शब्दों द्वारा 'स्वर्ग जाने की इच्छा रखने वाले ब्राह्मण यज्ञ तथा तपस्या द्वारा जहाँ तक पहुँच पाते हैं भयमुख में छड़त हुए अपने प्राणों की रक्षा देने वाला पुरबीर तत्काल उससे भी आगे पहुँच जाता है' (यान् यज्ञसंनिभूतपत्तय विप्रा स्वर्गपिण पात्रकयेऽथ गच्छति । शब्देन तान्प्यतिगच्छति धूरा, प्राणा तुमुञ्चु परित्यजन्तः ॥)

'इसके विपरीत यदि कोई सैनिक अपने स्वामी से प्राप्त होने वाले मरण-भोग के बदले में सड़ने से इन्कार करना है, तो वह अवश्य मरण का भागी होगा और उसकी मृत्यु पर विधिबद्ध उसकी अत्येष्टि किया भी नहीं की जाएगी (मन्व इत्यसिम्पस्य पूर्वं सुतस्तुतं वर्धकृतोत्तरीयम् । तत् तस्य या भूमरत्तं च गच्छेद, मर्तृपिण्डस्य हृदी न युक्ष्येत ॥)

ज्योतिषियों तथा राजा के अन्य अनुचरों को राजा की सेना की व्यूह रचना तथा उसके सैन्यबल की अपराधमयता का अनुमान करके सैनिकों में उत्साह का प्रसार करना चाहिए और शत्रु को भयभीत भी करना चाहिए (व्यूहसम्पदा कर्त्तामिकादिखास्य वर्णः धर्मसववसंयोगाख्यापनाभ्यास्वपणाञ्ज्वर्ययेत् परपक्षं मोक्षयेत्) ।

बारणों तथा राजसभा के कवियों को अपने वर्णनों में यह बताना चाहिए कि शूरवीर स्वयं पावे हैं और भी कायर होते हैं वे गरज की ध्वनि में धमकते हैं । ताड़ सैनिकों के वर्ण संध कुल हस्तों तथा चरित्र का भी अनुमान करना चाहिए (सूतनायका शूराणां स्वयंस्वयं जीवन्वा जातिस्तन्मनुजस्यैव वृत्तस्तत्र च योगानाम् वर्णयेत्) ।

युद्धचरों बहदुरों तथा ज्योतिषियों को अपनी सेना की क्षमताओं तथा शत्रु की विघ्नकटा की बोधना में विशिष्ट नहीं करना चाहिए (सजिक्मवर्धक मीर्यस्तिकाः स्वकर्मसिद्धिमसिद्धिं परेषां) ।

पुरस्कार अथ में इस बात का भी उल्लेख किया जाना चाहिए, कि प्रधान सेनापति सैनिकों को पुरस्कार तथा सम्मान प्रदान करता या विघ्नका निर्णय इन मापदण्डों पर किया जाता था कि किसने कितना महत्त्वपूर्ण काम कर दिखाया है या जिसने कितनी बड़ी विजय प्राप्त की है । शत्रु राजा का बंध करने वाले को १० पक्ष उसके सेनापति या युवराज की मारनेवाले को ५००० पक्ष बीरों में जो सबसे प्रमुख होता था उसे १००० पक्ष हाथियों या रत्नों की सेना के मुख्य को ५००० पक्ष युद्धसवारों के मुख्य को १००० पक्ष और पैदल सेना के मुख्य (पति-मुख्य) को १००० पक्ष पुरस्कार दिया जाता था शत्रु-सेना के किसी सैनिक का तिर काटकर लाने वाले को उसके बैटनका दुगुना धन और २ पक्ष पुरस्कार दिया जाता था जो कुछ वह स्वयं हस्तगत कर लेता था वह तो उच्चका होता ही था [X, १] ।

युद्धतार सेवा युद्ध-क्षेत्र में युद्धतार सेवा का विशेष काम कौटिल्य ने यह बताया है कि उसे सेना में अनुज्ञान की निगरानी करनी चाहिए, उसके मोर्चों की सम्झाई दी जाना चाहिए, उसके चारों की रक्षा करनी चाहिए, सबसे पहले आक्रमण उभी की करना चाहिए, और इसके अतिरिक्त सेना की दिशा को मोड़ने तथा शत्रु का पीछा करने आदि के काम भी उसी के हैं [X, ४] ।

अस्वाध्यायः : अश्वपुत की सेना में चौड़े इतना आवश्यक तथा महत्त्वपूर्ण अंग थे कि सेना के लिए चौड़े सरणी करने तथा उन्हें प्रशिक्षित करने के लिए सरकार था एक अलग विभाग था । अस्वाध्याय को चौड़ों की एक सूची रखनी पड़ती थी उन्हीं उनही गलत बान्धु, रथ तथा आकार आदि के अनुसार अलग-अलग

पेचियों में बाँटना पड़ता था। उनके लिए अस्तबसों का प्रबन्ध करना पड़ता था। उनकी आहार नियत करना पड़ता था और उन्हें निकालने तथा प्रतिष्ठित करने और पशु-चिकित्सकों द्वारा उनके रोगों की चिकित्सा का प्रबन्ध करना पड़ता था।

घोड़ों की भरती अश्वगुप्त की युद्धसभार सेना इतनी बहुसंख्यक थी कि उसके लिए कई जगहों से घोड़े लाने पड़ते थे। इन स्थानों के नाम कौटिल्य ने इस प्रकार बताये हैं [II ३०] कम्बोज (अफ़ग़ानिस्तान जिसे युबाङ्ग आज़ ने काबोफू कहा है) सिंधु (सिन्ध) आरट्ट (पंजाब) यनामु (अरब) बास्तीक (बख़्श) सोबीर (सिन्ध अथवा सिन्धु नदी का डेल्टा) पापेय और तैतम (जिनकी पहचान अभी तक नहीं हो पाई है।) महाभारत में आर्य और पर 'पश्चिमी घोड़ों' को बहुत मूल्यवान् बताया गया है पर सबसे अधिक उल्लेख सिंधु तथा कम्बोज के घोड़ों का मिलता है [महाभारत III ७१ ७२]। बास्तीक के घोड़े भी इतने ही प्रख्यात थे [महाभारत I २२१ ५१ V ८६ ६ आदि]।

घोड़ों के रहने का प्रबन्ध : वैसे कि कौटिल्य ने बताया है घोड़ों की समताओं का अनुमान उनके शरीर के कुछ भागों को नापकर लगाया जाता था। उनके लिए अस्तबस सफ़ाई तथा स्वास्थ्य के नियमों का पूरी तरह ध्यान रखकर बनाए जाते थे। इसके बारे में भी कठोर नियम बना दिए गए थे कि किन परिस्थितियों में घोड़ों को क्या खाने को दिया जाए।

प्रसिद्ध सेना के घोड़ों की रणक्षेत्र की आवश्यकताओं के अनुसार नियमित रूप से विशेष प्रशिक्षण दिया जाता था।

पशु चिकित्सक : यदि घोड़ों की कोई रोग हो जाए, तो अन्वाध्यक्ष को उसकी सूचना देनी पड़ती थी। पशु-चिकित्सकों को केवल इन रोगों की चिकित्सा ही नहीं करनी पड़ती थी बल्कि इस बात का भी ध्यान रखना पड़ता था कि पशुओं का शारीरिक विकास सुचारु रूप से हो। चिकित्सा में कोई त्रुटि होने पर दंड दिया जाता था [II ३०]।

अश्व-सेना की साज-सज्जा का भूगामी विवरण : अरियन ने अश्व-सेना की साज-सज्जा का वर्णन इन शब्दों में किया है (ईडिका अध्याय १४) "भारत बासी अपने घोड़ों पर न जीन कसते हैं न उनके मुँह में समान कपाते हैं। वे बाड़े के मुँह पर बँस के कच्चे जमड़े का सिंहा हुआ एक मोटा टुकड़ा बाँध देते हैं जिसमें भीतर की ओर साँड़ या पीतल के काँटे निकलते होते हैं जो बहुत मुकीले नहीं होते। बाड़े के मुँह में सोहे का एक मुकीला भाँके वैसे टुकड़ा पड़ा रहता है जिसमें बाँध के दोनों सिरे बाँध दिए जाते हैं।" परन्तु यह विवरण मेगास्थनीज के उस विवरण का जड़न करता है (मैकबिडिल अंश ५) जिसमें बताया गया है कि भारतवासी घोड़ों को बघ में रखने के लिए और उनकी चाल को नियमित

करने तथा उनकी बिछा ठीक रखने के लिए बगाम तथा बाय का इस्तेमाल करते हैं। परन्तु वे म तो मूँह पर कौटिल्य जमड़े का टकड़ा बाँधकर। उनकी जीम को बिपास्त करते हैं न उनके ठाणू को पीड़ा पहुँचाते हैं। मेगास्थनीस के इस कथन की पुष्टि सीसी में बनी हुई मूर्तियों से भी होती है जिनमें दिखाया गया है कि उस समय पोड़ो के मूँह के साथ किमन सुन्दर होते थे।

युद्ध के रथ : ये सेना का महत्त्वपूर्ण अंग माने जाते थे। कौटिल्य ने युद्ध में उनके कामों का वर्णन इन शब्दों में किया है [X ४] 'सेना की रक्षा करना धनु की सेना के चारों ओरों द्वारा किए जाने वाले आक्रमण को निष्फल बनाना युद्ध के समय धनु के मोर्चों पर कब्जा करना तथा आवश्यकता पड़ने पर अपनी मोर्चा छान्ने में सहायता देना यदि कोई व्यूह टूट जाए, तो उसे फिर से स्थापित करना और धनु के समुचित व्यूह की रंग करना अपनी मध्यता तथा युद्धबोध द्वारा धनु का मयनीत करना तथा उसके हृदय में आतक बिठा देना' (स्वयस रक्षा अनुसंगजप्रतिषेध सप्रामे प्रहर्ष मोक्षार्थ विप्रसन्नानाम् अनिप्रसन्नानां आसनम् भीमार्थम भीमघोषधेयति रथकमर्षि)।

रथाध्यक्ष : जैसा कि मेगास्थनीस ने लिखा है युद्ध-प्रशासन में एक अत्यन्त विभाग होना था जिसका काम होता था सेना के एक अंग के रूप में रथों को हरे समय कार्य-सम रखना। इस विभाग के अध्यक्ष को रथाध्यक्ष कहते थे जिसके कामों का वर्णन कौटिल्य ने विस्तारपूर्वक किया है [II ३३]। उसका मुख्य काम यह था कि उस समय को सतत विभिन्न प्रकार के रथ काम में लाते थे उनका प्रामाणिक आकार के अनुसार निर्माण करवाना। युद्ध के रथ (तांत्रात्मिक अथवा पशुपताभिधानिक) इस मुख्य (क्याचित् ७२ फुट के बराबर) ऊँचे और ९ हाथ अर्धान् नी फुट चौड़े होते थे। रथ बनाने वालों को पर्याप्त पारिभाषिक दिया जाता था। इनके बाद अध्यक्ष का दूसरा महत्त्वपूर्ण काम यह था कि वह रथ पर लड़नेवाले सैनिकों को ठीक रखने पम्बर तथा नाके करने रथ बलाने पोड़ों को बग में रखन और बाय वीर पर रथ पर से लड़ने का उचित प्रशिक्षण देकर उनकी रथ-समय का उचित स्तर पर रखे [II ३३]।

रात्रा युद्ध की पराजय : मित्रवर की सेना का मुकाबला करते समय राजा युद्ध ने मरण अपने रथ पर मरोसा किया था। बटिपस द्वारा उसके रथों का निम्नलिखित वर्णन [VIII १४] अत्यन्त रोचक है "प्रत्येक रथ में चार पोड़े जुड़ होते थे और उन पर ९ आश्वी होते थे जिनमें से दो आश्व निचे रहते थे दो रथ ने दोनों आश्व वीर बलाने के लिए सैनान रहते थे और दो रथ भी बलाने से और हथियारों में लड़ने भी थे क्योंकि जब आगने-मामने लड़ाई होने लगती थी तब वे रथों की बाग छोड़कर पग पर भागे घरमाने लगते थे।

कौटिल्य ने यह भी कहा है [II, ३३] कि रथ पर से लड़ने वाले सैनिकों को तीर चलाने की कला में (इस) निपुण होना चाहिए और गया तथा मुद्गर धरने (अस्त्रग्रहण) में भी।

आये धनकर कौटिल्य सिद्धांत है परन्तु उस दिन रथ किसी भी काम न आ सके क्योंकि वर्षा होने के कारण जमीन पर फिसलन हो गई थी और उस पर चढ़ नहीं चल सकने के और रथ के पहिये बार-बार कीचड़ में फँस जाने के और अपने अत्यधिक भार के कारण आगे नहीं बढ़ सकते थे।

इस प्रकार पुरु-राज की पराजय का कारण यह था कि रथभूमि रथ के चलने के लिए अनुपयुक्त थी। कौटिल्य के मतानुसार रथ सबसे उपयोगी उस भूमि पर सिद्ध हो सकते हैं जो ऊँची-नीची न हो और जहाँ कीचड़ न हो और जहाँ रथों को मोड़ने के लिए काफी जगह हो (तोषाघयाधजपतो निज्जलातिनी केदारहीमा ध्यात्तल्ल-सत्तवेति रथानामतिशायः) [X ४]। वह समय भी रथों के लिए उपयुक्त नहीं था क्योंकि रथ सबसे अच्छी तरह सूर्य मीसम में काम कर सकते हैं (अस्पर्धपञ्चक वर्धति भरघातम्) [IX १]। महाभारत में भी बताया गया है कि रथों के लिए कौन-सा स्थान तथा समय सबसे उपयुक्त होता है (अपञ्च-गर्तं पठिता रथभूमिः प्रशस्यते) [आतिथ २२१४]।

रथों का व्यूह यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि कौटिल्य [X ५] ने लिखा है कि रथों के एक व्यूह में आठों का इस अंग की इकाई होता था ४५ रथ होते थे जिनमें से प्रत्येक को पाँच घोड़े खींचते थे। इस प्रकार रथों के अतिरिक्त सेना के इस अंग के प्रत्येक विभाग में २२५ घोड़े ६७५ सैनिक और ६७५ अस्त्र-अनुषर (पादपीप) होते थे।

यह भी हिसाब लगाया गया है कि हर घोड़े का मुकाबला करने के लिए (प्रति घुड) तीन पैदल सिपाही और हर रथ का मुकाबला करने के लिए १५ सैनिक होने चाहिए। इसके अतिरिक्त एक हाथी का मुकाबला पाँच घोड़ों से करना चाहिए और चोड़े हाथी तथा रथ की बेधभास के लिए १५ सेवकों की आवश्यकता होती थी [X ५]।

मूर्तिपूजा में रथों का चित्रण सौची में परस्पर परजुबी हुई मूर्तियों में प्राचीन भारतीय रथों का चित्रण मिलता है जिसमें बताया गया है कि इन रथों में दो पहिये होते थे और हर पहिये में १६ १६ आटे होते थे रथ में बैठने के लिए बस्य पीसा एक स्थान बना हुआ था जो पीछे से जुड़ता था इस रथ को दो घोड़े खींचते थे। रथ के बीच में एक सम्मी-सी बम्बी जैसी हुन्नी थी जो घोड़ों की गरदन के पास पहुँच कर ऊपर की ओर को मोड़ा-सा बूझ जाती थी इसमें दोनों ओर दो छोटे-छोटे लकड़ी के लम्बे टुकड़े और लगे होते थे जो रथ की चौड़ाई

एक ही बातें वे पर इसमें जुका नहीं होता था। रथ में मुक्ति से वो आरामियों के एक साथ बड़े होने या बैठने की अपेक्षा होती थी। परन्तु इन मूर्तियों में विभिन्न रथ आरामिक कार्यों के लिए होते थे। सभी की मूर्तियों में बाजूक भी दिखाई गई है जो कड़े बन्धों का एक टुकड़ा होता था पर उसमें एक छोटी-सी लकड़ी की मूठ भी लगी होती थी।

पुत्र के हाथी : हाथियों की सेना का बहुत महत्व था क्योंकि कीटिश्य के कथनानुसार राजाओं की विजय और शत्रु की सेना का संहार उन्हीं पर निर्भर रहता था (हस्तिप्रधानो विजयो राज्ञाम्) [II २] हस्तिप्रधानो हि पराजितश्च इति [VII २] मेगास्थनीज के इस उल्लेख में भी कि 'हाथी लड़ाई में विजय अथवा पराजय का निर्णय करते थे' इसी सत्य की प्रतिष्ठा निश्चयी है।

हाथियों के पुत्र : कीटिश्य ने हाथियों के विशेष कार्यों का उल्लेख इन शब्दों में किया है "सेना के आगे-आगे चलना (पुरोयामन्) ऐसे स्थानों में जाना जहाँ सड़कें न हों (अवृत्तमार्ग) या आशय लेने का कोई स्थान न हो या जहाँ नदियों पर बाट न हों। सेना के पार्श्व की रक्षा करना नदियाँ पार करना ऐसे स्थानों में बसना जहाँ जमीन क्षादियों अथवा झाड़-जंगल के कारण घुसना समझ न हो। शत्रु की सेना के सुगठित मोर्चे (सम्बाध) को चीरकर आगे बढ़ जाना शत्रु के पड़ाव में आग लगाना और यदि अपने पड़ाव में आग लग जाए तो उसे घुसाना। सेना के अन्य अंगों की सहायता के बिना विजय प्राप्त करना (एकाग्रविजय) अपनी सेना का मोर्चा नम हो जाने पर उसे फिर स्थापित करना और शत्रु के मोर्चे को तोड़ डालना (विभ्रसम्पानम् अमिस्रजेवनम्) संकट से रक्षा करना (व्यसने प्राचम्) शत्रु की सेनाओं को रोह डालना (अभिबल) शत्रु की सेना में आतंक पैदा करना (विभीषिका) भय उत्पन्न करना (प्रासनम्) शत्रु की सेना को बचने में रोहवार बनाना (और्वर्षम्-सेव्यमहत्त्वम्) शत्रु के सैनिकों को पकड़ना (पहन्) तथा अपने सैनिकों को छुड़ाना (मोक्षनम्) दुर्ग की दीवारों (भाल) घाटकों (हार) तथा उन पर बनी हुई बुनियातों (अट्टालक) तथा कक्षा को नष्ट करना और राजकोष के जाना [३. ४]। एक दूसरे प्रकार से [II २] कीटिश्य ने यह बताया है कि विशालकाय (अतिप्रमाण शरीरः) होने के कारण हाथी अन्य विध्वंसक कार्यों के अतिरिक्त शत्रु के मोर्चे को तोड़ सकते हैं (पराजित्क व्यूहप्रवर्धनम्)। उसके निकट (दुर्ग) तथा सैनिक पड़ावों (सम्बाधार) को नष्ट कर सकते हैं।

उपयुक्त समय : हाथियों से काम लेने के लिए यहाँ के यौगम को छोड़कर वर्ष के और सभी यौगम उपयुक्त हैं क्योंकि यमियों में "हाथियों के पसीना बहुत निरक्षर है जिससे उनकी शाल को हाथि पर्वण्णी है और उन्हें कष्ट-रोग

(कृषिजो) हो जाता है। जब ये पानी में स्नान नहीं कर पाते और उन्हें पीन हो बहुत-सा पानी नहीं मिलता तो उनकी अम्बर की गरमी ( अंतरिक्षाः ) उन्हें पीन बनाती रहती है और वे मरे जाते हैं ( सम्पीयन्ति ) [IX १]। इसलिए हाथियों को ऐसे ही देश में लड़ने के लिए ले जाया चाहिए जहाँ पानी बहुत हो ( प्रभूतोऽके देशे ) और जब वर्षा हो रही हो ( वर्षति )।

उपयुक्त स्नान : हाथिया से काम लेने के लिए उपयुक्त स्थान गौटम्य ने ये बताया है [X, ४] "ऐसी पहाड़ियाँ जिन पर चढ़ना मजबूर हो (सम्पन्न) नीची इलाके ( निम्नविषया ) और ऐसी ऊँची-नीची भूमि जिन पर ऐसे पेट हो जो विराण जा सकते हों जिस पर लेस पीये हों जो उखाड़े जा सकते हो और जिन पर बहुत कीचड़ न हो और बहुत लड़ू तथा गड़े न हों (बर्धनगुम्बरम-हीन) वह भूमि भी जहाँ बहुत घूस ( बांसु ) कीचड़ ( कर्बस ) दलदल और घाम-धूस हो तथा जहाँ बड़े-बड़े वृक्षों की छाँटों से मार्ग न बँटा हो।

हस्तमध्यक [ II ११ १२ ] सेना के एक अंग के रूप में हाथियों के प्रशिक्षण तथा कार्यक्षमता की देखभाल का काम बद्ध प्रशासन की एक विशेष शाखा के हाथ में था जैसा कि मेगास्थनीज ने लिखा है। इस विभाग का प्रधान हस्तमध्यक नामक एक पदाधिकारी होता था जिसकी सहायता के लिए और बहुत-से छोटे पदाधिकारी होने थे जो राज्य के लिए हाथियों की पर्याप्त सेना तैयार करने के लिए आवश्यक विभिन्न काम करते थे।

हाथियों को प्राप्त करना : सबसे पहला काम तो विभिन्न स्थानों से हाथियों को प्राप्त करने और जंगली हाथियों को विवेकबद्धों तथा सरलित सेना में रखने का काम था। हाथी इन जगहों से लाए जाते थे (१) कस्मि (२) अंन (३) प्राण्य (पूर्वी भारत) (४) जेरि (५) कन्नडा (६) बरबान (७) अपरान्त ( पश्चिमी भारत ) (८) मुराष्ट्र तथा (९) पाञ्चनद (पंजाब)।

नायकनायक [II २] हाथियों के जंगल अर्बन् संरक्षित वन नायकनायक नामक एक पदाधिकारी के नियंत्रण में रहने थे जिसके साथ नायकनायक नामक अनेक सहायक अधिकारी होते थे, जो इस जंगल में घूमने तथा उनसे निकलने के मार्गों पर कड़ी निगरानी रखते थे।

हाथियों को साबने वाले फिर जंगली हाथियों को पकड़ने तथा उन्हें प्रशिक्षित करने का काम होता था जिसके लिए अलग से ऐसे लीयों की आवश्यकता होती थी, जिन्हें हम कठिन काम का विशेष ज्ञान तथा अनुभव हो जैसे हाथियों के महाबल तथा उनकी सज्जाई आदि करने वाले ( हस्तिपक ) सीमा के पहरेदार ( सैनिक ) जंगल के रतवाले ( वन-वर्क ) हाथियों के पैरों में छंदा डालने वाले ( शव-पारिक ) और हाथियों को साबने वाले ( मनीषक ) [II २]।



या लोग हाथियों को खाते थे उन्हें सबसे पहला महत्त्वपूर्ण काम यह करना पड़ता था कि वे उन हाथियों में अंतर कर जो पकड़ने योग्य हों वे और जो राग बजवा किसी अन्य बात से बारण पकड़ने के लायक न हों जैसे धन्वायु (बिस्व) रोम (ध्यामित) यमोवस्या या बहुत छोटे-छोटे बुध-पीठे बन्धो का होना (यमिनी तथा येनुका) और हाँवा का छोटा होना (मूड) या बिस्कुल ही न होना (मल्लु) [II, ३१] ।

हाथियों को पकड़ना : छोटा हाथिया को पकड़ने के लिए (हस्तिग्रहणी) हस्तिना को इस्तेमाक किया जाता था । हाथियों का पना उनके मल-मूत्र उनके पद-नि हो उनमें बिधाय करने के स्थानों या चक्के समय मार्ग में उनके द्वारा की गई शक्ति द्वारा (कृत्स्नग्रीहमेक) लगाया जाता था । मेगास्थनीज ने हाथियों को पकड़ने के तरीके का वर्णन करते हुए बताया है, कि कुछ हस्तिना एक घेरे में बंध कर ही जाती थी और उसके चारों ओर एक गहरी काई खोद दी जाती थी जगती हाथी एक पुरुष पर से होकर इस घेरे में पहुँच जाने से और फिर वह पुरुष हटा लिया जाता था ।

हाथियों के रहन-सहन तथा काम-याग की व्यवस्था पीछे, हाथियों के रहने की व्यवस्था करने का काम होता था जिसके लिए कुछ विशेष कर्मचारियों की आवश्यकता होती थी जिनमें से कुछ कर्मचारी वे थे चिकित्सक, हाथियों को चराने वाला (अबोकस्य) साधारण महावत (आरौहक) या कुशल महावत (आबीरक) छपाई आदि करने वाला (हस्तिपक) शिक (जीपचारिक) साना पकाने वाला (विधायाचक) घास देने वाला (यार्सिक) रखवाला (कबीरसक) और रात की बेल आल कराने वाले (जीपशायिक) [II ३२] । ये पाँच हाथियों के आहार तथा उनकी दैनिक आवश्यकताएँ (जैसे स्नान प्रदिशन तथा विधाय) का निवृत्त करते थे ।

सैन्य-प्रशिक्षण : जैसे राज्य के हाथियों की विशेष रूप से युद्ध में इस्तेमाल किए जाने वाले हाथियों (साम्राह्य) को उचित प्रशिक्षण देने का महत्त्वपूर्ण काम था जिसके लिए नियमित कर से नियुक्त सहायकों की आवश्यकता पड़ती थी । उन्हें युद्ध के लिए आवश्यक सभी विषयों (साम्राह्य) की प्रशिक्षण देनी पड़ती थी जैसे उठना बुझना या बूझना (अपस्थाय) मुड़ना (सर्कलन) मारना या पकड़ना (पदाचय) दूसरे हाथियों से सड़ना (हस्तिमुड) और किसी तथा गहरों पर आक्रमण करना (नागरायपम्) [II ३१-३२] ।

हाथी पर चढ़ने वाले : मेगास्थनीज के अनुसार [ग्रंथ XXXV] युद्ध का हाथी "अर्सी मोगी पीन" पर या पीठ पर बसे हुए हीरे में तीन सैनिकों को लेकर चलता है जिनमें से दो दाया तरफ से तीर चलाते हैं और तीसरा पीछे से । हाथी

पर एक चौपा आदमी भी होता है जिसके हाथ में एक भंकरा होता है जिसकी गता यता में वह हाथी का उसी प्रकार बल में रक्ता है जैसे जहाज का संचालक दिना बलमने वाले यन्त्र की सहायता से जहाज को सही मार्ग पर रक्ता है।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि युद्ध के लिए अच्छी मनुष्य के हाथी तैयार करने में अनेक प्रकार के बर्माचारियों का सहयोग आवश्यक होता था। चंद्रगुप्त के साम्राज्य के समयमें ही हाथियों का योगदान कुछ कम नहीं था।

**हाथियों का पोषण-स्वतः**—पूर्वी भारत ऊपर हमने भाग की जिन सम कालीन सनाओं का उल्लेख किया है उसकी तुलना करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि चंद्रगुप्त की सेना हाथियों की दृष्टि से अन्य सनाओं के मुकाबले में बहुत आगे बढ़ी हुई थी। प्राचीन भारत के सभी कृतान्त में इस बात का प्रमाण मिलता है कि हाथियों को पकड़ने तथा उन्हें प्रशिक्षित करने में पूर्वी भारत अर्थात् मगध सबसे आगे बढ़ा हुआ था (रीड ईविन्स बुद्धिस्ट इण्डिया पृष्ठ २६६)। इस प्रसंग में हम यह भी बता दें कि कौटिल्य ने प्राच्य (पूर्व) के बारे में यह कह है कि वहाँ से सबसे अच्छे हाथी मिलते थे और महाभारत में भी एक जगह [XII १०१] विभिन्न जातियों के लोगों के रण-कील की तुलना करते हुए हाथियों की मझाई में प्राच्यों की अपटना का उल्लेख किया गया है। इसके साथ ही हम उस काल की भी तुलना कर सकते हैं, जिसे मेगास्थनीज का बताया जाता है (एशेंट इंडिया पृष्ठ ११८) कि सारे देश में सब बड़े हाथी प्रेषित हाथी होते थे अर्थात् प्राचियाई देश के अर्थात् पूरब के भागों के देश के।

**नौ-सेना विभाग :** नावध्यक्ष हम अब सेना के सभी मुख्य अंगों पर विचार कर चुके हैं और नौ-सेना विभाग का उल्लेख करके हम इस विवरण को समाप्त करेंगे। मेगास्थनीज के अनुसार यह चंद्रगुप्त के युद्ध-कार्यक्रम का एक विभाग था। मौर्यों की नौ-सेना के बारे में बहुत कम सामग्री मिलती है। कौटिल्य के अनुसार, नौ-सेना विभाग नावध्यक्ष नामक एक अधिकारी के अधीन था जिसे युद्ध से सम्बन्धित सभी समस्याओं पर विचार करना पड़ता था। युद्ध में जहाजों के प्रयोग का उल्लेख सबसे पहले सिकन्दर के अभियानों के सिद्धांतों में मिलता है जिसने अपनी नावों के बड़े की सहायता से सिन्धु नदी तथा मेरुम नदी को पार किया था (बी ए० स्मिथ अर्ली हिस्ट्री ऑफ इंडिया पृष्ठ ५५)। अरियन ने (मेरी पुस्तक हिस्ट्री ऑफ इंडियन सिपिय पृष्ठ १०२) जार्जोई नामक जाति के लोगों द्वारा जहाजी-बाटों का निर्माण करने ३० पतवारों से जमाई जाने वाली नावें तथा माछ डोने वाले जहाज बनाने का उल्लेख किया है। जहाजों के निर्माण पर राज्य का एकाधिकार था परन्तु जहाज लोगों को किराए पर दिए जाते थे [भाग XV ४६]। कौटिल्य ने भी इस बात की पुष्टि की है [II २८]। नौ-

सना वा यह कलाप्य वा कि जो अश्वमेध कूटमार करते हों ( त्रिभुक्का ) या जो किसी राजा के देश से आ रहे हों ( अभिषिक्तवातिगाः ) उनका पीछा करने वह उन्हें मार कर दें । गौ-सेना विभाग वास्तव में महियों पर तथा समुद्र तट पर पहुँचे वा प्रवेश करता था । बाटो पर जिसकी भी खुशी बसुन की जाती थी बंदरगाहों का सारा मूल्य और तट-कर बसा करने का काम भी गौ-सेना विभाग के सुपुर्ने वा परम्पु उन्हें उन लोगों को मिश्रित करने देना पड़ता था 'जो सेना के लिए कोई चीज ( रसद या आहार ) ले जा रहे हो [II २८] । इस प्रकार लोगों की अश्वमेध इतनी ज्यादा लज्जा के लिए नहीं पत्नी थी जिसकी कि अश्व-मार्ग द्वारा सेना के लिए इन्विषार तथा सामान ले जाने के लिए ।

नीति साम्राज्य के विभुक्त सैन्य सामर्थ्य का उपयोग उस नीति के अनुसार किया जाता था जिसका उद्देश्य हो उद्देश्यों की पूर्ति करना होता था (१) स्वयं और (२) व्यापार अथवा प्रवास स्वयं का अर्थ वा व्यापार द्वारा प्राप्त होने वाले फल का सुरक्षा के बाधावरण में उपयोग करना [ VI २ ] ।

ये दो मुख्य ६ बुद्धी नीति पर निर्भर थे जिसे धर्मपुष्पम् कहते थे । इस नीति के ६ अंश ये थे (१) संवि अथवा पचसंवि अथवा अथवा आस्वाहनो द्वारा राज्यो के बीच समझौता (२) विग्रह अथवा अथवा, अथवा युद्ध (३) आत्मन अथवा अपसन्न अथवा तटस्थता (४) धाम अथवा अथवा अथवा युद्ध की तैयारियों के लिए सामग्री एकत्रित करने के लिए अभियान (५) संघ अथवा पराजितम् अथवा वन या बंदी लेकर अधिक शक्तिवाली राजा की तरफ सेना (६) ईश्वरी अथवा अथवा एक के साथ शांति और युद्ध के साथ युद्ध करना (VII १) ।

इस ६-बुद्धी नीति [ प्राप्त होने वाले फलों के अनुसार राज्य की दशा मित्रिणिगिनि तीन दशाओं में से कोई भी हो सकती थी अथवा अथवा पतन स्वयम् अथवा ज्यों का त्यों रहना और बुद्धि अथवा अथवा-पुनना ।

राज्य की दशा इस पर निर्भर करती थी कि उसकी नीति अच्छी (तय) है या बुरी (अपतय) और इस बात पर भी कि उसका भाग्य (ईश्वर) अच्छा (अय) है या बुरा (अपतय) ।

आदर्श राजा वही है जो बुद्धि की अथवा अपने राज्य का विस्तार बढ़ाने को अपना लक्ष्य बनाए और उसे एक विजेता के रूप में (विजिगिषु) इस कष्ट की पूरा करना चाहिए ।

उपनी सटमता (सिद्धि) उसकी शक्ति पर निर्भर रहती थी ।

शक्ति तीन प्रकार की बताई गई है (१) बुद्धिमत्ता (अथवा) तथा अथवा परामर्श (अथवा) (२) धाम सामग्री तथा सेवा (कोशधामम् प्रभु-वर्ति) और (३) संघ ( अथवा अथवा अथवा ) [VI १] ।

इस ६-सूत्री नीति का लागू करने का क्षय वे राज्य होते वे जिनके साथ वह राजा मित्रता अपना सन्धुता के सम्बन्ध स्थापित करता या (पाङ्गुच्यस्थ प्रकृति मण्डलं योक्ति) [VI २] ।

इन वैदेशिक सम्बन्धों में अंतर इस प्रकार किया गया है

पड़ोसी राजा को राजु मानना चाहिए । उसका पड़ोसी राजा मित्र है । अन्य साक्यों राजु की मित्र होंगी या उस राजा की अपात्र विजेता की मित्र होंगी या फिर वे राजु के मित्रों की मित्र होंगी ।

विजेता और उसके राजु के बीच में एक मध्यम राजा भी हो सकता है, जो दोनों में से किसी भी पक्ष की सहायता कर सकता है ।

और अंत में तटस्थ (उदासीन) राजा होता है ।

विजय की योजना यह बताई गई है कि सबसे पहले राजु के राज्य पर अधिकार करना चाहिए, फिर मध्यम और उदासीन राजा के राज्य पर [XIII ४] ।

यह विजय का पहला तरीका है (एवं प्रथमो मार्गः पुत्रिवीम् जेतुम्) ।

यदि कोई मध्यम या उदासीन राज्य न हो और विजेता को सीधे-सीधे राजु से ही निबटना पड़े तो उसे पहले राजु के सन्धियों को और फिर उसकी सेना को अपनी ओर निकालें और उसके बाद उसके राजकोष पर अधिकार करने के लिए अपनी उच्चतर शक्ति का उपयोग करके विजय प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए (अतिप्रकृतिं अमलयासीनं साधयेत् तत उत्तराः प्रकृतिं कोपदम्भादिका) । यह विजय प्राप्त करने का दूसरा तरीका है ।

यदि विजय प्राप्त करने के लिए राज्यों का कोई मध्यम न हो तो उसे अपने राजु द्वारा अपने मित्र पर या अपने मित्र द्वारा राजु पर विजय प्राप्त करनी चाहिए उसे उन दोनों के बीच युद्ध करा देना चाहिए, ताकि वे दोनों कमजोर हो जाएँ और वे दोनों पर विजय प्राप्त कर सके । यह विजय प्राप्त करने का तीसरा तरीका है ।

या फिर वह अपने मित्र की सहायता से अपने राजु पर विजय प्राप्त कर सकता है, और इस प्रकार अपनी शक्ति को दुगुना करके वह दूसरे राजा पर विजय प्राप्त कर सकता है और जब शक्ति तिगुनी हो जाए, तो वह तीसरे राजा पर विजय प्राप्त कर सकता है । यह विजय प्राप्त करने का चौथा तरीका है ।

उसे बर्ग के अनुसार शासन करके विजेता (जित्वा च पुत्रिवीम्) जैसे आचरण का परिचय देना चाहिए (XIII ४) ।

उसे स्वयं अपने पुर्णों द्वारा पराजित राजा के शेषों को हक सेना चाहिए और अच्छे प्रशासन द्वारा रिजामर्ते (अनग्रह) नरके घूट (नष्टिहार) रेकट,

दान तथा मान देकर अपने गुणों में वृद्धि करनी चाहिए और इस प्रकार अपनी नई प्रजा के मुख्य तथा अस्वास्थ्य में योग देना चाहिए (प्रवृत्तिप्रमहितिनि मनु कर्तव्य) । बिबेका को इस बात का भी परामर्श दिया गया है कि उस विहित लोगो के रीति-रिवाज (शील) उन्मत्त पहनावा (वेष्ट) भाषा तथा कानून (आचार) बर्णन करना चाहिए । उनके उनके धर्म सामाजिक व्यवस्थाओं तथा उत्सवों का सम्मान करना चाहिए । उसके मुख्यधर्म (सत्त्विक) विभिन्न स्वाभाव (वैद्य) पाँचों (प्राण) जातियों तथा सबों के लोगो के नेताओं का इस बात की सूचना देना कि शत्रु ने देश को क्या हुआ (अपचार) पहुँचाई है, और स्वयं वह राजा कितना क्षतिग्रस्त है उसके हृदय में प्रजा के लिए कितना प्रेम है और वह उनके अस्वास्थ्य के लिए क्या उपाय कर रहा है । अपनी नई प्रजा के देवताओं का सम्मान करना तथा उनके विद्वानों (विद्याधुर) वक्ताओं (वाक्साधुर) तथा धर्मनियामकों (धर्मधुर) को भूमि तथा अन्य वस्तुएँ दान देकर तथा उनके घर मान करके उन्हें पुरस्कृत करना विवेका राजा का कर्तव्य है । उसे अपनी विजय के उपलक्ष्य में सब बंदियों को मुक्त कर देना चाहिए (सर्वबंधनमोक्षणम्) और बंधावा निराधिनो तथा रोपियों के भरण-पोषण की व्यवस्था की भीषण करनी चाहिए । उसे अश्वमेध (कुछाई छ सितम्बर तक) के दौरान में बाले महीने के लिए, वर्षमासी के समय चार दिन के लिए, और राजा के अन्तर्द्वार के मन्त्र में और देश-विजय के लक्षण में एक-एक दिन के लिए (टीकाकार ने राज-मन्त्र तथा देश-मन्त्र मन्त्रों की व्याख्या इसी प्रकार की है) पशु-बल निषिद्ध कर देना चाहिए । अन्तिम बात यह कि नए देश में उत्पात तथा असंतोष के सभी बीजों का दमन करके उसे अपनी सुरक्षा तथा अपनी विजय को सुनिश्चित बनाने के लिए सभी आवश्यक उपाय करने चाहिए [XII ५] ।

अश्वमेध यज्ञ और सग्राह के लिए साम्राज्य-निर्माण के इच्छित अश्वमेध यज्ञों तथा सिद्धांतों की कल्पना भी गूढ़ी की जा सकती है । उसके विस्तृत साम्राज्य में विभिन्न सामाजिक पद्धतियों तथा वर्णों को मानने वाला अनेक लोक-समुदाय बात करते हैं । उसमें उत्तरी-पश्चिमी तिर पर विदेशी अर्थात् यौव जाति के लोग रहते हैं और साम्राज्य के शेष भाग में भी स्वयं भारतवर्ष में अनेक जातियाँ रहती हैं जो सामाजिक विज्ञान की विभिन्न व्यवस्थाओं में हैं—आदिवासियों वन-जालियों (अप्रविष्ट) और यायावर जातियों से लेकर उन सुसंस्कृत वर्गों (आर्यों) तक जो वर्णव्यवस्था की पद्धति के अनुसार पने-बदे वे और समाज नीति के सिद्धांत पर हैं । दिग्बिजयी सग्राह के लिए नीतिज्ञ ने संरक्षण तथा विभिन्न प्रकार की प्रवृत्तियों को पूरी तरह समझने का या व्यापक सिद्धांत बनाया था वही अनेक विस्तृत क्षम में इतने यथार्थ तथा अपने विद्यालय सामाजिक तथा

सांस्कृतिक वैविध्य को इस प्रकार स्थान दे सकता था कि उनसे भेदों को मिटाकर उन्हें एक समष्टि का रूप दे सके और उन्हें एक ही राजनीतिक पड़वि अपना साम्राज्य के विभिन्न अंगों के रूप में संगठित कर सके। इस प्रकार बौद्धिस्थ तथा चन्द्रगुप्त अपने साम्राज्य-सम्बन्धी बुद्धिसंगत सिद्धान्तों तथा इस क्षेत्र में अपने व्यवहार के कारण भारत के सर्वप्रथम साम्राज्य-निर्माता थे। उन्होंने अपने साम्राज्य की स्थापना इससे सभी छोक-समुदायों के लिए पूर्ण सांस्कृतिक स्वतंत्रता उनकी मिश्र-मिश्र भाषाओं की-रिवाजों तथा उनके धर्म के प्रति सम्मान और उनके सामाजिक धार्मिक तथा भाषा-सम्बन्धी उन सभी अधिकारों की रक्षा के आधार पर की जिसके कारण छोक-समुदाय की एकता स्थापित होती है।

## अध्याय ११

### सामाजिक परिस्थितियाँ

समाज-व्यवस्था : वर्ग समाज उस कट्टर शास्त्र-पद्धति पर आधारित था जिसने इस बार मुख्य वर्गों से बिभाजित कर दिया था जिसका उत्प्रेषण पहले किया था चुका है। इस बार वर्गों के अतिरिक्त वर्ग निम्न वर्ग (अवर-वर्ग) भी थे [VI १ VII २]।

संसार वर्गों के अनेकानेक सहर वर्गों (अन्तराल) के साथ भी थे जो निम्न वर्गों के श्रेणियों के बीच बिबाह से उत्पन्न संतान थे। कौटिल्य ने निम्न वर्गों के बीच इस प्रकार के बिबाहों से उत्पन्न होने वाली संतान का वर्णन इस प्रकार किया है [III ७] (१) अनुभोग बिबाह से उत्पन्न होनेवाली संतान अम्बष्ठ निपात्र, या पारश्व (ब्राह्मण पिता की संतान) उध (शत्रिय पिता की संतान) धूद्र (वैश्य पिता की संतान) (२) अस्तिमान बिबाह से उत्पन्न होनेवाली संतान मायागव अत तथा चण्डाल (धूद्र पिता की संतान) मायव तथा वैरेहक (वैश्य पिता की संतान) और धूद्र (शत्रिय पिता की संतान)।

इन सहर वर्गों के बीच परस्पर बिबाह से उत्पन्न होनेवाली संतान का उल्लेख इन प्रकार किया गया है उध पिता तथा निपात्र माता की संतान कुबट्टक निपात्र पिता तथा उध माता की संतान धूद्रक अम्बष्ठ पिता तथा वैरेहक माता की संतान वीच वैरेहक पिता तथा अम्बष्ठ माता की संतान कुशीलव उध पिता तथा अत माता की संतान इत्येवम् कहलाती थी।

प्राइमों का ज्ञान यह बात स्मरण रखने की है कि वैसे कि एफ०  
 स्ट्यू० टामस ने कहा है [कॉम्बिज हिस्ट्री I ४८४] 'मौर्य साम्राज्य की  
 उत्पत्ति एक प्राइम से तथा एक राष्ट्रीय प्रतिष्ठित को कथम्बकर हुई और  
 कौटिल्य के नेतृत्व में उस साम्राज्य ने समाज का नियमन वर्णाश्रमधर्म के नियमों  
 के अनुसार किया। इस पर पहले प्रकाश डाला जा चुका है। इस समाज के  
 शासन पर प्राइम का स्थान था जो पुरोहित तथा राजकुल के रूप में राजनीति  
 तथा प्रशासन पर बहुत बड़ी हथकड़ी प्रभाव डालता था और परिपक्व का महत्त्व  
 होने के नाते विधान-निर्माण पर भी प्रभाव डालता था। कानून में उसकी इस  
 सर्वोपरि सामाजिक स्थिति को स्वीकार करते हुए उस समस्त करा में मुक्त कर  
 दिया गया था उसकी सम्पत्ति अश्व नहीं थी या सकती थी उसे कोई पारितोषिक  
 दंड अथवा मृत्युदंड नहीं दिया जा सकता था उसे अधिकृत दंड यह दिया  
 जा सकता था कि उसे बन्धकित करके देश निकाला दे दिया जाए [VI ८]।  
 परंतु इस सारे सामाजिक सम्मान का कारण यह था कि वह सही माने में समाज  
 का अंग होता ही नहीं था वह सत्कार में रहते हुए भी उससे परे था। उसका  
 वास्तविक कार्य अध्ययन तथा अध्यापन था और उसका उचित निवास-स्थान  
 वन की कुटिया में था जहाँ वह अपना समय धर्म-चिंतन में व्यतीत करता  
 था और परमोक्त की चिन्ता में ही तीन चतुर्थांश [कॉम्बिज हिस्ट्री  
 I ४८४]।

परंतु अब धीन-मत्त तथा बीड़-मत्त जैसे सम्प्रदायों के विकास के कारण और  
 कई दूसरे सम्प्रदायों के विकास के कारण जिनका उद्देश्य उस समय के साहित्य  
 में मिलता है (देखिए प्रस्तुत पुस्तक के लेखक की दूसरी पुस्तक श्रिद्ध लक्ष्मण,  
 पृष्ठ २२) और जो प्रचलित धर्म में विश्वास नहीं रखते थे और धर्म-परिवर्तन  
 करने में इस समाज-व्यवस्था के लिए सत्तरा पैसा हाँ यथा था। ये सम्प्रदाय  
 प्रवृत्तियों के संघ बनाकर उसकी बुनियादों को हिला देने की धमकी दे रहे थे।  
 इस बात से हम भली भाँति समझ सकते हैं कि प्राइम-व्यवस्था का व्यवहार  
 होने के नाते कौटिल्य इस बात के पक्ष में क्यों नहीं था कि कोई वैधानिक अति  
 कार्यों की अनुमति प्राप्त किए बिना (मिला० आपुच्छम धर्मस्थान्) [II १]  
 और पुनः तथा पाती के लिए कोई उचित व्यवस्था किए बिना (पुनःसंस्थापन  
 विधानम्) [II, १] इस संसार से और मृत्यु जीवन के वादियों से भागा छोड़  
 के। कौटिल्य ने तो इस बात की भी मनाही कर दी थी कि यदि मैं कोई भी  
 इस प्रकार के अपमानित संघाती को शरण न दे क्योंकि उसे डर था कि इससे  
 साम्य-समाज में अशांति-गुणक पैदा हो सकती है (न अन्यथा उच्यते)  
 [II १]।



“इस प्रकार हम धर्म युग में केन्द्रीकरण की अवस्था का सूत्रपात देखते हैं जिसमें केवल कुछ बहुत बड़े-बड़े सम्प्रदाय ही एक संस्थापित ब्राह्मण कट्टरपंथ के सामने टिके रह सकते थे। और यह बात एक महान् साम्राज्य का स्वाभाविक परिणाम थी” [केम्ब्रिज हिस्ट्री I ४८४]।

यूनानी वृत्तांतों में हिन्दू समाज का वर्णन : वर्ण तथा व्यवसाय के बीच यह कहना : यूनानी वृत्तांतों में हिन्दू समाज के जो उल्लेख हैं उन से पता चलता है कि वे सोच उस व्यवस्था को पूरी तरह समझ नहीं पाए थे जो अपने ईश्वर की अनासी व्यवस्था थी और विदेशियों के लिए एक अपरिचित चीज थी। इस लिए इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं। मेगास्थनीज और उसके बाद के लेखकों ने वर्णों तथा उनके सम्बन्धित व्यवसायों के अंतर को ठीक से न समझ सकने के कारण सात ‘माछीय वर्णों’ का वर्णन किया है। वेबान ने ठीक ही कहा है [केम्ब्रिज हिस्ट्री पृष्ठ ४९] “परन्तु वे सात वर्ण उन विभिन्न तत्त्वविधियों की प्रतिबिम्बित करते हैं जो पाटलिपुत्र में रहनेवाला कोई यूनानी ईसा-पूर्व चौथी शताब्दी में अपने चारों ओर देखता था।

मेगास्थनीज की बुद्धि में ब्रह्मण : परन्तु यूनानी वृत्तांतों में वे वर्णों के विवरण को विभिन्न वर्णों के लोगों के व्यवसायों या एक ही वर्ण के लोगों के विभिन्न व्यवसायों से उन विवरणों से अलग करना संभव है, जिनके साथ उन्हें मिला दिया गया है।

एक वर्ण के रूप में ब्राह्मणों के बारे में मेगास्थनीज ने निम्नलिखित बातें कही हैं

यह कहता है कि ब्राह्मण ऐसे “दार्शनिक होते थे जिन्होंने समाज में सर्वोच्च पद प्राप्त था पर जो संख्या की दृष्टि से सब से छोटा वर्ण था (अथ XXX)। परन्तु इस विषय में मेगास्थनीज ने जो कुछ लिखा है उसका अधिक विस्तृत विवरण हमें स्नाबो क बही मिलता है

‘ब्रह्ममैन’ (Brachmans) “दार्शनिकों के प्रकार के होते हैं। (१) ब्रैकमैन (Brachman) और (२) बरमेन (Barmenes)। ब्रैकमैन सबसे अधिक सम्मान के पात्र हैं, क्योंकि वे एक अधिक सुसंयत बुद्धिबद्ध पद्धति का पालन करते हैं।

छात्रवृत्ति छात्रों के रूप में वे “नगर के सामने एक छोटे से चिरे हुए स्थान में किसी कुंड में रहते हैं। वे सरल जीवन व्यतीत करते हैं और बात फूस अथवा मृगजालों की शय्या पर बिछाए करते हैं। वे मोक्ष नहीं लाते और संन्यास के मूल से दूर रहते हैं और अपना माया समय बंसीर उपदेश मनने में व्यतीत करते हैं।”

गृहस्वास्थ्य "इस प्रकार सैतीस वर्ष तक जीवन व्यतीत करने के बाद प्रत्येक छात्र अपने घर लौट जाता है और शेष जीवन सुख तथा सुरक्षा के आवावरण में व्यतीत करता है।

'तब वे बड़िया मसमल के बरत धारण करते हैं और अपने उद्योगों पर तथा कानों में घोल में छोटे-मोटे वामुष्य भी धारण करते हैं। वे मौस छाते हैं घर परिधम करने वाले पम्पों का नहीं। वे बहुत चटपटा तथा मसामेदार भोजन ग्रहण नहीं करते।

यह जीवन के प्रथम आधम अर्थात् बाल्यवृत्त के जीवन का और उसके बाद मध्य के जीवन का वर्णन है। इसमें केवल एक झुटि यह है कि विद्योपाजन का काल ३७ वर्ष का बताया गया है, जो एक अपवाद है। मनु ने विद्योपाजन की अधिकतम अवधि सैतीस वर्ष बतायी थी [III १]। यहाँ पर मेगास्थनीज ने हिन्दू पद्धति के अनुसार जीवन के चार आधमों में विभाजन के बारे में भी अपनी अनभिज्ञता का परिचय दिया है।

मेगास्थनीज ने इस बात का भी उल्लेख किया है कि उस समय के ब्राह्मण दिन-दिन व्यवसायों में काम करते थे।

व्यवसाय : 'जो लोग कोई मजदूरी करना चाहते हैं और कोई संस्कार सम्पन्न करना चाहते हैं' उनके लिए वे पुरोहित के रूप में काम करते हैं।

"राजा लोग उन्हें बड़े-बड़े सार्वजनिक सम्मेलनों के लिए सार्वजनिक रूप से भी बुलाते हैं जिसमें गण-वर्ष के आरम्भ में सभी सार्वजनिक एक स्थान पर एकत्रित होते हैं और यदि किसी सार्वजनिक ने कोई उपयोगी बात किसी होती है या फसल में तथा पशुओं की रक्षा में सुधार करने का या सार्वजनिक हित का कोई उपाय मासूम किया होता है, तो वह उनके सामने उसकी घोषणा करता है।"

द्वितीयारस ने मेगास्थनीज की रचनाओं का जो बृहद् संग्रह तैयार किया है, उसमें उसने इस बात की कुछ भिन्न रूप में अंकित किया है।

वह कहता है, (पुरोहित के रूप में) "अपनी सेवाओं के बदले उन्हें बहु-भूष्य उपहार तथा विद्योपाजकार मिलते हैं।

"वे लोग सभी भारतवासियों का बहुत हित करते हैं क्योंकि जब वे नववर्ष के आरम्भ में एक स्थान पर एकत्रित होते हैं तो वे एकत्रित जन-समुदाय को पहले से अनावृष्टि तथा वर्षा की हानिकारक हवाओं तथा रतों की सूचना देते हैं और धानियों को ऐसी बातें भी बताते हैं जिनसे वे काम उठा सकते हैं। इस प्रकार राजा तथा प्रजा पहलेसे ही भविष्यका ज्ञान प्राप्त करने और पहले

से ही जाती विपत्ति का सामना करने के लिए उचित व्यवस्था कर लेते हैं और हमेशा पहले से ही आवश्यकता पड़ने पर काम करने वाली चीजों का प्रबंध करके रखते हैं।

इसी विषय पर अरियन ने अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किये हैं "क्रिस्टो की संस्था उतनी नहीं है जिसकी सम्य दार्शनिकों की। पर उन्हें आदर तथा सम्मान का खबोन्ना पद प्राप्त है क्योंकि उन्हें किसी भी प्रकार का कोई धार्मिक बन्धन करने या अपने बन्धन के फल में सामूहिक निषिद्ध में कोई योगदान करने की कोई आवश्यकता नहीं होती न ही किसी कर्तव्य का पालन करने पर वे सर्वथा बाध्य होते हैं। उनका केवल एक कर्तव्य होता है—राज्य की ओर से वेवस्थाओं को प्रसन्न करने के लिए यत्न करना।

'सरमेल' (अमल) अब हम दार्शनिकों की उस बुराई से भी पर विचार करेंगे जिन्हें अस्तव्यवस्था ने सत्यता कहा है। यशो ने लिखा है 'जहाँ तक 'सरमेल' का संबंध है उनमें से जो सब से अधिक सम्मान के पात्र होते हैं, वे 'हाइपोक्रिसी' अर्थात् 'बन में रहने वाले' (बाह्यतः भयंकरा वनवासिन्) कहलाते हैं। वे पेशा की पतिव्रता तथा प्रसन्न फल लाकर बन में जीवन व्यतीत करते हैं और पड़ोसों की छात्र के बन्धन पहनते हैं। वे समीप तथा मदिरापान से दूर रहते हैं।' क्लेमैस के अनुसार, 'वे न तो नरको से रहते हैं, न रहने के लिए घर ही बनाते हैं। वे बुद्धों की छात्र के बन्धन पहनते हैं और कबमूख आदि पाते हैं। वे न विवाह करते हैं न संतान उत्पन्न करते हैं।' यह विवरण उन ब्रह्मचारियों के विवरण से मेल खाता है जो आजीवन ब्रह्मचर्य का पालन करते थे और नैष्ठिक-ब्रह्मचारी कहलाते थे।

यूनानियों ने जिस 'सरमेल' शब्द का प्रयोग किया है, वह संस्कृत के अमल शब्द का पर्याय है। उस समय प्रायः सम्पादी की भाँति वह बीढ़ हो या न-बीढ़ समझ गहने थे। यद्यपि असोक के शासनकाल में यह शब्द केवल बीढ़ पितृव्य के लिए उपयुक्त होने लगा था।

सैना कि बेबान ने लिखा है, कुछ लोगों ने यह विचार प्रकट किया है, कि मेघास्तवीय द्वारा सरमेल का सर्वोत्तम परिभाषा केमरों की रचनाओं में बीढ़ों का सर्वप्रथम उल्लेख है। परन्तु हम विवरण में कोई ऐसी बात नहीं मिलती जो केवल बीढ़ों का परिचय होनी हो और बीढ़ोत्तर सम्प्रदायों के लिए भी भारतीय साहित्य में अमल शब्द का प्रयोग किया गया है। अतएव दिन कार्यों के बारे में मेघास्तवीय ने इस शब्द का प्रयोग होने मुना का यदि वे बीढ़ थे

तो हम यही कह सकते हैं कि उसी उन लोगों के बारे में जल्दी कम जानकारी थी कि वह उनका वर्णन केवल ऐसी विशेषताओं के आधार पर कर पाया जो विभिन्न प्रकार के हिन्दू माधुमा में समान रूप से पाई जाती थीं। उनका वर्णन बौद्ध सम्प्रदायियों की अपेक्षा ब्राह्मण सम्प्रदायियों पर अधिक परिभाषित था। है” [कैम्ब्रिज हिस्ट्री I, ४२०]।

इन समर्थों के वर्णन से स्पष्ट प्रतीत होता है कि वे जीवन के तीसरे तथा चौथे आधम के ब्राह्मण से जिनके परिवर्तन तथा सम्प्राप्ति कहा जाता था।

पौतम ने अपने धर्म-सूत्र में तीसरे आधम में जीवन व्यतीत करनेवाले व्यक्ति को त्रिषु कहा है और उन्होंने उनकी विशेषताएँ ये बताई हैं (१) अनिश्चय, जिसके पास किसी भी वस्तु का कोई भंडार नहीं और (२) अस्पृश्यता, जो काम-वासना से सर्वथा मुक्त हो (जैसा कि मेगास्थनीज ने भी कहा है)। चौथे आधम में जीवन व्यतीत करनेवाले व्यक्ति को उन्होंने वैरवान्त कहा है जिसे (जैसा कि मेगास्थनीज ने भी कहा है) जपम में (जने) रहना चाहिए, कंदमूल तथा फल पाने चाहिए और कर्मों वदों की छाक अथवा पशुओं की गोबर के दूध पारन करने चाहिये (कीरामिन) [III तथा V]।

बौद्धायन तथा आपस्तम्ब ने चौथे आधम में जीवन व्यतीत करने वाले व्यक्ति के लिए परिवर्तनक प्रयत्न का प्रयोग किया है और सम्प्राप्ति राज्य का भी।

उनके व्यवसाय : यूपानी लेखकों ने इन समर्थों के कार्य-व्यवसाय का भी वर्णन किया है।

“जो राजा उन से विभिन्न बटनाओं के कारणों के विषय में अपने मंत्रों बाह्यो द्वारा उनका परामर्श माँवते हैं उन्हें वे अपने विचारों से अवगत कराते हैं जन्ही के द्वारा राजा देवताओं की आराधना तथा उपासना करते हैं।

“उनमें से कुछ चिकित्सक भी होते हैं, जो मानव-मृति का अध्ययन करते हैं। वे औषधियों का प्रयोग न करके आहार के नियमन द्वारा रोग को दूर करते हैं। औषधियों में भी वे पी जानेवाली औषधियों को अथवा बाहर लगाई जाने वाली औषधियों को अधिक महत्त्व देते हैं। सबसे अधिक महत्त्व मलमूल तथा मेष को दिया जाता है। अन्य सभी औषधियों का वे प्रहृतया हानिकार मानते हैं।

“ब्राह्मणों की तरह ही वे भी कठिन तपस्या द्वारा सहनशीलता प्राप्त करते हैं। इस उद्देश्य से वे सक्रिय परिश्रम भी करते हैं और पीड़ा भी सहन करते हैं, वे दिन भर एक ही आसन से निष्पन्न बैठे रहते हैं।

बैसा कि एंफिस्टम ने बताया है "इन चिकित्सकों की जीवनभर्या बीजे बायम (संस्था) का जीवन व्यतीत करनेवाले ब्राह्मणों से बहुत-कुछ मिलती-जुलती है।

और मैकडिडिस ने भी ठीक ही कहा है कि 'सबसे अधिक बात है कि बर्षा भीड़ बर्ष का अतिरिक्त चिकित्सक के आक्रमण से दो हाताड़ी पहले से या पर यूनापी के बर्षों ने कभी उस अलग एक बर्ष के रूप में नहीं देखा। इसका एकमात्र कारण यह हो सकता है कि इस बर्ष के अभ्यासियों का रंग रूप तथा उनका आचार-व्यवहार दूसरों से इतना अलग नहीं था कि कोई बिदेसी उन्हें आम लोगों से अलग पहचान सकता।

स्वाधो ने उनकी जीवनभर्या के विषय में यह भी कहा है कि 'वे अपने स्थानों में नहीं रहते वे बाहर तथा ऐसे माजल पर निर्भर रहते हैं, जो उन्हें शिक्षा में आसानी से मिल जाए, या फिर जिनके बरों में वे बर्षा होते हैं वे जो कुछ शिक्षा हैं वही वे ला केते हैं।

उनके बारे में यह भी कहा गया है कि वे 'वेद-अध्यास का ज्ञान' भी प्राप्त करते हैं।

इनमें से कुछ सरमेन के बारे में यह भी कहा गया है कि वे "अविष्य विचारते हैं, साह-सूक करते हैं और मुतात्माओं से सबधित संस्कार सम्पन्न कराने में निरुज होते हैं। वे गाँवों तथा नगरों में दोनों ही बगल घूम-फिरकर भिक्षा माँगते हैं।

इनमें से कुछ "अधिक सुसंस्कृत तथा परिभाषित होते हैं और सीनों में ऐसे अन्ध-विश्वासों का उच्चार करते हैं जिन्हें वे जीवन की सुविधा तथा परिवर्तन के लिए हितकर समझते हैं।

साधनिक विनयी : "इनमें से कुछ के साथ किसी भी दर्शनियों का जीवन व्यतीत करती हैं पर वे संलग्न नहीं करती। इस प्रवृत्ति में हम औपनिषदिक श्रुति मात्रात्मक का उल्लेख कर सकते हैं जिसकी पत्नी मैत्री अपना घर-बार छोड़कर अपने पति के साथ सर्वोच्च दर्शन का ज्ञान प्राप्त करने के लिए वन में जाती हैं।

'प्रामनाई' (Pranai) अर्थात् प्राणविक्रम स्वामी ने बर्षा-दर्शियों की एक हीसरी खोजी या भी उल्लेख किया है जिन्हें अपने प्रामनाई कहा है। "वे ऐसे धार्मिक होते हैं जो 'संयम' के विरोधी होते हैं और जिन्हें सास्त्रार्थ से प्रेम होता है तथा जो सास्त्रार्थ की अपनी समता पर बर्ष भी करते हैं। वे शरीर-विद्या तथा ज्योतिष का अध्ययन करनेवाले ब्राह्मणों को मुक्त तथा पारंगत

बता कर उनका उपहास करते हैं। इनमें से कुछ पर्वतीय 'ग्रामनाई' कहलाते हैं। कुछ 'त्रिमनेटाई' कहलाते हैं और कुछ नगर के 'ग्रामनाई' अथवा गाँव के 'ग्रामनाई' कहलाते हैं।

"जो पर्वतीय हाथ हैं वे मृगछाया धारण करते हैं और अड़ी-बूटियों के साथ जेवर चमत्ते हैं और जत्र-मत्र साड़-फूँक तथा घड़े-शाबीर द्वारा रोया को अच्छा करने का शौक करते हैं।

"जैसा कि उनके नाम से ही विदित है 'त्रिमनेटाई' मने रहते हैं और साधारणतया वे गुरु धाका के नीचे सतीस वर्ष तक तपस्या करते हैं जैसा कि मैं पहले भी बता चुका हूँ।

"उनके साथ स्त्रियाँ भी रहती हैं पर वे प्रमोद नहीं करती।

"नगरों के 'ग्रामनाई' उपनगरों में रहते हैं और मतमल के वस्त्र पहनते हैं। बाँवों के 'ग्रामनाई' मृगछाया अथवा कोपीन पहनते हैं।

सोफिस्ट अरियन सभी शार्पनिकों की सोफिस्ट कहता है [इंडिका, XI ΔII]। उनके बारे में उसने निम्नलिखित बातें लिखी हैं

"उनके मतानुसार भारतवासियों में अधिप्य बचाने का ज्ञान सीमित लोगों के पास है और सोफिस्टों के अतिरिक्त और किसी को इस ज्ञान का अभ्यास करने का अधिकार नहीं है। पर वे अलग-अलग व्यक्तियों का अभिप्राय नहीं बिखारते।

"वे संत नर कहते हैं धीवक्रास में भूप का आनन्द लेने के लिए उसे आवास के नीचे रहते हैं और गर्मियों में जब सूर्य का ताप बहुत बड़ जाता है तब वे पास के हरे भरे मैदानों तथा घड़े-घड़े बूखों की छाया में नीची भूमि पर रहते हैं।

"वे विभिन्न वस्तुओं में उत्पन्न होनेवाले फल तथा बूखों की छाया खाते हैं — बूखों की यह छाया कजूर से कम मीठी या पीथिक नहीं होती।"

अरियन ने इस अनेकाली बात का भी उल्लेख किया है (XII) कि 'सोफिस्ट किसी भी वर्ग के हो सकते थे क्योंकि सोफिस्ट का जीवन सरल नहीं होता था बल्कि सबसे कठिन होता था।" इससे यह पता चलता है कि किसी भी वर्ग का आदमी संन्यासी का जीवन अंधीकार कर सकता था। संसार का तथा समस्त सामाजिक बंधनों का परित्याग करके संन्यासी वर्ग के नियमों के क्षेत्र से बाहर हो जाता था। इसे हिंदू वर्ग की उपासना का भी पता चलता है, जिसके अंतर्गत आध्यात्मिक जीवन के क्षेत्र में वर्ग का कोई भेदभाव नहीं रखा जाता।

बौद्ध ग्रंथ में हम निम्नलिखित वक्तव्य के लिए सिद्धांतियों के कमीमें के सामाग्री हैं

'मारुतवासियों में ऐसे दार्शनिक भी हैं, जो बौद्ध (Buddha) के सिद्धांतों को मानते हैं और वे उनकी असाधारण बुद्धि के कारण देवता के रूप में उनका सम्मान करते हैं।' बौद्ध कि कोल्लुक ने बताया है यहाँ पर बुद्ध के अनुयायियों और ईश्वरों तथा सार्वभौम के बीच स्पष्ट रूप से अंतर किया गया है" (दीर्घनिर्वाण द्वारा उद्धृत) ।

मारुत के इन सर्वोच्च बौद्धिक तथा सुसंस्कृत बर्णों के दो विभिन्न विवरण जिन्हें यूनानियों ने दार्शनिक 'सॉफिस्ट' ईश्वरों प्रामनाई, जिमनेटारी और बौद्धा (बुद्ध) के अनुयायी आदि विभिन्न नाम से रखे थे चाण्डाल तथा ब्राह्मणों-तः बौद्ध, जैन आदि सम्प्रदायों के विभिन्न बर्णों के विवरण माने जा सकते हैं ।

बौद्ध-युद्ध सम्प्रदायी ईसा-पूर्व चौथी या पाँचवीं से बल्कि कहीं अधिक पहिले पूर्ण पश्चिमी यूनानी में जैन-मत तथा बौद्ध-मत का उदय होने के समय से मारुत सम्प्रदायों की विभिन्न विचारधाराओं तथा सम्प्रदायों के कारण उत्पन्ननीय रहा है । इनके पूर्वज वैदिक काल के यूनान-फिरने वाले सम्प्रदायी थे जो चरक कहलाते थे । उनके बाद परिष्कार हुए और फिर बीसों से पहले के आधुनिक (जो मने रहते थे) निर्धन (जो बहुत पाने करने कारण करते थे) तथा अतिरिक्त आदि सम्प्रदाय हुए । आयत्तान्त आदि कि बुद्ध (बुद्ध-प्रवचन) में [II ११५] इन विभिन्न सम्प्रदायों के सम्प्रदायों को समान-ब्राह्मण 'वामिक जीवन के नेता' (वचिनी) कहा गया है । अयोध के विभागेन्द्रों में समान-ब्राह्मण का प्रयत्न बार-बार किया गया है । अनुत्तरनिकाय में [VI १५] परिष्कारों के दो बर्णों का उल्लेख है, जिन्हें (१) ब्राह्मण और (२) अज्जतिस्सिप अर्थात् अन्य बीड़ेतर सम्प्रदायी कहा गया है । ब्राह्मण परिष्कारों को वास्तविक, (तत्त निपात ३/२) विताड तथा मोरमस्त कहा गया है (अनुत्तराध्याय V १ २) । उदात्त (पाणि टैकस्ट सांसायरी द्वारा सम्पादित संस्करण पृष्ठ ११ १७) में बहुत अच्छे रूप में इसे मान-रूप में इस प्रकार कहा गया है "अर्थात्तुसा मत्तासिस्सिपया समक-ब्राह्मणा परिष्कारका नामा-विट्ठिका नामा विट्ठि-निस्सयनिस्सिता अर्थात् समानों तथा ब्राह्मणों के अनन्त सम्प्रदाय थे वे सभी परिष्कार के पर सब विभिन्न दिष्टियों दानों भाग्यजनों और समस्तों के अनुयायी थे ।"

प्रामाणिक : जिन दार्शनिकों को उदात्तों ने 'मैगास्थनीज के अतिरिक्त

अप्य किसी झोठ के आधार पर" प्राप्तनाई कहा है उनके बारे में बेबात में टीका ही कहा है 'इसमें जिन साया की ओर संकेत किया गया है य अवश्य ही सामाजिक है या विभिन्न वर्ग-पद्धतियों के अनुयायी है जिनमें से प्रत्येक पद्धति का इस बात के बारे में अपना अलग मत है कि प्रमाण बर्बाद यही ज्ञान प्राप्त करने का सामन' क्या है ? ये सभी सामाजिक बिना किसी अपवाद के शत्रु शत्रुण होते हैं, पर वे वैदिक संस्कारों में विश्वास रखनेवाले शास्त्रियों को शिरस्कार की दृष्टि से बगने हैं। [कम्पिज हिस्ट्री I ४२१]।

सामाज्य चित्र रहन-सहन तथा वेद-भूषा सभी पुनानी बनाते को एक साथ मिलाकर देने पर हमें यह पता चलता है कि शास्त्रियों के बारे में यह बताया गया है कि वे (१) पहाड़ों पर, (२) जंगलों में (३) मैदानों में (४) नगरों में तथा (५) गाँवों में रहते थे। कुछ नये रहते थे और कुछ जो पर्वतों पर रहते थे मृगछाया पहनते थे। वैदिकों में रहनेवाले शास्त्रण भी मृगछाया पहनते थे। मगरा में रहनेवाले शास्त्रण बड़िया मलमल के वस्त्र धारण करते थे सोने की अंगूठियाँ तथा कुडक पहनते थे "अपने कंधों पर वे मृगछाया का झुपट्टा डालते थे दाढ़ी और जटाएं रखते थे जिन्हें वे बट छेदते थे और ऊपर से पगड़ी बाँध लते थे" [कम्पिज हिस्ट्री, I ४२२]। जो जंगलों में रहने थे वे वृक्षों की छाल के वस्त्र पहनते थे। छायावस्था में वे पास-दूत की जमना पशुओं की छाक की शय्या पर विराम करते थे और पशुओं की छाक के वस्त्र भी पहनते थे।

आहार : विद्यार्थी मांस नहीं खाते थे।

बनों में रहनेवाले संप्रदायी पशुधारी तथा फल और वृक्षों की पौष्टिक छाछ खाकर अपना पेट भरते थे।

गृहस्थ शास्त्रण मांस खाते थे पर परिश्रम करनेवाले पशुओं जैसे गाय-भैस आदि का मांस वे नहीं खाते थे। वे धरम तथा मसाफेदार आहार से बचते थे। वे आबल तथा धौ का भोजन करते थे।

व्यवसाय : पीरोहिरम कुछ लोग मिला माँगकर अपना भोजन जुटाते थे।

वे बेतन सेकर किसी की सेवा नहीं करते थे।

वे पुरोहित का काम करते थे और इसके बदले में उन्हें उपहार मिलते थे। यही उनकी जीविका का स्रोत था।

ध्यान : उनका मुख्य काम ध्यान लगाता तथा चिंतन करना है, जो वे दिन भर एक ही आसन में निश्चल बैठे हुए करते रहते थे।



बौद्ध मत में हम निम्नलिखित वक्तव्य के लिए सिद्धांतों के समीक्षा में हैं

“भारतवासियों में एक वार्षिक नी है, जो बौद्ध (Boutta) के सिद्धांतों को मानते हैं और वे उनकी असाधारण धुंधला के कारण देवता के रूप में उनका सम्मान करते हैं। जैसा कि कोलबुक ने बताया है “यहाँ पर बुद्ध के अनुयायियों और ईसायों तथा सरमेन के बीच स्पष्ट रूप से अंतर किया गया है” (मैकडॉनल्ड द्वारा उद्धृत)।

भारत के उन सर्वोच्च बौद्धिक तथा सुसंस्कृत लोगों के ये विभिन्न विवरण जिन्हें यूनायिआ ने वार्षिक सोफिस्ट ईसायों प्रामनाई, जिमनेटाई और बौद्ध (बुद्ध) के अनुयायी आदि विभिन्न नाम दे रखे थे ब्राह्मण तथा ब्राह्मणों-पर बौद्ध जैन आदि संन्यासियों के विभिन्न रूपों के विवरण माने जा सकते

बौद्ध-पूर्व संन्यासी ईसा-पूर्व बीसवीं शताब्दी से बर्णन कहना चाहिए ईसा (पौनिकी शताब्दी में जैन-मत तथा बौद्ध-मत का उदय होने के समय से भारत न्यासियों की विभिन्न विचारधाराओं तथा सम्प्रदायों के कारण उत्पन्न हो चुका है। इनके पूर्ववर्ती बौद्ध काल के भूमने-फिरने वाले संन्यासी थे जो बरा बहलते थे। उनके बाद परिव्राजक हुए और फिर बौद्धों से पहले के आजीवनिक (जो मने रहते थे) निर्धन (जो बहुत बड़े वस्त्र धारण करते थे) तथा अतिरिक्त आदि सम्प्रदाय हुए। आयुष्मात्त आदि बि बुद्ध (बुद्ध प्रवचन) में [II ११५] इन विभिन्न सम्प्रदायों के संन्यासियों को समान-ब्राह्मण 'धार्मिक जीवन के नेता' (पवित्रों) कहा गया है। अष्टोक्त के शिक्षासेवकों में समान-ब्राह्मण का प्रयास बार-बार किया गया है। अनुत्तर निकाय में [II ११५] परिव्राजकों के दो वर्गों का उल्लेख है जिन्हें (१) ब्राह्मण और (२) अश्वत्थित्तिय बर्णन बौद्धों के संन्यासी कहा गया है। ब्राह्मण परिव्राजकों को बावर्जीक, (सत्त निपात्त १८२) विनय तथा कोशायत्त कहा गया है (बुद्धवचन V ३ २)। उराल (पवित्र) टैक्स नोमायनी द्वारा सम्पादित संस्करण पृष्ठ १११७ में बहुत अच्छे रूप इस मार-रूप में इस प्रकार कहा गया है “सबकुछ नानासिद्धिवादी समान-ब्राह्मण परिव्राजकों का नाम-विद्विष्टता नाना विद्विष्ट-निस्तप्यनिस्तप्यता बर्णन पत्रों तथा ब्राह्मणों के अनेक सम्प्रदायों के ये सभी परिव्राजक थे पर सब विभिन्न विद्विष्टताओं दर्शनो पापाओं और संगठनों के अनुयायी थे।”

आध्यात्मिक : जिन धार्मिकों का स्थायी ने “अनात्मनीय के अतिरिक्त

अन्य किसी सोन के आधार पर' प्राप्तवाई कहा है उनके बारे में बेबाग में ठीक ही रहा है। इसमें दिन साया की बात मकन किया गया है वे अक्सर ही सामाजिक हैं जो विभिन्न दर्शन-पद्धतियाँ के अनुयायी हैं जिसमें न प्रत्येक पद्धति का इस बात के बारे में अपना असम मत है नि प्रमाण अर्थात् सही मान प्राप्त करने का साधन क्या है? ये सभी सामाजिक बिना किसी बेपनाह के बहुत ब्राह्मण होते हैं पर वे वैदिक सम्प्रदाय में बिनाम रत्नेवाले ब्राह्मणों का तिरस्कार की दृष्टि में रहते हैं। [ईश्वर हिस्ट्री I ४२१]।

सामान्य बिना रहन-सहन तथा बेपनाह सभी सुनामी बुलाता को एक साथ मिलाकर बेगन पर हमें यह पता चलता है कि ब्राह्मणों के बारे में यह बताया गया है कि वे (१) पहाड़ों पर, (२) जंगलों में (३) मैदानों में (४) नगरों में तथा (५) गाँवों में रहते थे। कुछ नगरे रहते थे और कुछ पर्वतों पर रहते थे मुख्यतः रहते थे। देहान्तों में रहनेवाले ब्राह्मण भी सुमहात्मा रहते थे। नगरों में रहनेवाले ब्राह्मण बहिरा मलयम रु वन्य भाषा करते थे धोने की बेंगुटियाँ तथा कुछ रहते थे "अपने कंबों पर न सुगन्धित या कुपट्टे काले थे दाढ़ी और जटाएँ रखते थे जिन्हें वे बट फेंके थे और ऊपर से पगड़ी बाँध लेते थे" [ईश्वर हिस्ट्री I ४२२]। जो जंगलों में रहते थे वे बुद्धों की छाल के वस्त्र पहनते थे। लाजावस्त्रों में वे बास-कुस की अथवा पत्तियों की लाल की धम्मा पर बिनाम करते थे और पत्तियों की छाल के वस्त्र भी पहनते थे।

आहार विद्यार्थी मौस नहीं खाते थे।

बनों में रहनेवाले सम्प्रदायी पतियाँ तथा एक और बुद्धों की पीछे छाना खाकर अपना पेट भरते थे।

सुहृत् ब्राह्मण मौस जाते थे पर परिचय करनेवाले पक्षियों जैसे गाव मैस बारि का मौस थे नहीं खाते थे। वे गरम तथा मसालेदार आहार से बचते थे। वे बास तथा जौ का आशन करते थे।

ध्यातव्य पीरोहित कुछ लोग भिक्षा माँगकर अपना भोजन जुटाते थे।

वे नैशन लेकर किसी की सेवा नहीं करते थे।

वे पुरोहित का काम करते थे और इसके बखत में उन्हें उपहार मिलते थे। यही उनकी पीपिका का सोच था।

ध्यान उनका मुख्य काम ध्यान लगाना तथा चिंतन करना है, जो वे दिन भर एक ही आसन में निरंतर बैठे हुए करते रहते थे।

भविष्य-ज्ञान : वे भविष्य ज्ञान करने की शक्ति प्राप्त कर लेते थे और मौलम अमावसि तथा पूर्णमासी के बारे में वहाँ तक कि महामारियों के बारे में भी पहले से जानकारी प्राप्त करने के लिए राज्य उनकी इस शक्ति का उपयोग करता था ।

पर वे किसी व्यक्ति का निजी भविष्य नहीं विचारते थे ।

राजा उनसे सलाह लेते थे ।

इसामिक सम्मेलन राजा प्रतिवर्ष वार्षिक के सम्मेलनों का आयोजन करते थे इन सम्मेलनों में वे वर्ष तथा वसंत के ऋतु में अपने सम्मेलनों की घोषणा करते थे । यूनानियों का कहना है कि वे कृषि तथा पशुपालन के बारे में अपने सुझाव देते थे और राजनीति तथा देश की अन्य सभी समस्याओं पर सलाह देते थे । उपनिषदों में विद्वानों के इस प्रकार के सम्मेलनों का उल्लेख मिलता है इन्हीं सम्मेलनों के फलस्वरूप स्वयं उपनिषदों की उत्पत्ति हुई थी । इनमें सबसे प्रख्यात सम्मेलन वह था जिसका आयोजन विवेक के राजा अमर ने किया था जिसमें भाग लेने वालों में सबसे प्रमुख ऋषि वासिष्ठ्य थे ।

चिकित्सा-व्यवस्था : अब में यूनानियों ने इस बात का भी उल्लेख किया है कि इनमें से कुछ सन्वासी चिकित्सा-विज्ञान के विशेषज्ञ होते थे और रोगियों की चिकित्सा भी करते थे पर वे रोग को दूर करने के लिए औषधि न देकर बाह्यार का नियमित करने का ही उपाय बताते थे । उन्होंने बहुमूल्य मरहमों तथा लेपों का आविष्कार किया था । वे जल-मज तथा गंदे-समीक द्वारा भी रोगी की चिकित्सा करते थे । वे सार्वत्रिक नैपथ्य साधन तथा मन्त्र-विज्ञान के विशेषज्ञ होते थे ।

वे मराव तथा गरी से दूर रहते थे ।

सम्बन्धितियाँ : हमें इस बात का भी उल्लेख मिलता है कि "बाह्यम अपनी पत्नियों को अपने दर्शन के रास्ते से परिचित नहीं कराते क्योंकि यदि पत्नी उच्छ्वस स्वभाव की हुई, तो इन बात का भय रहता था कि वह नहीं वे रहस्य नीच लाया का न बता दे और यदि वह सम्भरित हुई तो वह अपने पति को छोड़कर चली जा सकती थी क्योंकि जिस मित्री ने भी गुल-तथा दुःख जीवन तथा मृत्यु की विरस्कार की दृष्टि के दैतना सीध लिया हो वह कभी भी दूसरे के निपथक में नहीं पनब नहीं करेगा ।"

परंतु वह बात पृथ्वी के जीवन पर लागू होती है । क्योंकि हमें इस बात का उल्लेख मिलता है कि "कृष मजम (जो वनलों में रहते थे) स्त्रियों का

भी अपने दार्शनिक जीवन में भाग लेने की अनुमति दे देते थे पर उन्हें पुस्तकों की तरह संभोग का परिष्कार करना पड़ता था जैसा कि हम पहले बता चुके हैं।

ब्राह्मणों की आध्यात्मिकता मैगास्थनीज के इस कथन में एक वर्ग ने रूप में ब्राह्मणों की विविधता का चित्र मिलता है 'ब्राह्मण जिन विषयों पर बात करते हैं उनमें सबसे मुख्य मृत्यु का विषय है क्योंकि उनका मत है कि वर्तमान जीवन इस जगत् के समान है जो मनुष्य अपनी माँ के गर्भ में धँसीत करता है और जो लोग दर्शन को अपनी याँति समझ लेते हैं उनके लिए मृत्यु एक वास्तविक तथा सुखी जीवन में जन्म लेने के समान होती है। इस कारण वे अपने आपको मृत्यु के लिए तैयार करने के लिए कठोर संयम का पालन करते हैं।

यह ब्राह्मण-जीवन-व्यवस्था तथा आचार्यों का बहुत उचित मूल्यांकन है। इसमें जिस 'कठोर संयम' का उल्लेख किया गया है वह उस संयम की ओर संकेत है जिसका पालन मनुष्य अपने जीवन के चारों आधर्मों में करता है जो प्रत्यक्ष रूप से मृत्यु की तैयारी ही होते हैं।

बंजारों ने यूनानियों द्वारा देखे गये सम्पासी सिक्ंदर के आक्रमण के समय यूनानियों ने पहली बार तक्षशिला में भारतीय सम्पासी देखे। चूँकि वे स्वयं सिक्ंदर के पास जाने के इच्छुक नहीं थे इसलिए सिक्ंदर ने जोनेसिन्स को उनके पास भेजा जिसने बताया है, कि उसने मगर १० मील दूर १५ सम्पासी देखे जो घूम में लगे बैठे हुए ध्यानमग्न थे। जब उनसे कहा गया कि यवन राजा उनका ज्ञान सीखना चाहता है तो उनमें से एक ने साठ-साठ उत्तर दिया कि 'योरपीय नेप मृषा में अपनी बीरता का प्रदर्शन करनेवाला— यक्षबाहों वाला लबाड़ा पीड़ी कमार का टोप और लम्बे बूते जो मच्छुमिया-निवासी पहनते थे—पहनने हुए कोई व्यक्ति उनका ज्ञान नहीं सीख सकता। यह ज्ञान सीखने के लिए उसे विस्तृत गण्य होकर उनके पास लपटे हुए पत्थरों पर बैठने का अभ्यास करना होगा' [क्लेविज हिस्ट्री I ३५८]।

ब्रिस्टोबुक्स ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि उन्होंने तक्षशिला में इस प्रकार के दो सम्पासी देखे एक का सिर घटा हुआ था और दूसरे के सिर पर जटाएँ थी दोनों के साथ उनकी शिप्यों की मंजली भी थी। जब वे बाजार में जाते थे तो लोग उनसे परामर्श करने के लिए उन्हें घेर लेते थे [क्लेविज हिस्ट्री I ४२]।

इन सम्पासियों के बुरे की यवानी डेंडेमिस (मगवा डेंडेमिस) कहते थे जो

एक अधिक धार्मिकवादी था जिसने मृत्युबंध का भय निस्राए जाने पर भी सिर्फ़र से भिन्नता स्वीकार नहीं किया और इन उदात्त शब्दों में अपना उत्तर भिन्नता दिया "मैं केवल भगवान के प्रति भक्ता रहता हूँ। सिर्फ़र भगवान नहीं है। क्योंकि वह मृत्यु का मायी है। मैं उससे न डरता हूँ और मैं ही उससे मुझे कुछ पाने की इच्छा है। सिर्फ़र जो कुछ है सफ़ा है वह सर्वथा व्यर्थ है। मैं जिन चीज़ों को मृत्युवान समझता हूँ वे ये पतियाँ हैं जो मेरा व्याघ्र है ये फूलों से लदे हुए पीपे हैं जो मुझे स्वादिष्ट भोजन प्रदान करते हैं। चूंकि मेरे पास ऐसा कुछ नहीं है जिसकी मैं रक्षा करूँ इसलिए मैं निर्विघ्न होकर सोता हूँ जबकि यदि मेरे पास सोना होता जिसकी मुझे रक्षा करनी पड़ती तो मेरी नींद उड़ जाती। बाह्य न सोने से प्रेम करते हैं और नहीं वे मृत्यु से डरते हैं। मृत्यु का अर्थ कबल यही है कि मनुष्य अपने बंधन साक्षी है जबकि अपने शरीर के बंधन से मुक्त हो जाता है।"

ये पद्म वास्तव में जीवन के उस चर्यन का प्रतिनिधित्व करते हैं जिसका पालन आज तक सभी युगों में भारत के सभ्यतापिता ने किया है। वे मनुष्य के धार्मिक जीवन तथा आध्यात्मिकता की आचार्यिका के रूप में विश्ववृत्तिनिरोध में जबकि 'पदार्थ के वस्तु जगत् से अस्तित्व की जड़ण कर लेने में विरवास करते आए हैं।

अश्विः मेगास्वगीज से भारतवासियों की सात श्रेणियों में विभाजित किया है। इनमें पाँचवाँ स्वान श्रमियों का है। अश्विन के शब्दों में "यह घोड़ों का वर्ग है जिसका सत्ता की दृष्टि से कृषकों के बाद दूसरा स्वान है, पर जो पूर्ण स्वतंत्रता तथा आनंद-प्रमोद का जीवन व्यतीत करते हैं। उन्हें केवल सैनिक कार्य करने पड़ते हैं। उनका हथियार बूंदरे सोम बनाते हैं। उन्हें घोड़े भी बूंदरे शौलों से मिल जाते हैं। सेना के घिबिर में उनकी सेवा करने के लिए भी बूंदरे शौल होते हैं जो उनके घोड़ों की देखभाल करते हैं, उनके हथियार साँझ करते हैं, उनके हाथी चलाते हैं, उनके रथ तैयार करते हैं और उनके रथों पर सारथी का काम करते हैं। जब तक आनंद्यकता होती है, वे युद्ध करते हैं और जब शांति स्थापित हो जाती है वे भोग-विस्वास में लिप्त हो जाते हैं। उन्हें राज्य की ओर से भी भेंटन मिलता है वह इतना काफ़ी होता है कि उसमें वे बड़ी आसानी से अपने अतिरिक्त दूसरों का भी भरण-पोषण कर सकते हैं।"

वैश्य तथा शूद्रः मेगास्वगीज की श्रृंखला में हमारे तीसरे तथा चौथे वर्ग आते हैं और शूद्र हैं। "दूसरा वर्ग कृषकों का है। अपतंत्रता का अधिकार्य भाग होती वर्ग के लोगों

का है और स्वभाव में ये लोग सबसे मृदु तथा सुधीन होते हैं। वे सैनिक सेवा के दायित्व से मुक्त होते हैं और निविष्ण होकर खेती करते हैं। वे बाहरों में कभी नहीं जाते न वहाँ की बहुत-बहुत से भाषा करने के लिए और न किसी अन्य काम से बहिष्क अपने बाल-बच्चों सहित गाँवों में ही रहते हैं। भूमि धारणकर्ता इन लोगों के काम है हथ पकाना अनाज उगाना पड़ों की रखरखाव करना या फसल काटना।

इसके बाद “ब व्यापारी हाव है जो पीछें बेचते हैं और वे डिस्मिशन जो पारोडिक थम करते हैं। इनमें से कुछ मुद्र के हथियार बनाते हैं। कुछ अनाज बनाते हैं और कुछ भवियों में नार्ब जलान के लिए मस्साहो के रूप में पीकर रखे जाते हैं। उन्हें राजा की ओर से मजबूरी तथा जाने-पीने की सामग्री मिलती है और वे केवल राजा के लिए ही काम करते हैं। वे कृषकों तथा अन्य व्यवसायों के लोगों के लिए उपयोगी औजार भी बनाते हैं।

फिर आते हैं “शिकारी तथा खरबाहे जो न सहरा में बसते हैं न गाँवों में बल्कि तन्तुओं में रहते हैं और याबावरा जमा पीबन व्यतीत करते हैं। वे बल इन्हीं को शिकार करने और पशु पालने तथा भारबाहक पशु बेचने या फिरोए पर उन्हें दूसरों को देने की अनुमति होती है। शिकार करके और पशुओं को पकड़कर वे गाँवों को जंगली पशुओं तथा पक्षियों तथा उन हानिकारक जीव जन्तुओं से मुक्त कर देते हैं जो वहाँ बहुत बड़ी समस्या में पाए जाते हैं। वे गाँवों को उन जंगली पशु-पक्षियों से मुक्त कर देते हैं, जो कृषकों द्वारा खेतों में बोये गए बीज खा जाते हैं। इन सेवाओं के बदले उन्हें राजा की ओर से अन्न के रूप में पारिवर्गिक मिछता है।

व्यवसाय मेधास्वनीय ने अपनी सूची में छठें तथा सातवें स्थान पर जिन वर्गों का उल्लेख किया है वे वास्तव में वर्ण हैं नहीं। उस ने बर्ब और चिस्व अथवा व्यवसाय की एक में मिला दिया है। इन दो वर्गों में वास्तव में विभिन्न व्यवसायों के राज-अर्थवादी आते हैं।

सूचना देनेवाले: छठी कोटि में वे लोग आते हैं, जिन्हें ओपटियर अर्थात् सूचना देने वाला कहा गया है जिनके कार्यों का उल्लेख पहले ही किया जा चुका है।

परामर्शदाता सातवीं कोटि में वे लोग आते हैं, जिन्हें परामर्शदाता तथा मससर कहा गया है जो “सार्वजनिक समस्याओं पर विचार-विमर्श करते हैं और शासन के सर्वोच्च पदाधिकारी—न्यायाधीश राजा के मंत्री सेनापति मुख्य सहायक—इसी वर्ग के लोग होते हैं।

अखिल के कथनानुसार "इस सातवीं कोटि में राज्य के अधिकार जाते हैं जो राजा को या स्वशासित नगरों को सार्वजनिक समस्याओं का हल करने के बारे में परामर्श देते हैं और राष्ट्र-मुख्य प्रांतपालों उप-राष्ट्रमुख्य राजकोष के अध्यक्षों सेना के मेजानायकों बी-सेना के सेनापतियों कृषि की देखभाल करने वाले नियंत्रकों तथा आनुषंगिकों को चुनने का अधिकार उन्हीं का होता है।

यह बात ध्यान देने योग्य है कि मेगास्थनीज ने जिन लोगों की पणना बरखाहों तथा शिकारियों में की है उनका उल्लेख अर्द्धराज्य में घोपालकों अध्यक्षों तथा मजदूरों और कृषि पशुओं तथा बरखाहों के अध्यक्षों के जमीन काम करनेवाले अन्य कर्मचारियों के रूप में किया गया है जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है।

"हुविहार बनानेवालों" के बारे में यह कहा गया है कि वे आम्बुवागाराप्पल के विभाग में काम करते थे और 'जहाज' बनानेवालों को लावण्या के अधीन बताया गया है।

अन्य विभागों का उल्लेख कोटिस्व ने विभिन्न विभागों के अंतर्गत किया है।

इन यह बात पहले ही बता चुके हैं, कि मेगास्थनीज ने जिन पराधिकारियों को जोरसिपर तथा परामर्शदाता कहा है, उनका उल्लेख कोटिस्व ने बूढ़-मुख्यों, अधिकांशों तथा विभिन्न दूसरे अध्यक्षों के रूप में किया है।

वर्ष तथा व्यवसाय जहाँ पर मेगास्थनीज ने यह लिखा है कि "कोई सैनिक इपक नहीं बन सकता था या कोई विभाग्यकार सार्वजनिक नहीं बन सकता था या यह कि 'किसी को अपने वर्ष से बाहर बिबाह करने की अनुमति नहीं थी या कोई अपने व्यवसाय जबकि सित्त के अतिरिक्त कोई दूसरा व्यवसाय जबकि सित्त नहीं अंगीकार कर सकता था" या "कोई अपना पेशा या व्यवसाय किसी दूसरे के पेशे या व्यवसाय से बदल नहीं सकता था" या "कोई एक से अधिक कारोबार नहीं कर सकता था" यही स्पष्ट उल्लेख वर्ष तथा व्यवसाय के अंतर को ध्यान में नहीं रखा है। कोई भी 'विभाग्यकार' जो कुछ वर्ष का होता था 'द्वार्य निर' जबकि बाह्य नहीं बन सकता था। इसी प्रकार सैनिक या अश्वि वर्ष के होने से इपक नहीं बन सकते थे बी विध्य होते थे। मेगास्थनीज ने जाने भरकर लिखा है [अध XXXIII] "केवल सार्वजनिक को इस मामले में छूट दे दी गई है जिसे अपने सन्तानों के कारण यह विशेषाधिकार प्राप्त है।" यह सबके हिस्सों के उन नियमों की ओर है जिसके द्वारा बाह्यों को इस बात की अनुमति है, कि वे आपस-वर्ष के का में अपना संक्र के समय मजबूर होकर

बीबिकोपार्जन के लिए किसी निम्न वय का व्यवसाय अपीकार कर लें क्योंकि आगति-नाम में कोई नियम लागू नहीं होता।

आचार-व्यवहार तथा रीति रिवाज ब्रह्म भूषा मयास्वनीय ने पाटलि-पुत्र में यह बात बनी कि बस्त्र का मामला में भारतवासी आमनीर पर अपने जीवन की सरलता के बावजूद इस बात को पसंद करते थे कि उनके बस्त्रों में नाना प्रकार के तथा चट्टानों से रंग हों वे सोने तथा हीरे जवाहरात के आभूषणों तथा बेतकटेदार मसमाल का प्रयोग लुब्ध करते थे और उनके पीछे सबक सन लेकर चलते थे।

मिथार्कस ने विष्णु गणी के किनारे रहने वाले लोगो के बस्त्रों का वर्णन करते हुए लिखा है कि वे आमन्त्रित सूती वस्त्र धारण करते थे 'एक पिङ्गली एक लम्बा कुर्ता तथा दो अन्य वस्त्र होते थे जिनमें से एक जो वे कंधे पर झाल देते थे और दूसरे को सिर पर बाँध लेते थे। वे हाथी-दाँत के कुङ्कुम तथा बमड़े के सज्जेर जूत पहनते थे जिन पर बेक-बूटे बन होने थे और जिनकी एड़ियाँ डँबी होती थी ताकि उन्हें पहननेवाले का कुछ कुछ अधिक लम्बा मालूम हो।

जान-पान भूमानियों को इस बात पर बहुत आश्चर्य हुआ कि भारतवासियों के आहार में मसिरा का कोई स्थान न था। "उनका मुख्य आहार भात था। हर आदमी अकेले ही भोजन करता था। न तो सब लोग साथ बैठकर खाते थे न भोजन करने का कोई निश्चित समय ही था। रात्रि के भोजन के समय सोने की बाली में एक मेज पर भोजन परोस दिया जाता था सबसे पहले उसमें भात रखा जाता था और ऊपर से मसालेदार मांस।

विवाह मयास्वनीय के कथनानुसार भारतवासियों में कई पत्नियाँ रखने की प्रथा मौजूद थी। उसने इस बात का उल्लेख किया है कि पुरुष बीमों की एक जोड़ी के बच्चे में कन्या को करीब सकता था। यह संकेत मनु द्वारा प्रतिष्ठित भार्ये विवाह की ओर है जिसमें कन्या के पिता की प्रथा के अनुसार (धर्मतः) बीमों बचवा पायों की एक जोड़ी (गोमिथुन) पाने का अधिकार था (मनुस्मृति III २९)। मिथार्कस के अनुसार, कुछ भारतीय जातियों में यह प्रथा थी कि पारोरिक ऋण के प्रदशन की किसी प्रतिव्योगिता में विजय प्राप्त करनेवाले को पुरस्कार के रूप में कन्या दी जाती थी। यह कदाचित् स्वर्चर की प्रथा की ओर संकेत है।

सती भूमानियों न भारत में सती की प्रथा भी बली थी। आनेसिक्टस



ने कभी कोई बदल कठ बातें के लोगों में यह प्रथा देखी थी। डियोडोरस का कहना है कि कठ बातें के लोग में यह प्रथा थी कि विधवा स्त्री को उसके मृत पति के माथे ही बना दिया जाता था (पेरिप्लस की दूसरी संस्करण आठ इंडिया आई अमेरिगेडर, पृष्ठ १७९)। अरिस्टोबुलस ने वर्णन किया है कि ११६ ई. पू० में एक भारतीय सेनापति ईरान में युमेनीस की सेना में लड़ने गया था और अपनी दो पत्नियों को साथ ले गया था। कुर्माप्यस यह एक में बैठ रहा जिस पर उसकी दो पत्नियाँ लगी होने के लिए व्यापस ने कान्ते लगी। चूंकि बड़ी पत्नी के गर्भ में बच्चा था इसलिए दूसरी पत्नी बिना पर वह गई और 'अपने पति की बगल में बैठ गई। जब अग्नि की प्लाताया ने उसे अपनी लपेट में ले लिया तब भी उसके होठों से राने की कोई आवाज नहीं निकली।

अलेक्जेंडर-क्रिया। यूनानियों को यह देखकर बहुत आश्चर्य हुआ कि अलेक्जेंडर क्रिया के समय भारतवासियों में कोई श्रमभाव नहीं होती और न कोई श्रम स्मारक ही बनवाए जाते हैं। भारतवासियों का यह विचार था कि मृतत्वा के गुण वीरता से तथा दण्ड-बाना के समय गए जाने वाले बाड़े गीतों की अवेका, अधिक विरस्वायी होने हैं (कैम्ब्रिज हिस्ट्री I ४१२ १६)।

वास-प्रथा : अरियन का यह कथन कि "सभी भारतवासी स्वतंत्र हैं और उनमें से कोई भी दास नहीं है" मेगास्थनीज के मत पर आधारित है। वास्तव में भारत में व्याप्त तबानवित्त वास-प्रथा उस वास प्रथा की तुलना में जिसमें यूनानी परिचित थे इसकी धीम तथा सीमित थी कि मेगास्थनीज उसके अस्तित्व को दाय ही न सदा। इसके अतिरिक्त अर्थशास्त्र में यह आदेश भी दिया गया है कि किसी भी कार्य को दास नहीं बनाया जाना चाहिए। (III १३)

कौटिल्य ने दासों का भी अलग वर्ग (आर्यवर्ग) बताया है। कौटिल्य ने इन मन्त्रावना को स्वीकार किया है, कि कोई व्यक्ति विपत्ति-काल में अपने दास बन्नों के दण्ड-व्योपक के लिए अपने दास को दास के रूप में बेच सकता है (तद्वत्तत्वावस्था) या युद्ध में लगे हो जाने के कारण दास हो सकता है। परंतु हिंदू विधि-शास्त्र के अंतर्गत इन प्रकार के हर दास के लिए यह मार्ग सदैव धुका रहता था कि वह अपने स्वामी की सेवा से होनेवाली कमाई के अतिरिक्त और नहीं से कमाई करके अपनी स्वतंत्रता खरीद ले। इसके अतिरिक्त वह भी कानून था कि उनका नाने-मन्त्री उसका स्वामी को धन देकर उसे दासता से मुक्त करा में और उन्हीं एका करना चाहिए। दास की उत्तराधिकार में अपने पिता की सम्पत्ति मिल सकती थी। यदि किसी दास स्त्री के साथ उसका मानिक संबंध

के सम्बन्ध स्थापित करके तो यह तथा उनके बच्चे अपने आप स्वतंत्र हो जाते थे (स्वामिन स्वस्या दाम्प्या जात समानुक्त भवास विधात्) (III १३) ।

धर्म अर्थशास्त्र में बताया गया है कि उस समय इन देवी-देवताओं की उपासना आम तौर पर होती थी (१) अपराजिता (बुर्वा) (२) अग्रतिष्ठन् (बिष्णु) (३) वयत (सुब्रह्मण्य) (४) वैजयन्त (ईश) (५) शिव (६) वैश्वदेव (७) अग्नि (८) धी (९) मदिरा (II ४) (१०) अग्नि (११) अनुमति (१२) सरस्वती, (१३) सविता (१४) अग्नि (१५) सोम (XIV १) (१६) इन्द्र और (१७) पीताम्बी (XIV ३) ।

‘मंत्र तथा जादू-टोना आदि उस समय के प्रचलित धर्म के अंग थे । युद्ध मंत्रों के उच्चारण अथवा जादू-टोने (औपनिषदिकम्) द्वारा पाप की छवितमों को दूर करने की चेष्टा की जाती थी ताकि बाह्य धर्म समाज विधिमया क आक्रमण से सुरक्षित रह सके (आप्तुर्बन्धनार्थम्) । ऐसे मन्त्रों का भी उत्पन्न मिलता है, जिनके उच्चारण से बलकार कर के (अद्भुतोत्पत्तिः) शत्रु को मारफित कर दिया जाता था । यह भी कहा गया है कि राजा को मन्त्र औपधियों तथा जादू-टोने की सहायता से अपनी प्रजा की रक्षा करनी चाहिए और शत्रु की प्रजा को हानि पहुंचानी चाहिए ।’ इन मन्त्रों द्वारा निम्न काल के देवी-देवताओं का आह्वान किया जाता था जैसे अग्नि-वीरोचन शम्बर, देवक नारद मन प्रमिला आदि (XIV १) ।

बाह्य धर्मों पर आधारित वैदिक धर्म का पालन करते थे जिनके लिए कुंजों के साथ बाजारों में विशेष यज्ञयात्राओं का प्रवच था (II १) । राज प्रासाद में यज्ञ के लिए अलग एक स्थान होता था (इग्यास्तानम्) । नाना प्रकार के सम्प्राप्ति देश-विदेश में वृमन्त थे जिन्हें उद्धतापतप्रवृत्ति कहते थे । तपस्वी तपोवनों में रहते थे (IV ४ II १) ।

अवैदिक सम्प्रदायों में धार्य तथा आजीविक सम्प्रदायों का उल्लेख किया गया है (III २) । उन्हें आश्रय देना वर्जित था ।

इन बातों से यह प्रतीत होता है कि कौटिल्य को बाद क धास्त्रोत्त देवी-देवताओं तथा धार्मिक संस्कारों की अपेक्षा वैदिक धर्म यज्ञ देवी-देवताओं तथा अवैदिक कर्मों तथा जादू-टोनों का अधिक ज्ञान था ।

## अध्याय १२

### आर्थिक परिस्थितियाँ

आर्थिक जीवन : राज्य द्वारा नियंत्रण पिछले विवरण से स्पष्ट हो चुका होगा कि देश के आर्थिक जीवन का बहुत बड़ा भाग राज्य के नियंत्रण में था। राज्य द्वारा जितने समियों को काम दिया जाता था उसका अन्य किसी द्वारा नहीं। देश की कृषि उद्योग तथा व्यापार पर राज्य का नियंत्रण था।

कृषि जैसा कि हम देख सकें हैं राजा की मिट्टी जमीन के रूप में देश की कृषि का बहुत बड़ा भाग सीधे-सीधे राज्य के हाथों में था। यदि कर के रूप में उत्पादन का एक निश्चित अंश मिलता रहे तो खेती के काम में प्रत्यक्ष रूप से राज्य कोई हस्तक्षेप नहीं करता था परन्तु देश में कृषि-उत्पादन को सगठित करना तथा उसे बढ़ाना राज्य का काम था। इसके लिए राज्य नई बस्तियाँ बसाने की योजनाएँ बनाता था। यदि वहाँ आबादी बहुत बनी होती थी तो वहाँ के कुछ लोगों को गए तथा बीरान इलाकों में बसने के लिए प्रोत्साहन दिया जाता था। विदेशवाशियों को देश में आकर बसने में भी राज्य सहायता देता था (मृतपूर्व व मृतपूर्व या जनपद परब्रह्मण्यस्वदेवाजिस्वदेवमनेन या निवेदायै)।

यौव यौव के जितने इलाक़ों में घर (वास्तु) बने होंगे वे उसके अन्तर्गत प्रत्येक यौव क कृषि-जीवन की पूरी व्यवस्था इन स्थानों में होनी थी (१) देश पर वर्पात जिन लोग में चमक बोयी जाती हो (२) पुष्प-वाट वर्पात

फुलबाड़ियाँ (३) फल-बाग फलों के बाग (४) छाण्ड अर्थात् केले तथा गन्ने आदि के रोठ और (५) भुल-बाग, अर्थात् जड़ों जैसे मदारक हस्ती आदि के रोठ (मर्छकहृष्टादि)। इस प्रकार गाँव में अनाज फस-फुल सब्जियाँ मसाले ईश तथा केल सभी चीजों की लेती होती थी (II ९)।

गाँव का कुछ जितना लोककर्म सरकारी गाछों में बर्च होता था उसमें से सीमा-रेखाओं (सोमाबरोधेन) द्वारा बिरी हुई जगह को निकामने के बाद दोप माग में से चीजें लेती थी (१) लेती बाफी (दृष्ट) भूमि (२) बहु बंजर जमीन जिस पर लेती न होती हो (अदृष्ट) (३) ऊँची तथा भूरी जमीन (स्वत) (४) केदार, (५) आराम (बपीचे उपवन), (६) छाण्ड (कनस्यादि क्षेत्रम केस जैसे फलों के बाग) (७) बाट (इस्वादिभूमि, गन्ने के रोठ) (८) बग (जहाँ से गाँव के लिए ईशान तथा अन्य आवश्यक चीजें मिलती थीं, (९) वास्तु (जितनी भूमि पर घर बने होते थे) (१०) शैल (पवित्र वृक्ष), (११) बैबगूह (मंदिर) (१२) सेतुबंध (तटबंध) (१३) श्रमाल (१४) तब (मिसा-गूह) (१५) प्रपा (पीने के पानी का स्थान) (१६) पुष्पस्थान (१७) विपीत (गाँव के पशुओं के लिए चरने का स्थान) और (१८) पथि जितनी भूमि पर छान्न बनी हों) (II ३५)।

तत्कालीन पालि ग्रंथों में भी धाम-नियोजन का वर्णन बहुत कुछ इसी ढंग पर किया गया है। सबसे पहल तो गाँव की लेती की जमीन होती थी जिसके बाद गाँव के मनेछियों के लिए (जातक कथाएँ, III १४९ IV ३२६) या अकरियों के लिए (III ४ १) बाड़े से राजा की हों (I २४) या प्रजा की (I १९४ ३८८) एक पंचायती बरामाह (I ३८८) होती थी। गाँव की तरफ से एक बरबाहा नियुक्त कर दिया जाता था जिसका काम होता था कि वह रात को सब आमदारों को या तो बाड़े में बस कर दे या उन्हें भिन-भिनकर उनके आकरियों की वापस कर दे (I ३८८ III १४९)। उस घोषाक (V ३५०) कहते थे। पशुओं का राख नहीं जगह पर चरने के लिए से आया जाता था (अंगुत्तर निकाय I २)।

बरामाहों के पार गाँव की सीमा के निकट बगीचे होते थे, जैसे राजगूह में श्लेषुवन साकठ में अश्वनवन या आबस्ती में चेतवन।

फिर उससे बाद से जंगल जाते थे जिन्हें साछ मही किया गया था जिनसे गाँव वाले ईशान तथा अपनी आवश्यकता की अन्य छोटी-मोटी वस्तुएँ प्राप्त कर सकते थे (जातक I ३१७ V १)। इस प्रकार के कुछ वर्ग के उदाहरण हैं कीचक का संवहन मन्थ का सीतावन या साकय क्षेत्र का प्राचीन संसदाय जिनके बारे में यह कहा गया है कि उनमें जग्य पशु तथा चोर-डाकू रहते थे जो

उपर से जाने-जानेवाले चाबी (काफिलों) को झूट बेटे से (I १९) (मेरी पुस्तक हिन्दू सभ्यता पृष्ठ २९७-९८) ।

आधिक दृष्टि से गाँवों को इन श्रेणियों में विभाजित किया गया है (१) परिहारक राजा की कृपादृष्टि के कारण दान के रूप में जिसका राजस्व माफ़ कर दिया गया हो (२) आपुत्रीय जो गाँव सैनिक सेवा के रूप में राजस्व देता हो (३) वाम्य-प्रतिकर जो अन्न के रूप में भू-राजस्व देता हो (४) बन्धु-प्रतिकर अर्थात् पसुओं के रूप में (जैसे बूख देनेवाली गायों को दान देनेवाले बीसों या ऊन के छिए में बँधे तथा बकरियों के रूप में) (५) हिरण्यप्रतिकर अर्थात् सोने चाँदी या लोहे के रूप में (६) कृष्यप्रतिकर अर्थात् धान की पैदावार के रूप में और (७) विष्टि-प्रतिकर अर्थात् धन के रूप में राजस्व देने वाले गाँव (II ३५) ।

गाँवों की छत्रछाँ में विभिन्न प्रकार के जाबलों कीदो (कीदब) ठिठ निर्भ तथा केसर (प्रियापु) मूंग (मुद्ग) उड़द (माष) मसूर, कलुत्त आदि दालों तथा गेहूँ (पोषुम) कछाय अलसी (अलसी) सरसों (सरप) घाह मूक आदि सब्जियों और केला कद्दू लीची कुम्भाड़ अमूर (मुद्गीका) आदि फलों तथा गन्ने का उल्लेख किया गया है (II २४) ।

सरकारी कृषि-क्षेत्र : ये आवस्य कृषि-क्षेत्र देश की कृषि में सुधार करने के लिए बहुत उपयोगी थे । विभिन्न प्रकार की फसलों बोने के लिए बीज यही तैयार किए जाते थे । सरकार के स्वयं अपने फलों फसों तथा सब्जियों के बाग थे और कपास (कर्पास) तथा जूट (जौम) जैसी वाणिज्योपयोगी फसलों की सेती भी सरकार की तरफ से की जाती थी (II २४)

खेत-मजदूर नृनिर्णीत खेत-मजदूर (विष्टि) होते थे । इन्हें मुफ्त मोहन तथा पोड़ा-भा नकद बैठनमी मिलता था । ये बरेलू नीकराक रूप में काम करते थे । साधारण मजदूर (कर्मकर) भी होते थे जो मजदूरी लेकर काम करते थे । कुछ लोग एव भी होते थे जो अपने जापकी बातों के रूप में देव देते थे । अतः ये किसान बाने व अर्थात् वे किसान जिनके पास अपनी जमीन होती थी या राज्य की पैदावार का कुछ हिस्सा समान के रूप में देकर देती करते थे । राज्य इनसे अपने हिस्से या भू-राजस्व के रूप में पैदावार का छुट्टा भाग ले लेता था ।

यह बात ध्यान देने योग्य है कि उस समय के बीड़ साहित्य में इस बात को आदर्श माना गया है कि जमींदार को स्वयं अपनी भूमि पर देती करनी चाहिए और किसी भी दया में उससे अपना सम्बन्ध नहीं तोटना चाहिए । बीड़ साहित्य में खेत-मजदूरों अथवा मजदूरी करने वालों को समाज पर एक कर्मक बनाना गया है और उन्हें दामों से भी सीखा स्थान दिया गया है (बीड़ निबन्ध)

I ५१ अंगुत्तर निषाध I १४५ ७०९ विस्मिन् पञ्च १४७ ३३१) आतक कषाओं में (उदाहरण के लिए I ३३९) में उमरी निषा की गई है कि हट कर के विमान अपने घरों पर अपने खनिहाना का जामी छाड़कर राज-संग्रह से सम्बन्धित दूजीपतियाँ की जागीरों पर मजदूरा का रूप में काम करें और भूमिहीन छठ-मजदूरों को सभ्या में बुझ करें। इस सामाजिक पन का बिहान माना गया है।

पशुधन गाँव के पशुधन में गाँव जैसे बकरियाँ भेड़ें गधे ज़ू सुभर तथा कुत्त (IV १ में घुनका शब्द का प्रयोग किया गया है) (V २)। हाँवे थे।

राज्य की ओर से पशुपालन-क्षेत्रों पशुप्रजनन क्षेत्रों तथा दुग्ध-पालाशों की व्यवस्था की जिनमें आवश्यक कर्मचारी जैसे पालक (बरवाहा) विगडारक (मैस बरानेवाला) बोहक (दूध पुझनेवाला) मन्थक (दूध मचनेवाला) नियुक्त किये जाने थे। इनके अतिरिक्त गिकारी (सुरक्षक) तथा गिचारी कर्तों का रक्त वाले (धममिन (II २९ II ३४)) हाँवे से आकरगाहा को जगती जानवरों में सुरक्षित रखते थे।

पशुपालन क्षेत्रों में बछड़े बड़िया बील बांस हानवाने बील मोड़ तथा मैसे पाये जाने थे। इनमें जंगली मवेशियों की पालतू भी बताया जाता था।

कुक्कट-पालन भी हाता था (V २)।

सिंचाई सिंचाई का प्रबन्ध राज्य की ओर से किया जाता था। सिंचाई का अलग-अलग साधनों के अनुसार जो बल-जर समूह किया जाता था वह राज्य की आय का एक महत्वपूर्ण स्रोत था। अलग-द्वारा की महामता से राज्य पानी के वितरण पर नियंत्रण रखता था। साम्राज्य तथा गहने स्वचाकर अस के नये स्रोतों का निर्माण करने की जिम्मेदारी भी राज्य पर ही थी।

उस समय के पालि ग्रंथों में (विशेष रूप से वास्तव-कषाओं में) इस बात का उल्लेख मिलता है कि गाँव की खेती की जमीन अलग-अलग लोगों के बीच बँटी हुई थी और सब के साथ सहकारी सिंचाई के लिए जोड़ी गई गहनों द्वारा एक दूसरे से अलग कर दिए गए थे (V ३३६ II ३६७ I ४१२ (असवाल द्वारा सम्पादित संस्करण))। मयक के क्षेत्रों की गुलना था इस प्रकार सिंचाई की माशिन्यों द्वारा आयताकार सबबा टेढ़े-मढ़े क्षेत्रों में बाँट दिए गए थे जड़ से अपन मिश्रणों के बन्नों से की है जो फटे-पुराने कपड़ों के छोटे-छोटे टुकड़ों को जोड़कर बनाए जाते थे ((विनय-II २ ७-९)।

गाँवों में सार्वजनिक निर्माण-कार्य हर गाँव में परवत्त समाजोपयोगी स्थान तथा सामाजिक संस्थाएँ होती थी। उनमें आराम (विषामगृह) भग्ना (तालाब)

तत्र (मिता-गृह) पुष्पत्वात्त शीर्ष (पूजा-गृह) शैवगृह (मन्दिर) और समीत  
नृत्य तथा नाटक (प्रेक्षा) के लिए सार्वजनिक मनोरंजन-अवसम तथा सार्वजनिक  
बोली-कला (प्रबहण) (III १०) होते थे। कुछ इमारतें गाँव की घोमा बढ़ाने  
के लिए भी होती थी (ग्रामशोभा:)। जैसा कि हम देख चुके हैं, ये सार्वजनिक  
निर्माण गाँवबासी के समुक्त प्रयास (सम्मुख) द्वारा तथा उनके बीच सहकारिता  
के सामूहिक समझौते (समय) द्वारा होते थे (III १ II १)। बी कोई भी  
इस प्रकार तय किए गए सामुदायिक कार्यों में योग नहीं देता था उसे बड़ भिन्नता  
था (III १०)।

ग्राम-सेवा गाँव की तरफ से बेतन बेकर कुछ कर्मचारी रखे जाते थे। इन्हें  
ग्रामभूतक कहते थे। हमें इस प्रकार के लोग होते थे जैसे बढ़ई (कुट्टक)  
कोहार (कर्माट, कर्मकार) कुम्हार, नाई (नापित) जो अनिवार्य रूप से हर  
गाँव में होता था (V १ V २) और चौबी (II, १)। हर गाँव में जमीन  
खोदनेवाले (मेवक) तथा रस्सी बटने वाले (रम्बुकर्तक) होते थे। गाँवों के निम्न  
लिखित पदाधिकारियों को जमीन भी मिली थी पर वे इस जमीन की किसी छूट  
को नहीं दे सकते थे (१) जग्गल (सबसे सुवर्ध्याज) (२) तक्ष्यामक (गाँव  
का मूनीम) (३) घोष (४) ज्वानिक (५) क्षत्रिकम्ब (हामियों को सामने  
बाला) (६) चिकित्सक (७) जडवदमक (बोझों को धापनेवाला) (८)  
संपादक (हरकारा) (II १)।

गाँवों के मनोरंजन गहुरा तथा बाँकों में बोलों की बमह कुछ अन्य कर्म  
चारी भी होते थे जो प्रतिदिन के सार्वजनिक मनोरंजन का प्रबंध करते थे। विभिन्न  
कोटियों के इन कलाकारों में निम्नलिखित होते थे (१) नट (अभिनेता) (२)  
कर्मक (३) मायक (४) बावक बीजा बन्ग, मूर्धन बाहि बाजे बजाने वाले  
(५) बान्नीबन (जलकुल गाथा में बोझीय भाषण देने वाला या कविताएँ पढ़ने  
वाला) (६) जघीलन (नृत्य-विशेषज्ञ) (७) पन्थक (नट) (८) सीमिक  
(बाहुमग) (९) चारण (भाट) (१०) बाठक (कविताओं का पाठ करने  
वाला) (११) बंज बंमूह (गर्बी) (१२) मात्स्यसम्पादक (मात्सी) (१३)  
संवाहक (मात्स्य करनेवाला) (१४) चित्रकर, (१५) वैदिक (प्रेम-कला का  
शिक्षक) और (१६) प्रक्षित-नामविद् (विचारों को पानेवाला) (II २७)।  
इन सब लोगों को सरकार की ओर से बेतन मिलता था।

ग्राम-अवस्था गाँव तथा उसके कल्याण के सम्बन्ध में राज्य के कर्तव्य संशोध  
में इन प्रकार थे (१) मू-अम्पति की सीमाएँ निर्धारित करना (सेनु) (२)  
अव्यय स्थानों में जाने के लिए मार्ग बनवाना (पविर्तकमज्) (३) गाँव की  
सुदरता (ग्राम-शोभा:) तथा रक्षा के लिए आवश्यक निर्माण-कार्य करना (III

१०)। गाँव की रक्षा का काम गाँव की पुलिस व हथियारों में था जिसके लिए निम्न ब्रिटिश बलों में से सहाय भर्ती किए जाने थे (१) बागुरिक (आमदार पकड़ने वाला) (२) राजर (भील) (३) पुलिस (बिरात) (४) लण्डाल मोर (५) मरथवाड (बनवासी) (II १)। गाँवों के चारों ओर परमार तथा लण्डाली के गैरों की एक अहमदाबादी (उपनाम) बनवाकर भी गाँव की रक्षा करने की व्यवस्था थी (III १०)।

आमदार-कर्मियों में यह भी बताया गया है कि गाँव के चारों ओर एक बीमार होती थी जिसमें फाटक लगे होते थे (ग्रामशाला) (I २३९ II ७६ १३५ III ९)।

गाँव के चारों ओर (ग्राम-सेवा) के चारों ओर बाड़े लीचकर (I २१५) जाल बिछाकर (I, १४३ १५६) तथा खेतों के उपचारों की सहायता से (II ११० IV २७७) हानिकारक कीट-पतंगों तथा पशु-पक्षियों से उनका रक्षा की जाती थी। कौटिल्य ने इन सब उपायों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है।

इस प्रकार गाँवों का जीवन निजी सम्पत्ति जीवन तथा सम्पत्ति की सुरक्षा संचार के मामलों तथा सार्वजनिक निर्माण-कार्यों पर आधारित था।

अंतर भूमि: वन-सेवा खेती की जमीन का प्रबन्धन था इस प्रकार कर दिया जाता था पर इसके साथ ही गाँव के बाहर बजर भूमि (अकृष्य भूमि) के विस्तृत क्षेत्रों में भी गाँव के पशुओं के लिए चरागाह (बिबीत) बनाकर तथा विभिन्न प्रकार के वन लगाकर उनका पूरा-पूरा उपयोग किया जाता था। खेतों के बाहर पहले से चरागाहें होती थी फिर बाह्यणों के लिए खेतों का अध्ययन करने तथा सोम दत्त करने के लिए वन में एकान्त स्वाम (अन्य सोमदत्त) और उप-स्वामों के उपस्था करने के लिए तपोवन होते थे।

इसके बाद बर्गलों का काम आरंभ होता था। सबसे पहले वह सुरक्षित अंगक होता था जो केवल राजा के अधिकार होने के लिए (विहार) होता था फिर सामाजिक बन आते थे।

उनमें उपलब्ध होनेवाली वस्तुओं के आधार पर उन्हें अलग-अलग धर्मियों में बाँट दिया गया था जैसे बाघ (इमारती लकड़ी) बेंग (धातु) बस्ती (बेत) अम्क (छाल) रज्जु (रस्सी बनाने के काम जानेवाले रेशे) पत्र (लिखने की सामग्री जैसे ताड़-पत्र या भोजपत्र ताक-भूर्ज-पत्र) पुष्प (रंगने के लिए फूल जैसे किन्नुक कुतुम्भ या कंकुम्भ) मीष (जड़ी-बूटियाँ) विप (II १७) ईश्वर तथा पशुओं का चारा (काष्ठ-वस्तु) हाथियाँ और इमारती लकड़ी के जंगलों का विशेष ध्यान रखा जाता था। पुरुष के लिए हाथी बहुत जरूरी होते थे और घोड़ों तथा किन्नोरों के निर्माण की सामग्री के लिए इमारती लकड़ी के जंगलों का





कपास, तेल, चाकर, तथा दूध-मक्खन आदि के सरकारी उद्योग भी थे (II १) ।

मदिरा बनान तथा उस बेचने का सारा काम राज्य ने अपने हाथों में रखा था । आयुष और नाबें तथा जहाज बनाने के उद्योग पर भी राज्य का ही एकाधिकार था ।

सिक्के ढालने का अधिकार केवल राज्य को था । राज्य के पदाधिकारी सब साधारण से खोना या चाँदी लेकर उसके सिक्के ढाल देते थे और इसके लिए वे कुछ इनाई बसूल कर लेते थे । टकसाल के प्रधान अधिकारी को लक्षणाभ्यस्त कहते थे ।

बरीगृहों में भी कारखाने होते थे जिनमें बवियों से काम लिया जाता था । राजकीय कटाईधर कटाई तथा बुनाई दानों ही का कारखाना होता था जिसमें कपास रेशम तथा जूट का सूत बपड़ा कचब (बम) रस्मियाँ कम्बल (भास्त रय) तथा परदे (भावरन) तैयार किये जाते थे । इसमें गिराभित औरताँ को काम दिया जाता था । परदेवासी औरतों को कारखाने की औरतों के हाथ गूँथ कातने का काम भिजवा दिया जाता था ।

राजकीय कारखानों में बाकी सब अधिक ठेके पर रखे जाते थे । मजदूरी रोकना अपराध था जिसके लिए ईँठ की व्यवस्था थी ।

राजकीय क्षेत्रों जंगलों तथा पानों की पैदावार राज्य के गोदामों (कोष्ठागार) में जमा की जाती थी । इसका उपयोग करने के लिए राज्य को अपने कारखाने चलाने पड़ते थे । ये सब चीजें जमा करने की ज़रूरत इसलिये भी पड़ती थी क्योंकि राज्य की राजस्व मकद (हिरण्य) नहीं बल्कि वस्तुओं के रूप में मिलता था इसलिये सारे देश में इस प्रकार के कोष्ठागारों की व्यवस्था आवश्यक थी जहाँ ये चीजें रखी जा सकें । इस प्रकार पड़ते गोदामों की स्थापना हुई, फिर कारखाने बने ।

निजी उद्योग देश के सारे उद्योग राज्य के हाथों में नहीं थे । बहुत बड़ा क्षेत्र निजी कारोबार करनेवाले उद्योगपतियों के हाथ में था ।

स्वामाधिकार्य से कौटिल्य ने राज्य द्वारा चलाए जाने वाले उद्योगों की और अधिक ध्यान दिया है पर अन्य ग्रंथों में उद्योगों में निजी कारोबार की भूमिका पर प्रस्ताव डाला गया है । इन ग्रंथों में सबसे महत्वपूर्ण अतक कपाई है । ईसा पूर्व तीसरी तथा दूसरी सताब्दियों में भरहुत तथा साँची की मूर्तियों में विस्मयकारों ने इन्ही कपाओं के विषयों का चित्रण किया है । राज बेबिड के शब्दों में इन अतक कपाओं में प्राचीन इतिहास सुरक्षित है । उनमें उस समय के अठारह मुख्य इस्त्रक्षिष्यों का उल्लेख किया गया है, जैसे अकड़ी का नाम करनेवाले लोहे

तथा अन्य बातों का काम करनेवाले जगड़ा कमाने वाले चित्रकार, पत्थर का काम करने वाले हाथी-दाँत का काम करने वाले बुनकर, हथवाही, बीहरी बहुत मुख्य बातों का काम करने वाले कुम्हार, अनुप-बाण बनाने वाले । इन हस्त शिल्पों का संगठन ब्रेजियो के रूप में किया गया था । प्रत्येक श्रेणी का एक प्रमुख अर्थात् मुखिया और एक चेटरक होता था । हमें ब्रेजियों के ऐसे सबों का भी उल्लेख मिलता है जिन सब का एक ही मुखिया होता था जिसे माण्डगारिक कहते थे । उद्योगों की तरह व्यापार का संगठन भी व्यापारियों की ब्रेजियों के रूप में किया गया था जिनके प्रधान को सैद्ध कहते थे । शाबली का जगजगत् पिट्ठक प्लातेद्धिठ था । वह एक ऐसे बालिष्ठ सब का प्रधान था जिसके आधीन ५० सैद्ध अर्थात् उस सब में सम्मिलित ब्रेजिया के प्रधान थे । हाथों के रास्तों में सुट जाने का कठरा चूना था इसलिए व्यापारी इनका संगठन सङ्घारिठा के आधार पर करत थे । विभिन्न व्यापारी अपनी गाड़ियों अपने गाँव तथा अपने आश्रमियों को एक में मिलाकर एक समबाय वाली कम्पनी बना लेते थे जिसका एक नायक होता था जिसे सात्वबाहू कहते थे । वह यह बताता था कि कहाँ पड़ाव डालना चाहिए, कहाँ जानवरों को पानी पिठाना चाहिए, किस मार्ग से चलना चाहिए, कहाँ पर नदी को पार किया जा सगता है और कहाँ कठरा है । साब के कठ और अधिकारी भी होते थे जिन्हें बलनिम्प्यवक कहते थे जो बल पर मार्ग-दर्शन करते थे । वे पथ प्रदर्शकों के रूप में काम करते थे और यात्रा के बीरान में अनादृष्टि अकाल जंगली जानवरों डाकड़ों तथा पिठाचों से यात्रियों की रक्षा करत थे । इसी प्रकार हमें समुद्री व्यापार करनेवाले कई चीरापटों के मिलकर एक जहाज से केने या व्यापारियों के बीच गाँव के पाड़े के सम्बन्ध में संयुक्त रूप से कोई करम उठाने के उल्लेख भी मिलते हैं । साब साबों में भी व्यापार करते थे । जैसे बाबुल की चिड़ियों के निर्यात का व्यापार या 'उत्तर' से बनारस में घोड़ों के आयात का व्यापार, कई स्वाम ऐम भी थे जो किसी विशेष उद्योग के केन्द्र बन गए थे । हम कुम्हारा बड़वों लूहरीयों यहाँ तक कि जानवर पकड़ने वाला के गाँवा के उल्लेख पढ़ने की मिलते हैं । महरों में हाथी-दाँत का काम जगजगत् की मड़के (बीबी) रवरेजों की सड़के नसगों की मड़के या बुनकरों की बलियाँ (ठान) होती थी । कुछ हीन-निष्ठ अर्थात् गुच्छ पेसे भी थे जिनने अपनी जीविका कमानेवाले लोग जलम रल्ले खाते थे जैसे चिकारी तथा जानवर पकड़नेवाले मसुर, कमाई, जगड़ा कमानेवाले या सँदेरे गट नर्तक गाँवक मूँच की बीजे बुननेवाले या रब बनानेवाले जो अधिकांशतः आदिवासी होते थे (हिंदू सभ्यता पृष्ठ १०१ १०७ १०८) ।

(हिन्दी संस्करण से)

**व्यापार :** व्यापार के सम्बन्ध में राज्य के ऊपर एक विशेष उत्तरदायित्व था। उसकी आय इस पर निर्भर थी। ऊपर बताई गई परिस्थितियों के कारण उसका कारखानों में निरन्तर बहुत बड़ी मात्रा में जो विविध प्रकार का माल एकत्रित होता रहता था उसे बेचकर लाभ कमाया जाता था। इस प्रकार राज्य देश में मूल्य बढ़ा व्यापारी या और कम स्वयं अपने हितों की रक्षा के लिए देश के पूरे व्यापार पर नियंत्रण रखना पड़ता था।

व्यापार का नियंत्रण राज्य द्वारा कीमतों के नियंत्रण पर आधारित था। नियंत्रण की यह व्यवस्था कुछ अनिवार्य उपबन्धों पर आधारित थी।

कोई माल अपने उत्पादन के स्थान पर, क्षेत्रों में या कारखाने में नहीं बेचा जा सकता था। उन्हीं नियत मंडियों (पब्लिकहाउस) में ले जाना पड़ता था जहाँ व्यापारी को यह बताना पड़ता था कि कितना माल है, वह किस कोटि का है और उसके माल की कीमत क्या है। इस माल की जाँच करके उसे बहीखातों में चढ़ा लिया जाता था।

हर व्यापारी को अपना माल बेचने के लिए लाइसेंस लेना पड़ता था। बाहर से आनेवाले व्यापारी को इसके अतिरिक्त पासपोर्ट भी लेना पड़ता था।

आयिज्य का बन्धन (एम्पायर्स) शुल्कनामा में दर्ज किए हुए मूल्य के अनुसार माल की बोल कीमतें ले कर देता था। फुटकर कीमतें ठी करते समय वह कम लाभ की मुंजाई दे सकता था।

कोरी से माल ले जाने या माल में किसी प्रकार की मिश्रण करने पर कठोर बंद किया जाता था।

छुट्टेबाजी और कीमतें बढ़ाने-घटाने के लिए सारा माल दवा लेने की इजाजत नहीं थी।

मजदूरी बढ़ाने के लिए मजदूरों की इच्छाओं खींचे जाते थे।

अनधिकृत कीमतों तथा व्यापार में जोसेबाजी से जन-साधारण चाहें तथा उपभोक्ताओं की रक्षा करने के सम्बन्ध में राज्य को बहुत बड़े तथा कष्टसाध्य उत्तरदायित्व को निभाना पड़ता था। यह पता लगाने के लिए कि किसी व्यापारी ने अपने माल के बारे में कोई झूठ बात तो नहीं लिखवायी है, उसे व्यापार-मार्गों पर बहुत बड़ी संख्या में अपने मृत्पात्र या मंडियों के निरीक्षक नियुक्त करने पड़ते थे और अन्य व्यापारियों की इस बात की सूचना देनी पड़ती थी (II २१)।

कीमतों पर राज्य के नियंत्रण के अतिरिक्त माप-तोला पर भी राज्य का नियंत्रण था। सरकारी मापवज्र धार्मिक उपयोग के मापवज्र से थोड़ा-सा कम होता था जिस अंतर के कारण राज्य को बैठे-बिठाए कुछ आय हाँव जाती थी जो ५

प्रतिमत प्यारी के बराबर होती थी। यह उसी प्रकार की आय थी जैसी सिक्कों की दराई से होती थी।

आयात तथा निर्यात-कर चुनी तथा उत्पादन-कर के रूप में व्यापार पर प्रति मद टैक्स लगाया जाता था। कर चुकाने के लिए व्यापारियों की अनेक मंजिलों पर रक्ता पड़ता था। बिदेसों से आनेवाले व्यापारियों से सीमांत-कर, मार्ग-कर (बर्तनी) तथा महामूल और नगर के फाटक पर चुनी वसूल करके उनका मूमाश्रय वसूल कर कर लिया जाता था। नगर के द्वार पर मुस्कदाका के पदाधिकारी कड़ा पहचान करते थे और इस उद्देश्य से मुस्कदाका में एक और कानून से सब निकलने की कोशिश करने वाले व्यापारियों को बंदी बनाकर रखने के लिए भी एक स्थान होता था।

परन्तु वहाँ व्यापार पर इस प्रकार टैक्स लगाया जाता था वहाँ उन्हे उस पुराने जमाने में जब हर जगह जीवन तथा सम्पत्ति की सुरक्षा का कोई आश्वासन नहीं था सरक्षण के आश्वासन के रूप में सुविचार्य भी दी जाती थी। यात्रा के पूरे मार्ग में मार्ग के यातायात की रक्षा की जाती थी। यदि यातायात के दौरान में कोई घति होती थी तो उस स्थान के सरकारी पदाधिकारी को वहाँ से मुबारके समय छति हुई हो इसकी क्षतिपूर्ति करनी पड़ती थी। मार्ग में यह जिम्मेदारी उस गाँव के मुखिया (ग्रामस्थानी या ग्राममुख्य) पर होती थी गाँव के बाहर बिबिस्ताध्यक्ष की और उसके क्षेत्र के बाहर जिम्मेदारी सरकारी पुलिस की होती थी जिस ओर-एकदुक कहते थे उसके बाद सीमा-स्थानी अर्थात् सीमांत प्रदेश का प्रबन्ध होता था।

उस जमाने में सारे देश में फैले हुए लटेरों के गिरोहों (बोर-मच) से व्यापार की रक्षा करनी होती थी। उन्पाती मन्त्र बासिवा (बैसे किरात) और वन में रहनेवाले जंगली जाय (आदिवासी) सब लूटपार पर उताक रहने थे (VII, १०)।

मार्ग की पुलिस का अस्त्रेण हम पहल कर माण है। परन्तु हर मार्ग की चोरों (छप्कर) में राजधानी करण के लिए निकायी और कसे पालनेवाले (सूम्बक-रक्षामिन) होते थे जिनका अस्त्रेण भी पहले किया था कहा है। उनका चोरों से राजधानी करण का तरीका यह होना था कि वे किसी ठेकी वगैरह पहारी या पेड़ में वहाँ उन्हें कोई बैग न सके राख या डोल बजाकर बायबासियों को बेता-बर्ती देन थे या तेजी में भागकर उन्हें भुबना बते थे (II ३४)।

व्यापार मार्ग व्यापार अपने मार्गों पर निर्भर था। जैस किस्तुत देश के लिए मार्गों की व्यवस्था एक बहुत बड़िन समस्या थी।

प्रेट-टुक रोड युनामियों ने उत्तर-पश्चिमी सीमांत से पाटलिपुत्र तक जाने वाले राजपथ का उत्थेय किया है। यही उन जमाने की हीट टुक रोड थी जो

१०००० स्टेडिया अर्थात् १६०० मील लम्बी थी (स्त्राबो \V १ २)। हम यह भी देख चुके हैं कि मेगास्थनीज ने भी उन सरकारी पदाधिकारियों का उल्लेख किया था जो सड़कों का प्रबंध देखते थे और चाड़ी-चोड़ी घुरी पर मोड़ों तथा घुरियों की सूचना देनेवाली ठग्नियाँ लगाई जाती थी।

यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि मेगास्थनीज ने ठगर-वर्गियों की संख्या से पाटलिपुत्र आनेवाले राजपथ के बारे में यह लिखा है कि यह सड़क पहलू से सीधे थी।

भारत में प्रवेश करने पर सीमांत से पाटलिपुत्र तक आनन्दास दस राजपथ को देखकर, जिस पर जनन ध्वज के पालन के लिए उसने स्वयं यात्रा की होगी मेगास्थनीज आश्चर्यचकित रह गया था। कहा जाता है कि यह सड़क माठ मार्ग में बनाई गई थी। इन आठ भागों की सम्बाँध हाइर्फीसिस (ध्यास) नदी की सिक्कर के बाएँ तथा डायोनेटस नामक सर्वेक्षण अधिकारियों ने नापी थी और कहा जाता है कि ध्यास से बंधा एक की सम्बाँध, सेस्पुस सिक्कर के बाँध से पर मेगास्थनीज तथा अन्य यूनानी यात्रियों ने नापी थी। इन आठ भागों का विवरण इस प्रकार दिया गया है (१) प्यूकेलाओटिस (संस्कृत में पुष्करावती) नगर की राजधानी आधुनिक बाराहना) से लक्षसिंहा तक। (२) लक्षसिंहा से सिंधु नदी को पार करके हाइरेस्पीज (सेलम) तक। (३) वहाँ से हाइर्फीसिस (ध्यास) के किनारे उस स्थान तक जहाँ सिक्कर ने अपनी बेहिस बनवाई थी। (४) ध्यास से हेसिड्रस (सतलुज) तक। (५) सतलुज से इपोमेनीज (यमुना) तक। (६) यमुना से हस्तिनापुर होती हुई गंगा तक। (७) गंगा से रोडोक्रा नामक स्थान तक (कहा जाता है कि यह वही स्थान था जहाँ आजकल अनूप शहर के निकट उमाई नामक स्थान है)। (८) रोडोक्रा से कस्मिनेक्सा (कदाचित् काव्यकुब्ज अर्थात् कमीज) तक। (९) कमीज से प्रयाग में बंधा तथा यमुना के सङ्गम तक। (१०) प्रयाग से पाटलिपुत्र तक। (११) पाटलिपुत्र से गंगा के मुहाने पर कलाचित् ताम्रलिप्ति तक। इन सड़क के किनारे हर मील पर एक पत्थर लगा हुआ था जिस पर इस सड़क की धाराओं तथा विभिन्न स्थानों की घुरी अंकित थी। इस मार्ग की जिम्मेवारी सार्वजनिक निर्माण विभाग के पदाधिकारियों पर थी जो इसकी देखभाल करते थे इसकी मरम्मत करवाते थे और हर इस स्टेडिया की घुरी पर पत्थर तथा लिखातुल्य ठग्नियाँ लगावाते थे (प्लिनी नेचरल हिस्ट्री VI २१)।

बीज प्रबंधों में मार्गों का वर्णन प्राचीनकालीन बीज साहित्य में यात्रायात्र के मार्गों के विषय पर काफी प्रकाश डाला गया है।

अन्तर्राष्ट्रीय मार्ग : जिस के भीतर व्यापार यात्रियों द्वारा तथा सार्व के रूप में

होता था। हमें इस बात का उत्प्रेषण करने की भिन्नता है, कि अनापदिष्टिक के साथ सावस्वी (सावस्वी) से दक्षिण-पूर्व की ओर राजगृह (राजगृह) तक जाते और वहाँ से वापस लौटते थे (अगम ३०० मील) (आतक कथार्थ I १२ ३४८)। ये मार्ग 'सीमा' तक कदाचित् गंधार की ओर भी जाते थे। (आतक-कथार्थ I ३५७ तथा उसके बाद के पृष्ठ)। नदियों को पार करने की सुविधा की दृष्टि से कदाचित् यह मार्ग कुशीनारा तक पर्यन्त की तरहट्टी में होकर जाता होता। कुशीनारा और राजगृह के बीच रास्ते में बाण्ड्य बयह टहरने के स्थान (याम अर्थात् बयह) से जिसमें बेसाकि (बेसाकि) नामक नगर भी था इस प्रकार बर्मोपरेम के लिए महात्मा बुद्ध की अंतिम यात्रा के किञ्चित् मार्ग-विवरण के अनुसार केवल एक बयह पटना में गया नहीं पार करनी पन्ती थी (दीपनिकाव II सुत्ता ३३३ ८१ तथा उसके बाद के पृष्ठ)।

एक दूसरा महात्त्वपुत्र मार्ग सावस्वी से दक्षिण-पश्चिम की ओर पविट्टान (पविट्टान = पैठन) तक जाता था जिस पर रास्ते में छ पञ्चम पर्वते थे (सुत-निकाव १ ११ १३) और कई बार नदियाँ पार करनी पड़ती थी। हमें इन प्रश्नों में इन बातों का उत्प्रेषण भी मिलता है कि पना नदी में मार्ग चहुँदाति तक (विमय सुत, III ४०१) और यमुना नदी में कोसम्बी तक (विमय सुत III ३८२) जाती थी। उस समय में पुल नहीं होते थे केवल ऐसे स्थान हाते थे जहाँ नदियाँ की पार पार किया जा सकता था या फिर नदियों को पार करने के लिए बाट होते थे (आतक कथार्थ, III २८८)। मनु ने माहिमा के बस्तों का उल्लेख किया है (III ४ ४) तथा उसके बाद के पृष्ठ। पुल (तैलु) नहीं होता था बल्कि केवल नदी के किनारे बना हुआ तटवर्ष होता था।

एक तीसरा मार्ग पश्चिम की ओर सिन्ध तक जहाँ बोरे और गच्छे बहुतायत से पाए जाते थे (आतक कथार्थ II १२४ १७८ १८१ II ३१ २८७) और मोर्षीर तक (विमल बरु (दीपा) ३३९) और उसके बरकराहों तक जाता था जिसकी राजधानी रोह (आतक कथार्थ III ८७०) मगधा रोह (दीपनिकाव, II २३५ दिव्यावधान ५४४) थी। हमें बल-मार्गों से 'पूर्व तथा पश्चिम' जाने वाले मार्गों (आतक-कथार्थ I १८ तथा उसके बाद के पृष्ठ) तथा रेगिस्तानों के पार जाने वाले मार्गों का उल्लेख भी मिलता है। इन रेगिस्तानों को राज-पुत्राना के रेगिस्तान की पार करने में कई दिन लग जाते थे वे काफ़िले राज के समय मधनों से दिया का पना मगधे हुए बल-मार्गदर्शक (बलमिध्यामरु) (आतक-कथार्थ, I १०७) के नग्न में जाना करने थे।

पश्चिमी बंदरगाहों के पार व्यापारिक बल से जोमल होकर महासागर पार बाण्ड्य (बाण्ड्य) के व्यापार करने थे।

अंत में उत्तर-पश्चिम में बहु बृहद् व्यापारिक जल-मार्ग था जो तशगिस्त और यमा की बाटी के साक्षेत् साबरजी बनारस तथा राजगह आदि नगरों से होता हुआ भारत और मध्य तथा पश्चिमी एशिया के बीच सम्पर्क स्थापित करता था (विनय II १७४ महावग्य VIII I १) । चूँकि यह मार्ग बहुत बामू या इमलिए इस पर यात्रा करने में कोई घतग मही था । इस बात के उल्लेख भी है कि अनेक विद्यार्थी बिना किसी को साथ दिए और निहत्थे विद्योपार्जन के लिए (तशतक-रुसिमा (तशगिस्त) की यात्रा करते थे (आतक-कपाए, II २७७) ।

समुद्री व्यापार उस समय में समुद्रों के रास्ते जिनपों के साथ आ व्यापार होता था उसके भी कुछ प्रमाण मिलते हैं पर ये प्रमाण बहुत ही थोड़े हैं । उदाहरण के लिए इस बात के उल्लेख मिलते हैं कि राजकुमार महाजनक समुद्र के रास्ते जम्पा से सुवन्नमूमि तक (आतक-कपाए, VI १४) और महिन्द्र पाटलिपुत्र से तामकिलि और वहाँ से लंका यमा वा [विनयसुत III १८८ समन्तपामादिक] । एक जगह इस बात का भी बर्नन मिलता है कि राजस्व अदा न करनेवाले बड़इयों का एक पूरा गाँव राज के समय एक "विशासक जलपोत" में बैठकर बनारस से मंगा के रास्ते समुद्र की ओर भाग निकला था (आतक-कपाए, IV १५९) । एक मोम्य पोत-संचालक जहाज पर सुरक्षित रूप से "समुद्र पार से भारत जानेवाले यात्रियों को नदी के रास्ते बनारस तक" ले आता था (आतक-कपाए, II ११२) । इस बात का भी उल्लेख है कि व्यापारी भारत के समुद्रतट के किनारे-किनारे भटकछ (भड़ोंच) से सुवन्नमूमि तक चले जाते थे (आतक-कपाए, III १८८) । रास्ते में वे लंका के एक बहरमाह पर ठहरते भी थे (आतक-कपाए, II १२७) । जब कोई नया जहाज आता था तो उस पर लगे हुए भाग से जाहट्ट होकर सैकड़ों व्यापारी उसे लीवरने के लिए वहाँ जमा हो जाते थे (आतक-कपाए, I १२२) । उस समय के जहाज इतने बड़े होते थे कि उनमें सैकड़ों यात्री बैठ सकते थे । इनमें दुःख में पीसकर दूब जाने वाले जहाज पर बैठे हुए ५० व्यापारियों (आतक-कपाए V १२८ I ७५) और सुप्ताक के सुरक्षित संचालन में यात्रा करने वाले ७० व्यापारियों (आतक-कपाए, IV ११८) (हिंदू सम्मता पृष्ठ १ २ १०४) के उल्लेख पढ़ने की मिलते हैं ।

संस्कृत ग्रंथ पाणिनि प्रथो में एक व्यापारिक जल-मार्ग के अस्तित्व का जो प्रमाण मिलता है उसकी पुष्टि पाणिनि द्वारा उत्तरपथ (V १७७) के उल्लेख से होती है । पाणिनि ने उत्तरपथ से होकर जानेवाले (उत्तरपथेन गच्छति) यात्रियों और इस मार्ग द्वारा लाये भाग (उत्तरपथेन आहृतम्) का उल्लेख किया है ।

स्त्राबो के अनुसार, सिकंदर के जमाने में अक्सस (जामू) नदी में नावें बड़ी आसानी से चल सकती थीं और इस प्रकार पश्चिम की ओर जाते समय भारत



जानेवाला मार्ग इस नदी के रास्ते कैस्पियन सागर तक पहुँचाया जाता था। यह कि बामिगटन ने बताया है (कामर्सन विश्वविद्यालय रोमन एम्पायर ऐन्ड इंडिया २१) पश्चिम से भारत तक जाने के तीन प्राकृतिक मार्ग थे (१) जहाँ अफगानिस्तान के पहाड़ काबूल नदी के उद्गम के ठीक उत्तर में बहुत कम चौड़े जाने हैं और यमुना तथा सिन्धु नदी की घाटियाँ के बीच में केवल हिन्दुकुश तमाम्ना पड़ जाती है (२) पश्चिम तथा दक्षिण-पश्चिम में ५ मील दूर पर अफगानिस्तान के पर्वतों का क्रम समाप्त हो जाता है और हरात से उत्तर तथा काबूल तक ४० मील में ऊँचे हुए पठार पर होकर हेल्मन्द नदी के किनारे-किनारे एक सुपम मार्ग शुरू होता है और एक दूसरा मार्ग जो कन्न अरबों तक बढ़े स होता हुआ कमार के दक्षिण-पूर्व से सिन्धु नदी के निचले मैदानों तक (३) मरकान के रेगिस्तानों में होकर या बलोचिस्तान के समुद्र के किनारे-किनारे जाता था।

पाकिनि ने जिस उत्तरपक्ष का उत्खनन किया है वह इनमें से पहला नमूना है। यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि इन प्रदर्शनों पर अत्रिपुत्र के विजय के पञ्चस्वरूप उसके साम्राज्य की सीमाएँ लगभग प्रकार तय हो गई थी इसलिए इन भागों से होकर पश्चिम के साथ भारत का व्यापार बस्य बढ़ा होगा। भारत में यह व्यापारिक बल-मार्ग (उत्तरपक्ष) उसके उत्तरों से होकर पड़रठा होगा तथा उनके बीच सम्पर्क स्थापित करता होगा। उनका उत्खनन पाकिनि तथा पतञ्जलि ने किया है। वहीं वास्तवीक कापिधौ मरकाती मरकाती तथाधिसा धाकक हस्तिनापुर, कीधाम्बी काधी पाट पृथ्वी आदि नगर ।

पठम्बकि ने (पाणिनि की टीका में II, २, १८ तथा III ३ १३६) कौषाम्बी या वाराणसी के पास बसे जाने वाले यात्रियों के प्रसंग में निम्न-कीर्त्याम्भि :  
वा नर-वाराणसि श्री समाप्ता का उत्सृज्य क्रिया है इसमें यह संकेत मिलता  
उस समय ईड टुक राउ कौषाम्बी तथा वाराणसी नामक नगरों से होकर  
जरती थी ; पाणिनि के एक नियम (III ३ १३६) के प्रसंग में पठम्बकि ने  
ह द्रष्टात दिया है कि सांख्य तथा पाटलिपुत्र नामक नगर एक ही मार्ग पर  
एक से और इस प्रकार हम ईड टुक रोड की लम्बाई का हिसाब लगा सकते  
हो सांख्य तथा कौषाम्बी और वाराणसी तथा पाटलिपुत्र नामक नगरों को  
जाती थी । आश्चर्य की बात है कि बादिका में यात्रा के आरंभ-विंदु के रूप में  
कौषाम्बी का उल्लेख किया गया है जबकि पठम्बकि ने सांख्य को आरंभ-विंदु  
नामा है यद्यपि दोनों ही वर्षों में यात्रा का अंतिम स्थल पाटलिपुत्र की बताया  
गया है । इन दो व्याकरणशास्त्रों में यह मतभेद किसी वैयक्तिक कारण से नहीं

सम्बन्धी कारण से भी हो सकता है। कदाचित् लोगों ही अपने जन्मस्त्राग को नौयाकिक केन्द्र समझते हामे (इंडियन कम्पन में मेरी टिप्पणी II २)।

अर्थशास्त्र में मार्गों का वर्णन अर्थशास्त्र में भी हमी उपयुक्त सारी नो दोहराया गया है।

कौटिल्य के अनुसार (VII १२) व्यापार-मार्ग (वणिज्यम) लाभ की दृष्टि से स्थापित किसे जाने चाहिए।

जलमार्ग एक मत यह है कि व्यापारी के मार्गों में जल-मार्ग को प्रधानता दी जानी चाहिए, क्योंकि जलमार्ग अधिक लाभदायक होता है। इस मत का आधार इस बात पर है कि जलमार्ग द्वारा भाग ४ जाने में लक्ष कम आता है और महान्त भी कम लगती है (अस्यध्यय-व्यापार-प्रभूतपण्योदयश्च)।

कौटिल्य ने इस मत का समर्थन नहीं किया है। कौटिल्य के मतानुसार, सबट के समय जल-मार्ग पर किसी प्रकार की सहायता नहीं पहुँचाई जा सकती (सद्व्यगति विधि सर्वतो-निवृत्तगमन)। इन मार्गों को सभी कस्तूरों में इस्तेमाल नहीं किया जा सकता (असर्वकामिण्यः) ('जैसे बर्षा ऋतु में') उनमें कतरा व्यापार रहता है और इस कतरा से बचने का कोई उपाय भी नहीं किया जा सकता।

कौटिल्य ने जल-मार्गों को दो भेजियों में विभाजित किया है (१) समुद्र तट के किनारे के जलमार्ग (कूलमय) और (२) महासागर के बीच से होकर जाने वाले जल-मार्ग (विदेधों के लिए) (संयानमय)। इन दोनों में कौटिल्य ने पहली भेजी के मार्गों को प्रधानता दी है, क्योंकि अधिक बदरगाहों तक उनकी पहुँच होने के कारण (पण्य-सुख-बाहुल्यम्) वे अधिक काम से भोच होते हैं।

दूसरा जल-मार्ग नदियों का है। इसके भी कुछ ऐसे गुण हैं जो अन्य जल-मार्गों में नहीं पाए जाते। इसका कम नही दूटता और इनसे यात्रा करने में बहुत अधिक कतरा भी नहीं रहता।

सड़कें : जहाँ तक जल-मार्गों का समय है उन्हें मोटे-मोटे तौर पर दो भेजियों में विभाजित किया गया है (१) हँसवत या उत्तरायण उत्तरी हिम प्रदेशों को जानेवाली सड़क (२) वसिष्ठापय।

उत्तरायण एक मत हैमवत मार्ग को बेहतर समझता है क्योंकि उसके रास्ते अधिक कामवापक वस्तुओं (साकलराः) — जैसे चीड़े हाथी कस्तूरी (गंध कस्तूरी) हाथी-बाँट काँडे साना तथा काँडी — के चींटों तक पहुँचा जा सकता है।

वसिष्ठापय परणु उत्तरवासी होते हुए भी कौटिल्य ने वसिष्ठा का पक्ष लिया है। कौटिल्य का कहना है कि यद्यपि वसिष्ठा मार्ग इन चींटों को मुहूर्त-

जाता जहाँ से कच्चा काले या बोड़े आदि पशु जाते हैं, पर इस मार्ग के रास्ते हमें घंटा हीरे, मणि मुक्ता तथा स्वर्ण ज्योतिषिक बहुमूल्य वस्तुएँ प्राप्त होती हैं। इसके अतिरिक्त बसिनी मार्ग कई कृत्रिम-धोनों (बहु-धनिः) और बहुमूल्य पदार्थ (आरपण्यः) उत्पन्न करनेवाले प्रदेशों से होकर गुजरता है और उस पर यात्रा करने में किसी सतरे या कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ता (प्रतिद्वयतिः भवप्यायायः)।

इसी मार्ग की दृष्टि से कौटिल्य राज्य से यह भी चाहता था कि वह देश में यात्रियों के जाने-आने के लिए सड़कों (चक्रवत्) बनवाए, जिनके रास्ते हमेशा बगुल-सा मार्ग एक जगह से दूसरी जगह जाया तथा के जाया जा सकता है (विपुलारंभवाद्)। कौटिल्य ने यहाँ तथा ऊँटों जैसे मारवाहक पशुओं के लिए भी मार्ग बनवाने का परामर्श दिया है (VII १२)।

मार्गों की विभिन्न श्रेणियाँ : कौटिल्य ने देश के विभिन्न प्रकार के मार्गों का वर्णन किया है (II ४) जैसे

- (१) राज-मार्ग अर्थात् राजपथ बड़ी सड़क
- (२) विभिन्न प्रशासन क्षेत्रों तक जानेवाली प्रांतीय सड़कें जैसे स्वामीय-पथ
- (३) ग्रामपथ-पथ
- (४) राष्ट्र-पथ देहातों को जानेवाले मार्ग या
- (५) विहीन-पथ देहातों में बराबराहों को जानेवाले मार्ग और मार्गों की अन्य श्रेणियाँ जैसे

(६) संमानीय-पथ जो उन राहों को जाते थे जहाँ हाट लगते थे (संमानीयं अय-विजय व्यवहार-अथवा न्यूनम् उत्पन्नः)

- (७) व्यवपथ सैन्य के लिए मार्ग
- (८) सैन्यपथ सिपाई वाले सैन्यों को जानेवाले मार्ग
- (९) वनपथ जंगल को जानेवाले मार्ग
- (१०) हस्तिपथ हाथियों के लिए मार्ग
- (११) श्वपथ घोड़ों को जानेवाले मार्ग
- (१२) रथपथ रथों के लिए मार्ग
- (१३) पाशुपथ मवेशियों के लिए पथरहियाँ
- (१४) मृगपशुपथ घेड़ आदि छोटे पशुओं के लिए पथरहियाँ और जंगल में
- (१५) मनुष्यपथ मनुष्यों के चलने के लिए मार्ग।

म्यत्सार-सावधी इन विभिन्न मार्गों के रास्ते देश के सभी मार्गों से जहाँ जो भी चीज पैदा होती थी लागों तथा जंगलों जैसे दुर्गम स्थानों से वाणिज्य प्रकार की चीजें बिचने के लिए बाजार में आती थी।

मोती : विभिन्न प्रकार के मोतियों के नाम उन स्थानों के नाम पर रखे गए हैं जहाँ वे पाए जाते हैं। इतने प्रकार के मोती होते हैं (१) ताग्रपन्निक जो पाण्ड्य देश के उस स्थान से निकाले जाते हैं जहाँ ताग्रपत्नी नदी समुद्र में गिरती है (समुद्र सयम प्रवेग समुत्पन्नम्) (२) पाण्ड्यकटाक जो पाण्ड्य देश के मलयगोटी नामक पर्वत पर पाए जाते हैं (३) वासिष्य जो पाटलिपुत्र के निकट पाण्डिका नदी से निकाले जाते हैं (४) कौत्स्य जो सिन्धुद्वीप (संका) के मयूर नामक गाँव की नाला नदी में से निकाले जाते हैं (५) चर्ष्य जो केरलदेश में मुरषि नामक नगर (पट्टन) की चूर्णी नदी में से निकाले जाते हैं (६) महेन्द्र जो महेन्द्र पर्वत पर पाए जाते हैं (७) कार्दमिक जो पारसीक अर्वाक्ष नगर की कर्मा नदी में से निकाले जाते हैं, (८) छातसीय जो बर्बर-देश के समुद्रतट पर छातसी नदी में से निकाले जाते हैं (९) ह्यादीय जो समुद्रतट पर स्थित बर्बर देश की क्षीषष्ट नामक झील में से निकाले जाते हैं और (१०) हैमवत जो हिमालय पर पाए जाते हैं।

मणिषी मणिषी कोटि तथा माका नामक पर्वतों और संका की रोह्य नामक पहाड़ी पर पाई जाती हैं (पार-समुद्रकः पारसमुद्रात्सिन्धुसरोह्वारात् तग्व)।

हीरे-अवधूरात : हीरे समाराष्ट्र में जो उस समय में विवर्ग देश का नाम था मध्यम-राष्ट्र जो वाजकल कोसक देश है कास्तीर-राष्ट्र में धीकटन नामक पहाड़ी पर उत्तराखण्ड पर मणिमस्तक नामक पहाड़ी पर और कजिग देश की इज्जानक नामक पहाड़ी पर पाए जाते हैं।

जूना : जूना अलकनंदा नामक स्थान से जो बर्बर देश की एक बर्बरनाह या खीर यवन-द्वीप में समुद्र के किनारे स्थित विवर्ग नामक स्थान से लाया जाता था।

सुगंधित लकड़ी : चन्दन मगर (अगव) तथा काम्पेयक जैसी सुगंधित लकड़ियों का भी व्यापार होता था। इनमें से अधिकतम काम्पेय अर्वाक्ष आसाम में पैदा होती थी।

खालें विभिन्न प्रकार की खालों का व्यापार भी बहुत बड़े पैमाने पर होता था जो कान्तगाव तथा ज्रेम जैसे स्थानों में जाती थीं ये हिमालय (उत्तर पर्वत) पर स्थित प्रवेश हैं। बिंसी तथा महाबिंसी जाति की खालें हिमालय के बाह्य प्रस्पाठ पर्वतों (हामघप्रामीने) से जाती हैं जहाँ स्पेच्छ रहते हैं। हिमालय के बायोह नामक एक दूसरे प्रदेश से विभिन्न प्रकार की खालें आती हैं।

हिमालय के बाह्य नामक एक दूसरे प्रदेश से अन्य प्रकार की — — —

और फिर जल में रखेवाले पशुओं की जानों का भी व्यापार होता था ।

कम्बल छनी कम्बल का व्यापार काफी बड़े पैमाने पर होता था । मैपाक का उल्लेख उन स्थानों में किया गया है जहाँ से अच्छे कम्बल आते थे वहाँ से भाट टकरों की आपस में जोड़कर बनाए गए काल रंग के कम्बल आते थे जिन्हें निर्मित कइत से और इन पर बर्षा का कोई जलर नही होता था (धर्माचार्यम्) वहाँ से असाक नामक कम्बल भी आते थे ।

रेशम रंग से युक्त (सफ़ेद रेछमी कपड़ा) आता था उत्तरी बंगाल में पशु नामक स्थान से चीन्चुल नामक रेछमी कपड़ा आता था और घासाम का सुवर्णकुड नामक स्थान भी अपने रेशम के लिए प्रसिद्ध था ।

जिनेन जीव अर्बान् जिनन काशी देश से तथा पुण्ड्र से आता था । रेछे वार बस्त्र (पञ्चोर्ता) मयय तथा मुबर्बलकुड से बनाए जाते थे ।

कौटोय (जो कौटकार देश में बनता था) और चीनपट्ट (चीनमूमिक) भी इसी प्रकार के कपड़े थे । बी० मार मार दीशिशार का मत है कि चीन पट्ट का सम्बन्ध चीन से है जो गिलगित में रखेवाली एक खाति का नाम था जो रेशम तैयार करने के लिए प्रसिद्ध थी (मौर्यन पासिटी पृष्ठ ७) ।

मूठी कपड़ा सबसे अच्छा मूठी कपड़ा इन स्थानों में बनता था पाण्डूय देश की राजधानी मगध अपराल (कोइकय) कर्किग काशी बंग बस्त्र कुतस देश की राजधानी माहिष्मती ।

नगरों का जीवन साम्य जीवन की भांति नगरों के जीवन में भी नगरवासियों की मात्रा प्रकार की सुविधाएँ उपलब्ध थी । इसकी व्यवस्था विभिन्न प्रकार की अनेक सम्पाएँ करती थी । हर शहर में यात्रियों के लिए धर्मशालाएँ (धर्मशाला) ककाकाएँ (सिम्ली) तथा दलकाया के काम करने के लिए कारखाने इवाने रागव बेकनेवाले (श्रीधिका) मीरनालय जहाँ पका हुआ मांस (वरवमाल) चाय (मीहन) तथा टिकिया (आयुष) मिलती थी और अदिराम्य (दलशाला) हल्ले थे । मात्रा प्रकार के सार्वजनिक मनोरंजन की व्यवस्था होती थी जैसे —नाटक (प्रैका) गव तथा बाघ संगीत अमिनय नृत्य बाजीगरी (कक वर) आयू (कहक) कहानी सुनाने बनगुठा मटों के कारतव चित्रकला आदि के प्रदर्शन इन सब कार्यक्रमों में राज्य की मात्र सच्चाई जानबानी कला पाटशालाओं में प्रशिक्षण पाए हुए विभिन्न वर्गों के बच्चा-वार भाग लेते थे (II ३६ II २७ IV ४)।

नगर की विडगा तथा मण्डुन का प्रतिनिधित्व से आय करते थे जो अपने ज्ञान अपनी वस्तुता की समया और अपनी आध्यात्मिकता के कारण क्याति प्राप्त कर चुके होते थे (विद्या-वाचप-वर्मसूत्र) (VIII ५) इस मन्त्रका भरव-

पोषण के लिए राज्य की ओर से अनुदान तथा सर्वोच्च सम्मान प्रदान किया गया जाता था। हम परम ही क्या चुके हैं कि परम तथा विद्या की सेवा करने वाला याग को राज्य की ओर से हमपा के लिए कर-मुक्त भूमि दान व हर में भी जानी थी (अवच्छ-कराणि अनिदरवापकानि) इनमें से पांच माने प (१) अस्त्रिक (२) आचार्य ( ) पुत्राहिन और (४) श्रोत्रिय (II १) नगर के सीन व अध्यापकों (आचार्यः गव्यर्थाचार्यः) और विद्वानों (दिद्यावन्त) को सम्मान के रूप में राज्य की ओर से बेतन (पुत्रावैतनानि) मिलना था इनकी सबार्ह हर समय सब-आचार्य को उपलब्ध रहनी थी (सर्वोपस्थादिन)। यह बेतन साम्यता के अनुसार (धर्माह) दिया जाता था (I १)।

सिक्के और सांग्राह्य का आधार सम-जब था।

साहित्यिक रचनाओं में जितने प्राचीन समय से सिक्कों के प्रयोग का उल्लेख मिलता है उन्ने पुराने सिक्के अभी तक नहीं मिले हैं।

वेदों में सिक्के के लिए निष्क शब्द का प्रयोग किया गया है (अथर्ववेद I १२६ २)।

बृहदारण्यक उपनिषद् में इस बात का उल्लेख किया गया है कि याज्ञवल्क्य का १ • पायों की सीमाओं में ५-५ माने के पाद छटकाकर, अर्थात् बछ मिला कर १० • पाद दान में दिए गए थे। कदाचित् अष्टाध्याय (काठक संहिता अध्याय XII १) या अथर्ववेद जैसे धर्मो में जिसका अर्थ १ • छप्पका के बराबर मात्रा बताया गया है (अथर्ववेद अध्याय V ५, ५, १६) सोन के बहन तथा कदाचित् स्वर्ण-मुद्रा का संबंध मिलता है। शतमान ब्राह्मण में (XII २, ३ २) इस बात का भी उल्लेख किया गया है कि यज्ञ की अधिना हिरण्य (सोने) के रूप में दो आठों की या तो सुवर्ण के रूप में या अथर्ववेद के रूप में।

हमें इस बात के भी उल्लेख मिलते हैं कि सोना (हिरण्य) सिंधु जैसी नदियों में से (अथर्ववेद I ७५, ८) या पृथ्वी के गर्भ में (अथर्ववेद XII १ ६ २६ ४४) या कच्ची पातु का गलाकर (अथर्ववेद अध्याय VI १ ३ ५) या स्वर्ण मिश्रित बाहु को बाकर (अथर्ववेद अध्याय II १ १ ५) निकाला जाता था।

पाणिनि ने (संगम ५ ई ५) अपने व्याकरण में इस बात की पुष्टि की है कि सिक्कों के लिए वेदों में प्रयुक्त इन शब्दों में से कुछ शब्द बाद तक भी इस्तेमाल किए जाते रहें। पाणिनि ने निष्क शतमान तथा सर्वत्र नामक सोने के सिक्कों का उल्लेख किया है। जब निष्क के हियाव से बीजा का मूय बताया जाता था तो उन्हे नविक द्विर्नविक आदि कहा जाता था (V १ २ ३)। जिस भाषा में के पास १ निष्क होते थे उसे मय-शासिक और जिसके पास हजार होते थे उसे नैष्क-साहित्यिक कहते थे (V २, ११९)।

जो बीड़ १ अस्तमान की खरीबी पाठी थी उसे अस्तमानम् (V १ २७) कहते थे ।

यह बात ध्यान में रखने योग्य है, कि बनारस के श्री कुर्वा प्रसाद ने इस बात का निश्चित रूप से पता लगाया कि तक्षशिला की कुदाई में पाई गई सबसे पुरानी सतहों में बीड़ी के जो १९ सिक्के पाए गए थे उनमें से प्रत्येक का भार १ रती (= १८ सेन) था । श्री कुर्वा प्रसाद ने बीड़ी की आहत मुद्राओं का विशेष रूप से अध्ययन किया था और उस समय तक जो सिक्के पाए गए थे उनमें से हजारों उनके हाथ से धुकरे थे । उनकी इस खोज को दृष्टि में रखते हुए यह नहीं माना जा सकता कि ये सिक्के फारस के दोहरे सिंगलोई नामक सिक्के थे जिनका उल्लेख आगे चलकर किया गया है क्योंकि फारस के सिंगलोई सिक्कों का भार १६ ४५ सेन से अधिक नहीं होता था और दोहरे सिक्के का भार ७२ ९ सेन होता था । इसलिए हम यह मानने पर विवश हैं कि वे यहीं के सिक्के थे जिन्हें हमारे घरा में अस्तमान का नाम ठीक ही दिया गया है । यह बात भी मान लेना उचित होगा कि ये सिक्के बसमल्ल प्रजापती के अनुसार बनाए जाते थे । अस्तमान के और छोटे भाग होते थे जिन्हें पर कहते थे कुदाई में जो बोने-से बीड़-बीड़े टुकड़े पाए गए हैं जिन पर ४ बिन्हु अंकित है और जिनमें से प्रत्येक का भार २१ रती अर्थात् अस्तमान के भार का १/४ है, वे कदाचित् पाद नामक सिक्के ही होंगे ।

पाणिनि न ऐसी वस्तुओं का भी उल्लेख किया है जिनका मुख्य सुवच नामक सिक्कों में आका जाता था (IV ३ १५३ VI २,५५) ।

पाणिनि न साध नामक साने के सिक्के का भी उल्लेख किया था (V १ ३५) ।

अरर-संहिता (अस्य-स्वान ΔII २८९) में १ साध को ४ मापे के बराबर बताया गया है ।

जैसा कि हम पहले बता चुके हैं कीटिस्य ने १ सुवर्ण को १९ भाप के बराबर और सुवर्ण के एक पाद को ४ साध अर्थात् १ साध के बराबर माना है (II ४) ।

कार्यापच से जो प्राचीन भारत का प्रतिष्ठित सिक्का था पाणिनि इसी शक्ति परिचित थे उन्होंने कार्यापच-क हिसाब से बीजों के क्रय-विक्रय का उल्लेख किया है (I १२१ २७ २९ ३४) ।

पाणिनि कार्यापच के १/२ (जर्ब) तथा १/४ (बाव) मुख्य के सिक्कों से भी परिचित थे (V १४८ ३४) ।

प्रामाणिक मुद्रा के रूप में कार्यापच बीड़ी का बना होता था । कीटिस्य

में इसी अर्थ में यह शब्द का प्रयोग किया है।

पाणिनि भाषा नामक एक छोटे सिक्के से भी परिचित थे (V २ ३४)। कौटिल्य ने भाषा को कार्पाण ने सोलहवें भाग के बराबर माना है और यह भी कहा है कि यह तांबे का सिक्का होता था (II १९)। यदि यह चाँदी का बनाया जाता तो बहुत छोटा होता। हालाँकि तक्षशिला जैसे कुछ स्थानों में चाँदी के भाषा भी पाए गए हैं। इसलिए तांबे के सिक्के के रूप में उसके और छोटे भाग भी हस्त थे १।२ भाषाक १ काकणि = १।४ भाषा और १।२ काकणि = १।८ भाषा। काकणि तथा अर्धकाकणि का उल्लेख कात्यायन (V १ ३९ पर बार्तिक) तथा पतञ्जलि ने भी किया है।

उन कार्पाण के लिए, जिसका बीस भाग होते थे पाणिनि ने विद्वत्तिक शब्द का भी प्रयोग किया है। कौटिल्य द्वारा उल्लिखित १६ भागों वाला कार्पाण के साथ ही देश ने कुछ भागों में यह सिक्का भी चलता था।

ऐसा प्रतीत होता है कि यी दुर्गा प्रसाद को ४० तथा ६० रत्ती के सिक्के भी मिले थे जो २० तथा ३० भाषा के बराबर हुए, क्योंकि १ भाषा दो रत्ती चाँदी के बराबर होता है। इसलिए हम यह मान सकते हैं कि ये बड़ी सिक्के थे जिन्हें पाणिनि ने अपने समय की प्रचलित धम्मावली में विद्वत्तिक तथा विद्वत्तिक कहा है।

यह बात ध्यान देने योग्य है कि विद्वत्तिक (जटुकवा II पराजिक) से हमें यह जानकारी प्राप्त होती है कि "उस (विन्विताहे या जगतसमु के) समय में राजबहु में बीस भाषाक का कार्पाण चलता था" (विद्वत्तिभातको क्हापणो) जिसका पाँच पाँच भाषाक होता था। बुद्धघोष ने अपनी समस्तपत्रावली में इस सिक्के को भीलकहावप्य कहा है और साथ ही यह भी कहा है, कि साम्राज्य की राजधानी में जो सिक्का चलता था वही उसके सभी प्रांतों में भी (सम्बन्ध वरेयु) चलन लगता था। यह भी कहा गया है कि यह सिक्का प्राचीन प्राविधिक मुद्रा-शास्त्र (पुराण-शास्त्र) में दिए गए विवरण के अनुकूल बनाया गया था (बुद्धिद्विक स्टडीज में सी० डी जटर्जी का लेख पृष्ठ १८४ १८९)।

पतञ्जलि ने (पाणिनि की व्याख्या १ २ ६४) इस बात का उल्लेख किया है कि १६ भाषा का कार्पाण २ भाषा के कार्पाण से जिससे वह स्पष्ट-मसी मांति परिचित थे जिनका पुराना (पुराण्य) था। कौटिल्य इस पुराने कार्पाण से अपने समय की मुद्रा के मानबद्ध के रूप में परिचित था पर उसने वरण नामक चाँदी के एक और सिक्के का भी उल्लेख किया है जिसके २० भाग होते थे। ऐसा प्रतीत होता है कि स्थानीय रूप से देश के विभिन्न भागों में दोनों ही प्रकार के कार्पाण चलते थे। यह बात ध्यान देने योग्य है कि



ऊपर जिन बीड़ प्रयोगों का हवाला दिया गया है उनमें २ माघ के सिक्के को १६ माघ के सिक्के की अपेक्षा अधिक पुराना बताया गया है।

भारत के विभिन्न भागों में चाँदी के कार्यालयों के हजारों सिक्के पाए गए हैं उनमें से प्रत्येक का औसत वजन ३२ रक्तिका (= ५६ ग्रेन) है। यह कौटिल्य मनु (VIII १३६) या याज्ञवल्क्य (I ३६४) द्वारा बताया गए मानक के अनुरूप है। सारस्वतीपत्नी में भी यही मानक बताया गया है जिसमें 'श्व' नामक नामक सिक्के (= ४२ ग्रेन) का मार पुराण (पुराने) कार्यालय के ३।४ के बराबर बताया गया है (बुद्धिस्थिर स्ट्रोज़ में सी. डी. बर्टन का लेख पृष्ठ ३८४-८६)।

पाणिनि म. क. (V २ १२) पाण्य का प्रयोग किया है और उससे बनने वाला कण्य पाण्य का अर्थ 'मुहर' अथवा 'मुहर लगा हुआ' (माहृत) बताया है। वाचस्पति अर्थ में यह पाण्य सिक्के के लिए इस्तेमाल होता है। अर्थशास्त्र में रुप पाण्य का प्रयोग केवल सिक्के के अर्थ में किया गया है और उसमें कपटकारों के अर्थ में सिक्कों की जाँच करनेवाले एक पदाधिकारी का उल्लेख भी किया गया है। जैसा कि हम पहले बता चुके हैं। यह बात उल्लेखनीय है कि पतञ्जलि ने पाणिनि के एक सूत्र (I ४ ५२) के शीर्षक पर टीका करते हुए, कपटकारों का उल्लेख किया है जो कार्यालयों की जाँच करना है (वर्धपति)। यह बात भी बनाने वाला है कि कौटिल्य ने चाँदी तथा ताँबे के सिक्कों के लिए कप्याक्य तथा ताम्र-रुप पाण्यों का प्रयोग किया है।

अब हम अब तक पाए गए प्राचीन भारतीय सिक्कों पर विचार करेंगे।

सबसे पुराने सिक्के उत्तर-पश्चिम में भारत के उन हिस्सों में पाए गए हैं जो ईसा-पूर्व छठी तथा पाँचवीं शताब्दियों में एकेमनिड-पर्सियन (Achaemenian Persian) साम्राज्य के अंग थे। इनमें से कुछ सिक्के तसगिला की गढ़ाई के समान एक पुरानी परत में डिवाइडोटस (२५० ई. पू.) के एक सिक्के के साथ पाए गए थे और एक दूसरी परत में निकदर महान के सिक्कों के साथ जो खनने में गम करने से मिला "अभी एकसाथ ही बनकर आए हों" और चौथी शताब्दी ईसा-पूर्व के एकेमनिड सिंगलीस के साथ भी ये सिक्के पाए गए थे। जैसा कि हम ऊपर बता चुके हैं इन का औसत भार १.० रत्नी (= १८० ग्रेन है)। सिक्कोई का भार १.४५ बन होना या जबकि ऐटिच १.७५ मानक के बराबर था।

ये सिक्के "भीम" तथा चाँदी की कुछ बजाकार छड़ों के रूप में हैं जिन पर चक्र या गुरु की छाप व चिह्न मिलते हैं जो छ. बोहा नामक उग्र प्रतीक-चिह्न से बहुत मिलते-जुलते हैं जो बाद में चाँदी की बहुत मुद्राओं पर बना हुआ

या य सब सिक्के एक ही प्रकार के हैं (एम्स ईटेलाना आऊ दि ब्राम्पस वाऊ ऐंनेट इटिया \V, \VII) ।

कदाचित् दशसिला व राजा यम्भि ने इन्ही सिक्कों के रूप में मिहिर को यह उपहार दिया था जिस यूनानी सख्तों ने ८० टमेल चांदी के सिक्के जिया है (कटियस VIII १२४२) ।

दुर्गा प्रसाद के मतानुसार (जर्नल आऊ दि रायल एशियाटिक सोसायटी आऊ एंगल मुद्रा-शास्त्र परिशिष्ट, \L, \VII पृष्ठ ७६) प्राट मीयकास में पुरान सिक्के १०० रत्ती के मानवड के आधार पर बनाए जाते थे जबकि बाद में मीयकास के सिक्के ३२ रत्ती के मानवड के आधार पर बनाए जाते थे । इससे बिनापड़िक म उल्लिखित इस सत्य की पुष्टि होती है कि २० मयक का पुराना चाँदीपण बजल में हुंका होता था ।

इसके बाद गोलमपुर में जहाँ पर प्राचीन पाटलिपुत्र नगर बना हुआ था सिक्कों का एक ढेर पाया गया । ये चाँदी की प्राचीनतम आठ आठ मुद्राएँ हैं । इन्हें मीयकास से पहले की कदाचित् महबंम की मुद्राएँ कहा जा सकता है । इन पर मीयकास से पहले का एक प्रतीक-चिह्न 'एक पक्षी पर गगनाग गया कुत्ता' बना हुआ है जिस हम महबंमीय राजाओं का प्रतीक-चिह्न मान सकते हैं । यह बात ध्यान देने योग्य है कि इसमें म बहुत-से सिक्के पर मीयों ने स्वयं अपने प्रतीक-चिह्न की मुद्रा लगाकर उन्हें कीर्ति के दण्ड में जोड़-प्रवेश अर्थात् 'बैथ चसमुद्रा' बना दिया था सर्वसाधारण के बीच व्यापारिक डेन-डेन के लिए या सिक्के प्रचलित थे वे इनसे मिले थे और उन्हें कीर्ति ने 'प्राबुहारिजी पथ्य-शास्त्रा की उचित सजा दी है' जैसा कि हम पहले उल्लेख कर आए हैं । स्मरणीय है कि काशिका में उस बात का उल्लेख मिलता है कि महबंम के राजाओं ने अपना एक मानवड प्रचलित किया था (महोपक्रमवि मानानि) (II ४०१ VI २१४) और प्राचीन साहित्य में उनकी अकूल जन-सम्पत्ति का जो उल्लेख मिलता है उसका रहस्य कदाचित् उनके बनाए हुए मय सिक्का तथा उनकी मुद्रा-व्यवस्था में निहित था ।

तिथि क्रम के अनुसार गोलमपुर में पाए गए सिक्कों के बाद पंजाब से लेकर मासवा तक और मध्यप्रदेश से लेकर बकल तक बलिक मद्रास तथा मैसूर तक भारत के विभिन्न भागों में हजारों की संख्या में चाँदी की आठ मुद्राएँ मिली हैं इन पर अंकित अलग-अलग प्रतीकों तथा चिह्नों के अनुसार इन्हें छ मीयियों में विभाजित किया जा सकता है । फिर भी ये सभी एक या वरस की तरह ३२ रत्ती ( ४५६ ग्रेन ) के एक ही मानवड के आधार पर बने गए हैं । इन सब में एक और विशेषता समान रूप में यह पाई जाती है कि 'इसमें एक ओर

विभिन्न रूप से पाँच चिन्ह विभिन्न प्रकारों में पाए जाते हैं और दूसरी बार एक या एक से अधिक चिन्ह अंकित हैं जो आमतौर पर दूसरी ओर के चिन्हों से भिन्न हैं" (पृष्ठी, XIII) ।

इन सिक्कों में सामने की तरफ़ में पाँच आकृतियाँ अंकित हैं (१) सूर्य (२) (टारिन) पद्मज्वाली एक वृक्ष ३ तीर की तीरों और ३ हथ राशि (टारिन) के चिन्ह (३) पर्वत (४) पहाड़ी पर मोर, कुसा (या जलजोत) या वृक्ष (५) हाथी बैल खरगाव को पकड़े हुए कत्ता या गीरा बाकि पशु और किसी-किसी में मछलियाँ तथा सेहक भी कुछ सिक्कों में एक चेर के नीचे पवित्र वृक्ष भी बिसाया गया है (जो कदाचित् बौद्ध प्रभाव का संकेत है जो मौर्य सम्राट् अशोक के समय तक बहुत व्यापक रूप से फैल चुका था) । (पृष्ठी XX तथा उसके आवे के सम्प्रदाय) ।

इन सिक्कों में पीछे की ओर जो चिन्ह अंकित हैं, वे केवल उनकी जाँच करने समय विभिन्न अधिकारियों तथा अधिकारियों द्वारा अंकित किए गए चिन्ह हैं । हम इस बात को मान सकते हैं कि जिस सिक्के पर इस प्रकार के चिह्न हैं वही अधिक चिन्ह अंकित हैं वह सिक्का उतना ही पुराना होगा । इस आधार पर कहा जाय कि इन सिक्कों की तिथि का पता लगाया जा सकता है ।

ध्यान देने की बात है कि कौटिल्य ने टंकशास क जिस प्रकार अधिकारी सन्तुष्टाव्यक्त का उल्लेख किया है उसका काम सम्राट् के सिक्कों पर सम्मेलन अंकित करवाना था । प्रचलित मुद्रा की समय-समय पर जाँच की जाती पकड़ी की और यह काम संपूर्णक का था जो हर बार जाँच करने के बाद उन पर अपनी मुहर अंकित कर देता था । इसका अर्थ यह था कि सिक्के के पीछे की ओर परीक्षण के बाद लगायी जानेवाली इन मुहरों की संख्या बढ़ती जाती थी । इन मुहरों की अधिकतम संख्या अब तक चौदह है । जिस पर इनसे अधिक मुहरें भरी हैं, वे सिक्के बेसने में अधिक पुराने तथा जिस हुए सम्यते हैं ।

इन प्रतीका तथा अंकित चिह्नों का अर्थ पूरी तरह समझना कठिन है । उनका कोई अर्थ अवश्य है इसका पता बुद्धनाथ की रचनाओं से लगता है जिसने सप्तमपाताविक में इन बात का उल्लेख किया है कि मुद्रा-शास्त्र के प्राचीन ग्रन्थ सप्तमूत्र में यह बताया गया है कि कोई भी मद्रा विमेषक (हेरकलको) किसी सिक्के पर अंकित चिह्ना की देखकर यह बता सकता था कि वह सिक्का किस राजा जिस देश का नगर में और यहाँ तक कि किस टंकशास में बना गया है और यह भी बता सकता था कि वह राजा कब का विजय किसी पहाड़ी पर स्थित है या नहीं के तट पर (नदीतीरे का) (बुद्धिस्टिक स्टडीज पृष्ठ ४३२) । सिक्का पर अंकित इन रहस्यमय चिह्नों की बुद्धबोध ने निम्न-निम्न अर्थानु

“माना क्यों तथा आदृतियों” का बताया है (कृत्रिमिक स्टडीज पृष्ठ ४१२) । उपासि नामक बालक की माता का इस बात की चिन्ता थी कि यदि उनसे बेने सर्राफ़ का पेशा अपनाया तो उसकी आँखें खराब हो जाएँगी (महाबया संकेत बुक्स आफ़ दि ईस्ट, LIII २०१) । सब ता यह है कि यदि आज भी कोई इन प्राचीन भारतीय मिश्रका पर अंकित रहस्यमय चिह्नों का अर्थ ठगाने का प्रयत्न करे तो उसकी आँखें खराब हो जाएँगी क्योंकि प्राचीन उपसुध उपसुध न होने के कारण इन रहस्यों को समझने की कुंजी खो गई है ।

इन सिक्कों को जिन छः क्यों में विभाजित किया गया है उनमें से दूसरे तथा छठे क्यों का एक-दूसरे से अतिरिक्त सम्बन्ध है और नीचे विस्तारपूर्वक बताए गए आधार पर उन्हें मौर्यकालीन माना जा सकता है । सामान्य में भारत के विभिन्न भागों में पाए गए चाँदी की इन आहत मुद्राओं पर बने हुए विभिन्न प्रतीकों तथा चिह्नों के आधार पर, और इन सारी के आधार पर कि ये सिक्के ईसा-पूर्व चौथी सीसरी तथा दूसरी सताव्वियों में देण में प्रचलित थे यही निष्कर्ष निकलता है कि “ये सिक्के मौर्य साम्राज्य के” थे । इन बात में तो तनकि भी संदेह नहीं है कि इन सिक्कों को असम-असम लोग निजी तौर पर नहीं बल्कि कोई साधनाधिकारी जारी करता था । कबल एक केंद्रीय सामनाधिकारी ही नियमित रूप से सिक्कों को अंकित करने की स्पष्ट इतनी जटिल पद्धति को चला सकता था परन्तु इसमें भी संदेह नहीं कि यदि हमें इस रहस्य की कुंजी निकाल लें तो यह पद्धति बिम्बुक सरल मामूली होगी ।

“इन सिक्कों में से हर एक पर सामने की तरफ़ पाँच प्रतीकों का होना स्वामा भिन्न रूप से इस बात की ओर संकेत करता है कि इन सिक्कों को जारी करने वाले मद्रक के पाँच सदस्य रहे होंगे” मेवास्थनीज ने भी यही बताया है कि मौर्य प्रशासन के अधिकारिण विभागों की शागडोर पाँच आचार्यों के एक मंडल के हाथ में रहती थी । परन्तु यह मानना कठिन है कि ये प्रतीक-चिह्न उन पाँच अधिकारियों के प्रतीक-चिह्न हैं जो इन सिक्कों को जारी करने थे क्योंकि सूर्य तथा छः भुजाओं वाले प्रतीक-चिह्न तो माना प्रकार के सिक्कों पर पाए जाते हैं । ये चिह्न यद्यपि एक ही ठप्पे से नहीं अंकित किए जाते थे पर वह एक ही समय पर अवश्य अंकित किए जाते थे । संभव है कि ये प्रशासिकारियों की एक ऐसी गृहस्था के दोस्त हों जिसका अधिकार-क्षेत्र कम-एक-दूसरे से कम हो । अंतिम और सब से अधिक बढ़कने वाला प्रतीक-चिह्न उस प्रशासिकारी का होता होगा जो वास्तव में इन सिक्कों को जारी करता था । सब सिक्कों पर पाया जानेवाला सूर्य का चिह्न सर्वोच्च प्रशासिकारी का सम्भवतः स्वयं राजा का प्रतीक-चिह्न रहा होगा और उसके बाद जो चिह्न सबसे अधिक सिक्कों पर पाया गया है

छ. मुजोमों का प्रतीक चिह्न के विभिन्न रूप यह कहाचित् इस कम में उसके बार के मुख से ऊँचे पञ्चाक्षरी का प्रतीक-चिह्न रखा होना" (ऐसन पर्वक आठ दि रायल एमियाटिक सोसायटी बाऊ बयान XX, XXI) ।

बर्ग २ के समूह II तथा उसी बर्ग के समूह IV के सिक्कों पर एक पहाड़ी पर मोर का वा चित्र अंकित है समूह IV के सिक्कों पर तो यह चित्र और पट दोनों तरफ अंकित है उनसे इस बात की कहाचित् और पुष्टि होती है कि इन सिक्कों का सम्बन्ध मोरों से है । जैसा कि पहले बताया जा चुका है मोर मीर्म राजवंश का प्रतीक-चिह्न था । हम इस बात को भी ध्यान में रखें कि इन सिक्कों पर अंकित मोर पक्षियों के चित्र अंकित हैं उनमें हाथी सबसे प्रमुख है जो कि मोरों की सैनिक शक्ति का मुख्य अंग था ।

दुर्गा प्रसाद का विचार है कि 'पहाड़ी के पिछर पर नवादिश चरम' का जो चित्र है वह मोर के अतिरिक्त मीर्मों का दूसरा विधिष्ट प्रतीक-चिह्न था । उन्होंने बताया है कि सारे वंश में पाए गए चाँदी के सिक्कों में अधिकोद्य पर और प्रमाणित मीर्म स्मारकों पर यह प्रतीक-चिह्न पाया जाता है (जैसा कि पहले बताया जा चुका है) । पटना में कुम्हार नामक स्थान पर बरदाई में जो मीर्म स्तम्भ निकला था उसके नीचे भी यह प्रतीक-चिह्न बना हुआ है । सोहपौर के ताग्र-स्टूट पर, जो लगभग ३२ ई. पू. का है भी यह प्रतीक-चिह्न मौजूद है इस ताग्र-स्टूट पर अंकित क्षेत्र में बताया गया है कि अकाल के समय सार्वजनिक भद्र सकारा से भद्र बाँटा जाता था जिस व्यवस्था का उल्लेख जैसा कि हम पहले देन चुके हैं कोटिस्व ने भी किया । अतिस बात यह कि हाल ही में कुम्हारिकाम में उस स्थान पर जो लुन्वाई हुई है, वही प्राचीन पाटीकुच नगर बना हुआ था उसमें तीन मिट्टी के पट्ट ऐसे पाए गए हैं, जिन पर सगी हुई मुहर में भी तीन अथवा प्रतीक-चिह्नों के साथ यह प्रतीक-चिह्न भी मौजूद है । लुन्वाई में जिन स्तर पर ये पट्ट पाए गए हैं वह मीर्मकालीन है । हम मुहर को मीर्म सम्राट् की मुहर नरनाक मानने के माधुमे में जायसवाल दुर्गा प्रसाद से सहमत हैं । कोटिस्व के अनुसार सम्राट् की समस्त सम्पत्ति पर, जैसे इबिमारों पर (I ३) या पमुओं पर (II २९) यह मुहर लगा दी जाती थी (१९३३ में बीरा की ओरिएण्टल कान्टेन में समाप्ति के एक में जायसवाल का भाष्य) ।

दुर्गा प्रसाद ने ही यह बुद्धिमत्तापूर्ण सुझाव भी रखा है कि जब भी किसी मिश्र में पट बल पहाड़ी के तालर पर जगत चंद्रमा का प्रतीक-चिह्न या मोर का प्रतीक-चिह्न मौजूद हो तो यह समझना चाहिए कि वह सिक्का मीर्मकाल से परस था है, जिसे मीर्मवंश के राजाओं ने बुनारा अपनी मुहर लगाकर बनाया

बा (जर्नल आफ दि रायल एगियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल मुद्रागास्त्र परि  
गिट पृष्ठ ६७) ।

जैसा कि पहले बताया जा चुका है उपर्युक्त भाति व गिरजा का विभाजन  
जिन छ बयों में किया जा सकता है, उनमें स बग २ तथा ६ क मिकर मौर्य  
वासीन मान जाते हैं । “लगभग सभी एक ही जैसी धातु के बने हुए हैं हालांकि  
उनका रंग-रूप तथा बनावट बहुत भिन्न है बग २ व शिकर छोटे तथा माटे हैं  
और बग ६ क मिकर बड़े तथा पतले हैं । फिर भी इन दोनों बगों का निर्माण  
एक दूसरे से सम्बन्धित किया जाना आवश्यक की जान है । यह पता लगा है कि  
इन दोनों ही बगों के मिकर ‘पगावर में सेवर गोरावरी क महान एक और पश्चिम  
में पालनपुर से रुवरपुर में मिन्मापुर तक’ एक साथ चलते थे । इनमें जा अंतर  
है वह स्थान का अंतर नहीं है । अब ही सामन-मत्ता उन्हें अपने अधिकार-दान  
व सभी स्थानों के लिए प्रचलित मिकर के रूप में जारी करती हामी । जिन  
सत्ता न वे सिक्के जारी किए थे उसका सामन मगा की घाटी तथा सिंधु घाटी  
के ऊपरी भाग पर रहा होगा । उनसे अपना राज्य समुदाय की सहायक नितियों  
के विस्तार-विस्तार पश्चिम में फैला लिया गया और पूरे समुद्रतट के किनारे  
किनारे उड़ीमा से होत हुए वह बहुत दूर तक दक्खन में पहुँच गया होगा । जिन  
स्थानों में वे सिक्के पाए गए हैं उनसे यही निष्कर्ष निकलता है” (ऐडल जर्नल  
ऑफ दि रायल एगियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल, IV VI) । जिन स्थानों में  
वे मिकर पाए गए हैं वही अशोक के मद्र भी पाए गए हैं और इस प्रकार उनसे  
निश्चित रूप से यह संकेत मिलता है कि इन छ बयों के मिकर जिनके बीच  
इतना निकट सम्बन्ध है मौर्य साम्राज्य ने ही जारी किए होंगे ।

बिहारी सिक्के चूकि पञ्जाब का एक भाग प्राचीन छारस व एकमनिसन  
(हरनामनि) सम्राटों के राज्य का अंग बन गया था इसलिए उनकी बिजय के  
बाद भारत में उनकी मुद्रा का आना स्वाभाविक बात थी । परन्तु भारत में पाए  
गए छारस के सिक्के से इस बात को निश्चित करना आसान नहीं है ।

प्राचीन छारस का प्रामाणिक सोने का सिक्का डेरिक था जिसका भार लग  
भग १३ सेन होता था इस सिक्के को पहले-पहल फ्रांसिस् सम्राट् बाउ ने  
बनवाया था जिसने सिंधु की घाटी का सब से पहले अपने साम्राज्य का अंग  
बनाया था । इस सिक्के पर सामने की तरफ इस महान सम्राट् का चित्र बना  
है जिसमें उस हाथ में वज्र तथा माछा लिए हुए अपने राज्य के बिजय-अनियान  
की क्रिया में दिखाया गया है ।

परन्तु छारस का सोने का सिक्का एक महत्वपूर्ण आर्थिक कारण से भारत  
में व्यापक रूप से प्रचलित न हो सका । वह कारण यह था कि भारत सोने के

बाहुस्य के लिए प्रसिद्ध था यही तब कि यही सोने का भाव चाँदी का केवल आठ गुना था जब कि फारस की सही टंकसाळ ने सोने का भाव ११ १ गुना ही कर रखा था। इस प्रकार जो डेरिक सिक्के भारत में आ भी जाते थे उनका मूल्य अनावश्यक रूप से बढ़ा-बढ़ा प्रतीत होता था और वे भारत की मुद्रा व्यवस्था का रंग नहीं बन पाते थे और फौरन उनका निर्यात कर दिया जाता था। फिर इन डेरिक सिक्कों को भारत में चलाने से कोई काम भी नहीं था क्योंकि दूसरी जगहों पर उनके बदल में ज्यादा चाँदी मिल सकती थी। इसलिए फारस के सोने के सिक्के भारत में बहुत बड़ी संख्या में नहीं पाए गए हैं।

इन्हीं के साथ के फारस के चाँदी के सिक्के सियलोइ या रोकेस कहलाते थे वे भीस सिक्के एक डेरिक के बराबर होते थे। उनका वजन लगभग ८६ ४५ ग्रेम होता था। इस प्रकार के चाँदी के सिक्के भारत में आते थे क्योंकि यहाँ उनका मूल्य अधिक था और उनके बदले में अधिक सोना मिल सकता था। भारत में बहुत-से सियलोइ नामक सिक्के मिले हैं, जिन पर बाब में कुछ विभिन्न-से चिह्न भी अंकित किए गए थे। वे चिह्न उन चिह्नों से बहुत मिलते-जुलते हैं जो भारत के प्राचीनतम स्थानीय माहृत मुद्राओं के रूप में चलनेवाले चाँदी के चौकोर टुकड़ों पर पाए गए हैं।

परम्पु सिक्कंदर द्वारा डेरियस तृतीय का सत्ता उल्टा दिए जाने के बाद फारस के सियलोइ नामक सिक्कों का अस्तित्व बहुत दिनों तक नहीं रहा।

पंजाब पर फारस की विजय के बाद यूनानियों ने उस पर विजय प्राप्त की जो बहुत ही बड़े समय तक रही। पंजाब पर सिक्कंदर के शासन का प्रभाव केवल यही हुआ कि उसने देश की एकता को और भी बड़ रूप से स्थापित कर दिया। छोटे-छोटे राज्यो को एक में मिलाकर एक बड़ा राज्य बनाया गया जो सिक्कंदर ने अपने मृतपुत्र शत्रु पोरस को भेंट कर दिया। भारतीय शासन का एक और प्रभाव यह हुआ कि स्वतंत्र जातियों ने अपने सब बनाने आरंभ किए, जिनका उल्लेख पहले किया जा चुका है। वैसे कि पहले देश चुन है इन संघियों ने अश्वगुप्त मौर्य के लिए अपने विद्याल साम्राज्य का निर्माण करने का माय प्रयत्न किया।

इस बात का सही-सही पता लगाना कठिन है कि इस यूनानी सम्पर्क का भारतीय सिक्को पर कोई प्रभाव पड़ा भी कि नहीं। इसमें तो संदेह नहीं कि डेरियस अश्वगुप्त के बाद फारस के सियलोइ का लोप हो जाने से यूनानी प्रभाव के लिए मार्ग विशुद्ध खुल गया। परम्पु यह प्रभाव बहुत धीरे-धीरे ही प्रकट हुआ।

एपेस के 'उपद्रु' के विश्व शासक सिक्कों की शक्त पर सबसे पहले सिक्के उन समय बने जब मकदूनिया का सिंघास अँबाई पर था परम्पु राजसिंघी

में पाए गए इन सिक्कों का जो नमून ब्रिटिश म्यूजियम में रखा है वे भारत के बने हुए नहीं बल्कि मध्य एशिया के हैं।

भारत में जो मूनानी सिक्के पाए गए हैं वे डेढ़ाड़ाम हों या डाइडाम या ड्राम उनका बारे में भी यह सिद्ध नहीं किया जा सका है कि वे भारत के बने हुए सिक्के हैं। ऐटिक मानक के अनुसार जो असली ड्राम बनाया जाता था उसका भार १७.५ ग्राम होता था जब कि भारत में पाए गए ड्राम का भार ५८ सेन से अधिक नहीं है। इसके अतिरिक्त इन छान् मुस्य के सिक्कों में ड्राम में भी और डायोबोस में भी एम्बेस के उम्बू के स्थान पर मरड़ (ईगिफ) का चित्र बना हुआ है। कनिश्क को पञ्जाब में ऐटिक मानक के अनुसार बनाए गए जो चांदी के ड्राम के सिक्के मिले हैं उनसे कहावित् यह सिद्ध होता है कि भारत के उत्तर में एबन्त के छोटे सिक्कों की लकड़ पर सिक्के बनाए जाते थे। इन सिक्कों पर चित्त और एक मोड़ा का चित्र बना है जो एक कसा हुआ टोप पहने है जिसके चारों ओर चेतून की पलियों की माला बनी है। इस सिक्के पर पीछे की तरफ एक मुर्गा तथा मूनानी देवताओं के वृत्त मर्करी का प्रतीक-चिह्न बना है। इन सिक्कों को देखकर यह अनुमान होता है, कि ये इससे मिलते-जुलते एबेगम के किसी सिक्के के नमूने पर बनाए गए थे। ऐसा माना गया है कि ये सिक्के साफ़नहदस यानी सोमूति नामक राजा ने बनाए थे। यदि ऐसा है तो ये सिक्के भारत पर सिकंदर के आक्रमण का एक स्मारक हैं।

इस बात में संदेह है कि एब डियेता के रूप में सिकंदर ने भारत में अपने कोई सिक्के बनाए थे। कुछ सिक्के जिन पर सिकंदर का नाम लिखा है, मार दीप सिक्के माने जाते हैं जिनका सबसे अच्छा उदाहरण एब कांसे का सिक्का है। पर इसमें संदेह है कि ये सिक्के भारत में बनाए गए थे। रावकपिंडी में पाए गए बहुत-से चांदी के डेढ़ाड़ाम के सिक्के जिन पर भीमस तथा मरड़ और मूनानी लक्ष्मी का मुकुट बना था मध्य एशिया के बने हुए सिक्के से। बाए में यही सिक्के ऐटिकोफस प्रथम ने जारी किए थे जिसका अश्वगुप्त मौर्य के हाथों अपने पूर्वज सेल्युकस की पधायन के बाए भारत से कोई सम्बन्ध नहीं रहा गया था।

यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि इन सिक्कों पर राजा की उपाधि अंकित नहीं है। परन्तु ब्रिटिश म्यूजियम में ऐटिक मानक के अनुसार बनाए गए चांदी के डेढ़ाड़ाम का जो एक अनोखा नमूना रखा है उस पर राजा की उपाधि तथा उसका नाम दोनों ही अंकित हैं। इस सिक्के पर चित्त और एक बुझसार का चित्र बना हुआ है जिसके पास एक बरछी है पर वह बरछी चला नहीं रहा है वह एक भागते हुए हाथी का पीछा कर रहा है, जिसकी पीठ पर दो आरखी बैठे हुए हैं जो मुड़कर पीछा करनेवाले को देख रहे हैं। इस सिक्के पर पीछे की तरफ



एक लम्बे-से बाइसी का चित्र बना है जो परछन एक की लोहे का टोप लम्बा-सा कमावा पहने है। उसकी बगल में एक तलवार लटक रही है और हाथ में वह बगल तथा मांसा लिए हुए है। हीड का कहना है कि यह चित्र स्वयं सिकंदर का है। हीड ने इस चित्रके पर घामने की तरफ बने हुए चित्र की व्याख्या इस प्रकार की है कि उसमें रणक्षेत्र से पोरस के पराजय का चित्रण किया गया है। हाथी पर बैठा हुआ उसका साथी जो पीछे की तरफ बैठा है, पीछा करते हुए बुद्धसवार पर आगे का निशाना लगा रहा है। यह शैलम की कढ़ाई में छाही हाथी पर बैठे हुए पोरस का चित्र है जो लक्षधिका के विस्वासवादी राजा जाम्बि पर, जो उसका पीछे छोड़ा बीड़ा चला जा रहा है, मांसा चला रहा है। इस चटना का वर्णन अरियम ने इस प्रकार किया है (अध्याय XXVIII) "टैक्साइस्स घोड़े पर सवार था और वह उस हाथी के विस्तृत निष्कट पहुँच गया जिस पर पोरस बैठा हुआ था और अपने की सुरक्षित समस्त रहा था। चूंकि अब पोरस के लिए भाग निकलना सम्भव नहीं था इसलिए टैक्साइस्स ने उससे हाथी को रोककर सिर्फ़र द्वारा भंसा गया घोड़ा घुनने का अनुरोध किया। परन्तु अब पोरस ने देखा कि जो आदमी उससे बाट कर रहा था वह उसका पुराता शत्रु टैक्साइस्स है तो वह मुट्ठकर उसे अपने आगे से मोट के बाट उतार देने के लिए उत्तर दिया और यदि टैक्साइस्स क्रौर्य अपना घोड़ा भरण्य मनाया हुआ उसकी पहुँच से बाहर न हो गया होता तो कदाचित् वह उसे मार ही शक्यता।

नगर-निवेश वास्तुकला तथा कल्पित कलाएँ: यूनानी लेखकों के अनुसार उस समय पन्जाब में ऐसे अनेक नगर थे जो निस्संदेह उद्योग तथा आर्थिक समृद्धि के केंद्र थे। इनमें से कुछ का उल्लेख किसी तथा रक्षा-कर्मियों के रूप में किया गया है जैसे अस्वकों के देश में स्थित मस्सय (मशकावती) या बाजोर्नोस (बरना) कि नगर। मस्सिदाह नामक स्वतंत्र कबील के राज्य-क्षेत्र में ३० नगर थे और मस्सोह आस्मीडाकाह आदि अन्य जातियों के इलाके में ५००० नगर थे। इनमें से सबसे छोटे नगर में भी ५०० से कम आदमी नहीं रहते थे और कई सहरों की आबादी तो १ लक्ष थी। कुछ गाँवों की आबादी सहरों की आबादी से कम नहीं थी" (मैनसिगिडल इनवेस्टिगेशन ऑफ़ इंडिया आई जर्नल ऑफ़ द फूट ११२)। आबा के अनुसार (वही) शैलम तथा ध्यात के बीच में बनी हुई नौ जातियों के राज्य में ५० सहर थे।

उपनिषत् "एक विनाश तथा समृद्धिप्राप्ति नगर था। वास्तव में वह सिन्धु तथा शैलम के बीच के इलाके में सबसे बड़ा नगर था" (वही पृष्ठ २२)।

कुछ नगर नगर-निवेश तथा वास्तु-रक्षा और अपने दुर्गों की मजबूती की दृष्टि से मराहनीय थे।

उदाहरण के लिए मस्सग का निर्माण एक ऐसे किस्मे के रूप में किया गया था जिस जनक प्राकृतिक सविधाएँ प्राप्त थीं। वह एक ऐसे ऊँचे स्थान पर बना था जिसके चारों ओर ऊँची ऊँची पड़ी चट्टानें खतरनाक बसइल मढ़री बस-धाराएँ होने के कारण वहाँ तक पहुँचना असंभव था। इन सब के अतिरिक्त उसकी रक्षा के लिए एक दीवार और उसके चारों ओर एक मढ़री छाई बनाई गई थी। इस दीवार की “कुछ परिधि लगभग १५ स्टेडिया (= लगभग ४ मील) थी इसकी नीचे बत्थर की थी जिस पर कच्ची ईंटों की दीवार बनाई गई थी। ईंटों की जुड़ाई को पत्थरों द्वारा बहुत मजबूत ठोस दीवार का रूप दे दिया गया था” (वही पृष्ठ ३९५ (नटियस))।

जामोलोंस का किछा भी इसी प्रकार एक ऊँची पहाड़ी पर बना हुआ था। एक स्थान पर बस-भौत से इस किस्मे के लिए पानी का प्रबंध किया गया था और पास ही के खेत में एक हजार लोग किस्मे में रहनेवालों के लिए बनाए उगाते थे ताकि यदि किस्मे पर बेश डाल दिया जाए, तो वह अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति स्वयं कर सके।

इस बात का उल्लेख मिलता है कि इन किस्मों की दीवारें तथा उनके पुस्तों इतने मजबूत थे कि सिकंदर को “उनकी दीवारों का ध्वस्त करने के लिए फौजी इंचान लगाने पड़े थे” (वही पृष्ठ १७)।

कबाइमन जाति के लोगों का किछ क रूप में बना हुआ समान नामक एक नगर या जिसकी दीवारें ईंटों की बनी हुई थीं (वही पृष्ठ ११९)।

मस्कोइ जाति के लोगों के भी कई नगर ऐसे थे जिनके चारों ओर दीवारें बनी हुई थी और इनमें ऊँचे तथा दुर्गम स्थानों पर किस्मे बने हुए थे। सिकंदर को इन दीवारों पर चढ़ने के लिए चारों तरफ सीढ़ियाँ लगाानी पड़ी थीं तथा उनमें छँच लगाकर रास्ते बनाने पड़े थे। इन दीवारों में बोड़ी-बोड़ी दूरी पर मीनारें बनी हुई थीं। इन दीवारों पर चढ़ने का प्रयत्न करते समय चारों तरफ की पास की मीनारों पर से सिकंदर के सिपाहियों पर आक्रमण किया गया था। मीनारों के बीच में दीवारों में जो फाटक होते थे उनमें घ्योड़े बने रहते थे। [ वही पृष्ठ १४५, १४९ (अरियन) ]।

मौर्यकालीन भारत के नगरों के बारे में मेगास्थनीज ने लिखा है “कहा जाता है कि उनके नगर इतने अधिक हैं, कि उनकी संख्या ठीक-ठीक बताई नहीं जा सकती। जो नगर नवियों के किनारे या समुद्रतट पर स्थित हैं, वे लकड़ी के बने हुए हैं क्योंकि जो नगर ईर्नों के बनाए जाते हैं वे अधिक दिन तक नहीं चलते—क्योंकि जब वर्षा होती है और नवियों में बाढ़ आने पर उनका पानी मीनारों में भर जाता है तब ईंट के भवन बड़ी आसानी से बह जाते हैं। परन्तु

एक लम्बे-से आदमी का बिज बना है जो घरलन तक की लोहे का टोप सम्भा-  
रा लम्बाई पहने है उसकी जगल में एक तरलवार सटक रही है और हाथ में  
बहु बन्ध तथा भाला लिए हुए है। हीड का कहना है कि यह बिज स्वयं सिकंदर  
का है। हीड ने इस सिकंदर पर सामने की तरफ बने हुए बिज की व्याख्या इस  
प्रकार की है कि उसमें रणक्षेत्र से पोरस के पलायन का चित्रण किया गया है  
हाथी पर बैठे हुआ उसका साथी जो पीछे की तरफ बैठा है, पीछा करते हुए  
मुहसवार पर भाले का निघाला लगा रहा है। यह क्षेत्रम की लड़ाई में पाही  
हाथी पर बैठे हुए पोरस का बिज है, जो उसधिका व विश्वासवादी राजा आम्मि  
पर, जो उसके पीछे बोझा बोझा चला जा रहा है, भागा चला रहा है। इस  
चित्रा का वर्तन हरियन ने इस प्रकार किया है (अध्याय XVIII) "टैक्साइस्स  
बोड़े पर सवार था और वह उस हाथी के विस्फुल निकट पहुँच गया जिस पर  
पोरस बैठा हुआ था और अपने को सुरक्षित समझ रहा था कि जब पोरस  
के लिए भाग निकलना सम्भव नहीं था इसलिए टैक्साइस्स ने उससे हाथी को  
रोककर सिकंदर द्वारा जेबा गया सशेष सुक्ने का अनुरोध किया। परन्तु जब पोरस  
ने देखा कि जो आदमी उसके बात कर रहा था वह उसका पुराना शत्रु टैक्साइस्स  
है तो वह मुड़कर उस अपने भाले से मोठ के बात उतार देने के लिए तत्पर  
हुआ और यदि टैक्साइस्स फौरन अपना बोझा सरपट मगाता हुआ उसकी पहुँच  
से बाहर न हो गया होता तो क्याचित् वह उसे मार ही डालता।

नगर-निवेश वास्तुकला तथा ललित कलाएँ : यूनानी लेखकों के अनुसार उस  
नमय पञ्चाब में ऐसे अनेक नगर थे जो निस्संदेह उद्योग तथा आर्थिक समृद्धि के  
केंद्र थे। इनमें से कुछ का उल्लेख किशों तथा रसा-केन्द्रों के रूप में किया गया  
है जैसे अरबकों के देश में स्थित मस्सम (मध्यकाबली) या आबोनोस (वरणा)  
के नगर। म्नीम्साइ नामक स्वतंत्र कबीले के राज्य-क्षेत्र में ३७ नगर थे और  
मस्तोइ, आस्मीड्राकाइ आदि अन्य जातियाँ के इलाके में ५, ० नगर थे। इनमें  
से सबसे छोटे नगर में भी ५, ०० से कम आदमी नहीं रहते थे और कई महारों  
की आबादी थी १ तक थी। कुछ गाँवों की आबादी छहरो की आबादी  
से कम नहीं थी" (मैकब्रिडजिस इन्वेन्शन आफ इंडिया आई अलेक्जेंडर, पृष्ठ ११२)।  
भाषा के अनुसार (बही) मस्म तथा व्यास के बीच में बसी हुई नौ जातियों के  
राज्य में ५०० छहरो थे।"

तलमिला "एक विमास तथा समृद्धिवाली नगर था वास्तव में वह सिन्धु  
तथा मस्म के बीच के इलाके में सबसे बड़ा नगर था" (बही पृष्ठ १०)।

कुछ नगर नगर-निवेश तथा वास्तु-कला और अपने दुर्गों की मजबूती की दृष्टि  
से सराहनीय थे।

मौर्यकाल से भी पहले की हों। ये मूर्तियाँ उस समय की मौर्य-कला का प्रतिनिधित्व करती हैं जिन्हें पीछे कुछ छान-भोटे देवी-देवताओं की उपासना की प्रेरणा प्रियातीत थी। जन-साधारण का धर्म छोटे-मोटे देवी-देवताओं की उपासना पर आधारित था जिन्हें यज्ञ तथा यज्ञी भाग अथवा भागी गन्धर्व और अम्बराएँ कर थे। इनमें कुछ बृहत् तथा जम्ब के भी देवी-देवता थे। अब तक देवी-देवताओं की इन अतिक्रम मूर्तियों का म्यारह मसूने पाए गए हैं।

(१) परसम (मथुरा) की यज्ञ की मूर्ति (२) बगैरा की (मथुरा) यज्ञ की मूर्ति, (३) मथुरा के एक और गाँव में यज्ञी की मूर्ति जिसकी उपासना मनसा देवी के रूप में की जाती है (४) मथुरा की एक और यज्ञ की मूर्ति जिसका पता अभी हाल ही में मिला है (यू० पी० हिस्टोरिकल सोसायटी जर्नल मई १९३३ पृष्ठ ९५) (५) पटना की यज्ञ की मूर्ति जो अब भारतीय संग्रहालय कलकत्ता में है, (६) भारतीय संग्रहालय में पटना की एक और यज्ञ की मूर्ति (७) बीहारगंज (पटना) में पाई गई बंजर मिट्टी पर एक स्त्री की मूर्ति (८) पटना (आतिथ्य) में पत्थर पर लदी हुई मणिमय यज्ञ की मूर्ति (९) बेसनगर में पायी गयी एक स्त्री की मूर्ति (१०) बेसनगर में ही पायी गयी एक दूसरी स्त्री की मूर्ति (११) कोसम में पाए गए एक यज्ञ की मूर्ति के मन्त्रावसेप। इनमें से कुछ मूर्तियाँ पर उन देवी-देवताओं के नाम भी अंकित हैं जिनका इन मूर्तियों में चित्रण किया गया है। इस प्रकार न (१) तथा (८) कुबेर के यज्ञ सेनापति मणिमय की मूर्तियाँ हैं न (३) यज्ञी उपासना की मूर्ति है पटनावासी मूर्तियों में से एक भगवान् असुर-मोक्षिक (बंजर) की है और दूसरी यज्ञ सर्वत्र गन्दी की। यह भी कहा जाता है कि न (१) तथा (३) की मूर्तियाँ मूर्तिकला की उस दौरी की कृतियाँ हैं जिनके प्रतिनिधि मुनि उनके शिष्य नाक तथा उनके शिष्य के शिष्य आश्रित हैं।

यह बात कि मूर्तियाँ बनाने या पत्थर पर किसी का चित्र अंकित करने की यह कला बहुत पुरानी है इससे भी सिद्ध होती है कि यह कला बहुत बाद तक भी जीवित रही और इनमें से कई कलाकृतियों के प्रतिरूप भी बनाए गए। ये मूर्तियाँ तो स्वतंत्र रूप से उपासना की वस्तु हैं पर दूसरी पक्षधरी ईसा-पूर्व की मरुत की मूर्तियों की याचना में वे एक समष्टि के विभिन्न व्यक्तियों के रूप में प्रस्तुत की गई हैं। मरुत की मूर्तिकला में इन गीण-देवी-देवताओं की अनेक मूर्तियाँ हैं जिनकी जन-साधारण उपासना करते थे और जिन पर धर्म आधारित था।

इस प्रकार की कलाकला परवर्ती मसूने बोधिसत्व की उन मूर्तियों में मिलते हैं जिन्हें मथुरा-शैली की कृतियाँ माना जाता है। सारनाथ में बोधिसत्व की ओ

के क्षेत्र की विभिन्न प्रकार की कलाकृतियाँ हैं जिनके कारण अशोक की स्थापति आज तक जबर है। उसने नगर, स्तूप और विहार बनवाए, कठोर चट्टानों के को बटवाकर मठ बनवाए, चट्टानों में गुफाएँ तथा मूर्त बनवाए और पत्थर के स्तंभ बनवाकर अपहृ-जगह लपकाए। इन स्तंभों के पत्थर को चिकमा करके उसमें जो चमक पैदा कर दी गई है वह आजकल के संगठरास नहीं पैदा कर पाते हैं। सम्राट की बताई हुई योजना के अनुसार बनाए गए इन स्तंभों की वास्तुविज्ञान तथा सजावट में इतनी उच्च कोटि की निष्कलक कला प्रवीणता का परिचय मिलता है कि हम इन्हें मूर्त ही मौर्यकालीन कला की श्रेष्ठतम कृति मान सकते हैं। इनमें पशुओं तथा पेड़-पौधों के प्राकृतिक रूप को पत्थर पर अंकित कर देने की कला को बहुत उच्च स्तर पर पहुँचा दिया गया है। ये स्तंभ इजिप्शियन की श्रुति से भी सराहनीय हैं क्योंकि इनमें से प्रत्येक का बज्रन मीसल से लगभग ५० टन और ऊँचाई ५ फुट है और उनमें से प्रत्येक एक ही चट्टान को काट कर बनाया गया है, जिससे पता चलता है कि कितनी बड़ी-बड़ी चट्टानों को काटकर इन स्तंभों का रूप दिया गया होगा। फिर यह बात भी सराहनीय है कि किस प्रकार इतने भारी स्तंभों को सेकड़ों मील दूर से जाकर उन स्थानों पर लाना गया जो सम्राट ने सार्वजनिक हित को ध्यान में रखते हुए इन स्तंभों के लिए चुने थे क्योंकि ये स्तंभ सार्वजनिक हित के उद्देश्य से ही बनवाए गए थे। उदाहरण के लिए पाटलिपुत्र से कुछ के जम्मूस्थान तक बीछ तीर्थस्थानों की यात्रा करनेवाले तीर्थयात्री की प्रगति की विभिन्न मंडियों को इंगित करने के लिए स्तंभों के एक पूरे क्रम की आवश्यकता पड़ी।

जिस प्रकार मगध अशोक से पहले के उसी प्रकार स्तंभों की उत्पत्ति भी अशोक से पहले की थी। अशोक ने स्वयं इस बात का उल्लेख किया है कि उससे पहले इन स्तंभों का अस्तित्व था और उसने अपनी प्रशस्तिपत्र अंकित कराने के लिए उनको इग्नेमाल किया (रूपमात्र के गौण शिलालेख पर अंकित छद्म और स्तंभ लग VII बैसिए मेरी पुस्तक अशोक पृष्ठ ८०)।

अब हम इस बात का स्वीकार करते हैं कि मौर्यकालीन कला ने सम्राट अशोक के शासनकाल में अपनी प्रगति की तो हमें यह बात भी ध्यान में रखनी चाहिए कि अपनी उन्नति एक दिन में नहीं हासिल होगी। आरंभ में यह कला बहुत ही अपरिमात्रित रूप में रही होगी इस स्तर तक पहुँचने के लिए उसे विकास का बहुत लम्बा मार्ग तैयार करना पड़ा होगा। सीमाव्यवस्था आज तक इन कला-कृतियों के कुछ एक मसूने मौजूद हैं, जिससे हम भारतीय कला के विकास का अनुमान कर सकते हैं। पत्थर की विनाशकारी मूर्तियों का एक पूरा वर्ग ऐसा है जो निश्चित रूप से अशोक के समय से पहले का है और समझ है कि ये


सौराष्ट्रवास स भी पहुँची थी हों। ये मूर्तियाँ उस समय की सांख्यिक-कला का प्रतिनिधिधित्व करती हैं जिसके पीछे कुछ छोटे-मोटे देवी-देवताओं की जनभाषा की उपासना की प्रेरणा बिबाधील थी। जन-साधारण का मन छोटे-मोटे देवी-देवताओं की उपासना पर आकर्षित था जिन्हें यन्त्र तथा यक्षी नाम अथवा मागी सम्भव और अप्सराएँ कर थे। इनमें कुछ मूर्तियों के तथा यन्त्र के भी देवी-देवता थे। अब तक देवी-देवताओं की इन अतिशय मूर्तियों के स्पष्ट मूने पाए गए हैं (१) परम्परा (मधुरा) की यन्त्र की मूर्ति (२) बन्धन की (मधुरा) यक्ष की मूर्ति (३) मधुरा के एक और गाँव में यक्षी की मूर्ति जिसकी उपासना मनवा देवी के रूप में की जाती है (४) मधुरा की एक और यक्ष की मूर्ति जिसका पता अभी हाथ ही में लगा है (यू० पो० हिस्टोरिकल सोसायटी जर्नल मई १०३३ पृष्ठ १५) (५) पटना की यक्ष की मूर्ति जो अब भारतीय मण्डलात्मक कलाकला में है (६) भारतीय मण्डलात्मक में पटना की एक और यक्ष की मूर्ति (७) बीवारम्प (पटना) में पाई गई यक्ष सिंग हुए एक स्त्री की मूर्ति (८) पटना (सांख्यिक) में पत्थर पर खुदी हुई मणिमय यक्ष की मूर्ति (९) बेसनगर में पायी गयी एक स्त्री का मूर्ति (१०) बमतगर में ही पायी गयी एक दूसरी स्त्री की मूर्ति (११) कोमम में पाए गए एक यक्ष की मूर्ति के सम्भावना। इनमें से कुछ मूर्तियाँ पर उन देवी-देवताओं के नाम भी अंकित हैं जिनका इन मूर्तियों में चित्रण किया गया है। इस प्रकार न (१) तथा (८) कुबेर के यक्ष संनापति मणिमय की मूर्तियाँ हैं न० (३) यक्षी सायाबा की मूर्ति है पटनावासी मूर्तियों में से एक अगवान अस्त-शोचिक (बबेर) की है और दूसरी यक्ष सर्वत्र मन्त्री की। यह भी कहा जाता है कि न (१) तथा (३) ही मूर्तियाँ मूर्तिकला की उस शैली की हस्तियाँ हैं जिसके प्रतिनिधि कुनिक, उनके पिप्प नाक तथा उनके पिप्प के पिप्प शोभितक हैं।

यह बात कि मूर्तियाँ मान या पत्थर पर किसी का चित्र अंकित करने की यह कला बहुत पुरानी है, इसमें भी शिष्ट होती है कि यह कला बहुत बाद तक भी जीवित रही और इनमें से कई कलाकृतियों के प्रतिरूप भी बनाए गए। ये मूर्तियाँ तो स्वतंत्र रूप से उपासना की वस्तु हैं पर दूसरी दृष्टांती न्या-युक्त की मधुरा की मूर्तियों की मायना में वे एक समष्टि के विभिन्न भागों के रूप में प्रस्तुत की गई हैं। मधुरा की मूर्तिकला में इन गाँव देवी-देवताओं की बनेक मूर्तियाँ हैं जिनकी जन-साधारण उपासना करते थे और जिन पर बर्च आचारित था।

इस प्रकार की लोकरूपा परबर्नी मूने साधित्व की उन मूर्तियाँ में मिलते हैं जिन्हें मधुरा-दीक्षी की हस्तियाँ माना जाता है। सारांश में शोभित्व की जो

विमलकाम्य मूर्ति पाई गई है उस पर एक कला अंकित है जिसमें यह बताया गया है कि वह कनिष्क के शासनकाल के तीसरे वर्ष में बनाई गई थी और यह भी बताया गया है कि मथुरा के मिश्र<sup>१</sup>बख ने उस काम के रूप में दिया था। इस प्रकार बोधिसत्व की मूर्तियाँ एक दूसरे प्रथम में यज्ञों की मूर्तियों के ही क्रम की एक कड़ी थी।

डा. आनंद कुमारस्वामी के मतानुसार इस तथाकथित आदिम अवस्था काक-कला में भी अपने युग हैं। इसमें तो संदेह नहीं कि अशोक के समय की परिष्कृति कला की तुलना में जिसमें हम सुसंस्कृत वर्गों की कला सरकारी या दरबारी कला भी कह सकते हैं जो उस समय के बौद्धमत के हीनमान पंथ की आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति करती थी उस कला की तुलना में यह कला आदिम ढंग की तथा भोली है। इन विद्याकलाय मूर्तियों के बारे में कुमारस्वामी का मत है कि ये 'विक्षयाग सारीरिक बल को व्यक्त करती हैं जो उनकी आदिम इन की अड़ता के कारण होने नहीं पाता और केवल अपने विद्याय आकार की दृष्टि से ही वे विपुल नीतिक शक्ति की ओतक हैं और एक ऐसी कला' का प्रतिनिधित्व करती हैं 'जिसका सार-सत्य लौकिक है और जो मानो बड़ी निममता से हमारे हृदय पर अपनी छाप डालती है। इस कला का रूप इस समय तक आध्यात्मिक नहीं है और उसमें अतर्क्य आत्मनिष्ठा अवस्था आध्यात्मिक आकाशा का कोई पट नहीं है। 'शैली की दृष्टि से इस विशेष कोटि की मूर्तियाँ विद्याय तथा अतिक्रम हैं और उनकी कल्पना विस्मय उत्पन्न करने की गई है जो आकृति की उप-रेखा की सीमाओं में अकड़ी हुई नहीं है।

आदिम साम्य तथा परिष्कृत पौर कला में आपस में क्या अंतर है—इसका कुछ प्रमाण हमें पाणिनि (लगभग ५० ई. पू.) के व्याकरण में मिलता है। पाणिनि ने (४.४.५) ग्रामशिक्षी तथा राजशिक्षी में अंतर किया है। ग्राम शिक्षी उन कलाकारों को कहते थे जो गाँव के लोक-समुदाय के बैठनमोगी कमचारी होते थे और राजशिक्षी उन दरबारी कलाकारों को कहते थे जिनकी  मूल्य तथा अमिताय वर्ष की आवश्यकताओं की पूर्ण करती थी। यह बात भी स्पष्ट होने योग्य है। इन सभी मूर्तियों में गले में हार धारण एक आमपन है जिसके लिए पाणिनि बहुत ही मर्मपूर्ण शब्द प्रयोग (IV. २. १९) का प्रयोग किया है।

इसलिए इस बात को मान लेना अनुचित न होगा कि अशोक-कालीन कला की उत्पत्ति उससे पूर्व के काल में इन मूर्तियों के रूप में हुई, जो उस समय के गाँववालों की उपासना तथा खेद-कला का प्रतिनिधित्व करती है।

